प्रश्न पत्र–7 (MHIN 203)
आधुनिक गद्य साहित्य

समयः तीन घण्टे पूर्णांकः 80 (पत्राचार एवं रेगुलर परीक्षार्थ) **पूर्णांक** : 100 (प्राईवेट परीक्षार्थी)

इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत निबन्ध तथा कहानी विधा का अध्ययन किया जाएगा।

पाठ्य विषयः

निबन्धः

खंड–1

निम्नलिखित निबन्धकारों के दोनों खंडों में चार – चार (कृल = 8) निबन्धों का अध्ययन–

बालकृष्ण भट्ट (कौलिन्य और सद्वृत्त), रामचन्द्र शुक्ल (कविता क्या है), हजारी प्रसाद द्विवेदी (नाखून क्यों बढ़ते हैं), प्रताप नारायण मिश्र (बात),

खंड–2

रामविलास शर्मा (छायावाद और रहस्यवाद) विद्यानिवास मिश्र (छितवन की छाँह), कुबेरनाथ राय (षोड्शी के चरणकमल), सरदार पूर्ण सिंह (आचरण की सभ्यता)।

कहानी :

खंड–3

निम्नलिखित कहानीकारों की दोनों खंडों में चार – चार (कुल =8) कहानियों का अध्यन –

पडित माधव राव स्प्रे (एक टोकरी भर मिट्टी), प्रेमचन्द (दुनिया का अनमोल रत्न), जैनेन्द्र (पत्नी), निर्मल वर्मा (लन्दन की एक रात)।

खंड–4

मन्नू भंडारी (अकेली), उषा प्रियम्वदा (वापसी), शेखर जोशी (कोसी का घटवार), एस. आर. हरनोट (जीन काठी)।

प्राश्निक के लिए निर्देशः

1. निर्धारित पाठयक्रम के आधार पर प्रत्येक खंड में से दो व्याख्याएं पूछी जायेंगी जिनमें से एक को व्याख्यायित करना अनिवार्य होगा।
2. निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर प्रत्येक खंड में से दो आलोचनात्मक प्रश्न जिनमें से एक का उत्तर देना अनिवार्य होगा।
3. सभी खंड़ों में से आठ अति लघूत्तरीय प्रश्न पूछे जाएंगे जिनमें से छः के उत्तर देने होगे।

अंक विभाजन :

चार व्याखयाएं : 4 X 9 = 36 अंक,	चार आलोचनात्मक प्रश्न : 4 X 3 = 5 अंक
अतिलघुत्तरी प्रश्न : 6 X 2 = 12 अंक।	(प्राईवेट परीक्षार्थी) कुल अंक : 100
चार व्याख्याएं : 4 X 7 = 28 अंक,	चार आलोचनात्मक प्रश्न : 4 X 10 =40 अंक
अतिलघूत्तरी प्रश्न : 6 X 2 = 12 अंक।	(रेगुलर एवं पत्राचार परीक्षार्थी) कुल अंक : 80
पूछे जाएंगे जिनमें से एक	

अनुशंसित पुस्तकें:

1. मधुरेश, नयी कहानी : पुनर्विचार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. नरेन्द्र मोहन, समकालीन कहानी की पहचान, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली।
3. कुमार कृष्ण, कहानी के नये प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
4. डॉ. देवीशंकर अवस्थी, नई कहानी संदर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. शैलजा, समकालीन हिंदी कहानी बदलते जीवन संदर्भ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
6. रामदरश मिश्र, हिंदी कहानी अंतरंग पहचान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
7. डॉ. नरेंद्र मोहन, समकालीन कहानी की पहचान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. शम्भु गुप्त, कहानी : समकालीन चुनौतियां, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. डॉ. निर्मला जैन (सम्पादक) निबंधों की दुनिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. बच्चन सिंह, साहित्यिक निबंध आधुनिक दृष्टिकोण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. डॉ. आरती अग्रवाल, हिंदी निबंध साहित्य का लालित्य विधान, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. रामप्रसाद किचलू, आधुनिक निबंध, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. डॉ. बाबू राम मैहला, हिंदी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली।

*****

इकाई–1
हिंदी निबंध का आरंभ और विकास

संरचना

1.1 भूमिका
1.2 उद्देश्य
1.3 हिन्दी निबंध का आरम्भ और विकास
1.3.1 भारतेन्दु युग
1.3.2 द्विवेदी युग
1.3.3 शुक्ल युग
1.3.4 शुक्लोत्तर युग
स्वयं आकलन प्रश्न
1.4 सारांश
1.5 कठिन शब्दावली
1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
1.7 संदर्भित पुस्तकें
1.8 सात्रिक प्रश्न

1.1 भूमिका

स्नातक स्तरीय कक्षाओं में हमने हिन्दी गद्य साहित्य के अन्तर्गत कुछ निबंधकारों व उनके निबंधों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की। स्नातकोत्तर कक्षाओं में हम विविध निबंधों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। इकाई एक में हम हिन्दी निबंध के आरंभ और विकास का अध्ययन करेंगे। इसके अन्तर्गत हम भारतेन्द युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग और शुक्लोत्तर का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इकाई एक का अध्ययन करने के पंश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. हिन्दी निबंध का आरंभ कब से हुआ?
2. हिन्दी निबंध का विकास कितने चरणों में हुआ?
3. भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंधकार कौन–कौन से है?
4. द्विवेदी युगीन निबंधों की प्रमुख विशेषताएं क्या है?
5. शुक्ल की निबंध, कला की विशेषता क्या है ?

1.3 हिन्दी निबन्ध का आरम्भ और विकास :

प्रिय विद्यार्थियों! हिन्दी निबन्ध के विकास – इतिहास को जानने के लिए हमें संक्षेप में हिन्दी गद्य इतिहास को देखना जरूरी होगा। साहित्येतिहासकारों के मतानुसार –हिन्दी भाषा तथा साहित्य का इतिहास पिछले एक हजार वर्ष का इतिहास है जिसमें शौरसेनी, ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी, प्राचीन हिन्दी आदि का पद्यमय साहित्य बहत बड़ी मात्रा में मिलता है परन्तु साहित्य के कुछ फुटकर उदाहरण चुनकर गद्य के उद्भव के बारे में इसका उदयकाल चौदहवीं शताब्दी से ही ठहरता है। मुख्यतः इस काल में साहित्य की मौखिक परम्परा रही और

परिणाम स्वरूप काव्य रचना की ही अधिकता रही राजस्थानी भाषा तथा साहित्य के इतिहास लेखकों ने राजस्थानी गद्य का विकास तेरहवीं शताब्दी से माना है। परन्तु इसके प्रमाणिक उदाहरण चौदहवीं शताब्दी के माने जाते हैं। ब्रजभाषा का प्रारम्भिक रूप गोरखवपंथी साधुओं की रचनाओं में मिलता है। गोरखपंथी साधुओं का गद्य राजस्थानी और ब्रजभाषा का मिश्रित रूप है। इसके सुव्यवस्थित गद्य का प्रचार बाद में हुआ कहा जाता है।

भक्ति काल में गद्य के कुछ अधिक उदाहरण मिलते हैं। वल्लभ संप्रदाय का वार्तासाहित्य भावाभिव्यक्तित में पूर्णतया समर्थ हैं। गोस्वामी विट्ठल नाथ कृत श्रृंगार रसमण्डन में ब्रजभाषा गद्य का प्रयोग हुआ है। गोस्वामी गोकुलनाथ कृत चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ वावन वैष्णवन की वार्ता तथा हरिराय कृत "सूरदास की वार्ता'' ब्रजभाषा के अच्छे नमूने हैं। इस काल के अनेक कवियों ने अपनी रचनाएं गद्य में लिखी हैं। इसी क्रम में सत्रहवीं शताब्दी में बनारसी दास जैन ने 'अर्धकथानक' नामक आत्मकथा लिखी, उसकी वचनिका गद्य है। रामदास, धुवदास, आदि भक्त कवियों का गद्य भी इसी काल में गया था। रीतिकालीन कवियों ने पद्य के साथ टीका या व्याख्या के लिए गद्य का प्रयोग किया। श्रृंगार शतक, कविप्रिया, बिहारी सतसई आदि ग्रंथों पर टीकाएं उस समय लिख गई, उनमें अपरिमार्जित ब्रजभाषा का नमुना मिलता है। राजस्थानी और ब्रजभाषा गद्य का उद्भव और विकास खड़ी बोली गद्य के प्रारम्भ होने तक तीनों रूपों में हुआ था पहला वर्ग – धार्मिक शास्त्र चर्चो का गद्य, दूसरा वर्ग – वर्णनात्मक ग्रंथ यथा वात्ताएं, अख्यान, प्राण, अष्टायान आदि तीसरा वर्ग–ब्रजभाषा गद्य में उपलब्ध टीकाएं। समग्रतः 14 वीं शताब्दी से अठाहरवीं शताब्दी तक गद्य का प्रयोग थोड़े बहुत अनुपात में होता रहा परन्तु उसका पूरा विकास नहीं हो सका। इसके अनेक आधारभूत कारण रहे हैं। इन काल खंडों का गद्य रूप खड़ी बोली गद्य से स्पष्टतः भिन्न रूप वाला है। चूंकि हम 'हिन्दी निबन्ध' के आरम्भ तथा विकास पर ही इस पाठ को केन्द्रित कर रहे हैं इसलिए उसी प्रसंग में चर्चा करना अभिष्ट होगा।

विद्यार्थियो! हिन्दी निबन्ध का सूत्रपात कब और किस के द्वारा हुआ, इस विषय में विद्वान एक मत नहीं हैं। हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने अलग–अलग मत दिए हैं। डॉ. लक्ष्मी नारायण वार्ष्णेय निबन्ध को लेख से भिन्न मानते हुए में बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी का सर्वप्रथम निबन्धकार मानते हैं। उनके अनुसार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन, जगमोहन सिंह, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, गोबिन्द नारायण मिश्र आदि अनेक लेखकों की ऐसी रचनाएं मिलती हैं। जिन में निबन्ध के कुछ लक्षण अवश्य मिल जाते हैं। पर उन्हें निबन्ध न कहकर लेख कहना ही अधिक युक्तिसंगत होगा (संदर्भ आधुनिक हिन्दी साहित्य, पू. 149) इसी प्रकार डॉ. कृष्ण लाल ने अपने शोध प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास में पहले बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी का प्रथम निबन्धकार घोषित किया था किन्तु दस वर्ष बाद उनकी इस धारणा में परिवर्तन हुआ और उन्होंने लिखा, श्री भट्ट जी हिन्दी के निबन्ध –लेखक नहीं हैं वे केवल भारतेन्दु युग के सभी लेखकों में निबन्धकार के रूप में सार्वजनिक सफल एवं प्रभावशाली लेखक हुए हैं। (संदर्भ – निबन्ध संग्रह भूमिका, पृ. 9) इस कथन के विपरीत श्री शिवनाथ एवं डॉ. बलवंत लक्ष्मण कोतमिरे ने सदासुखलाल को हिन्दी निबन्ध साहित्य का प्रथम आरम्भकर्ता और उनके 'सुरासर – निर्णय' को हिन्दी का प्रथम निबन्ध माना है। हिन्दी निबन्ध के प्रथम आरम्भकर्ता के रूप में श्रीसदासुख लाल 'सुखसागर' (1746–1824) का नाम लिया जा सकता है। उनका 'सुरासर निर्णय' निबन्ध प्रसिद्ध है और उसी के आधार पर उन्हें हिन्दी के प्रथम निबन्धकार का स्थान दिया जा सकत्ता है 'सरासूर निर्णय' में निबन्ध के अनेक गुण मिलते हैं। इसमें निबन्ध के प्रारम्भ और अंत का स्पष्ट संकेत मिलता है और यह रचना सुरासुर निर्णय का प्रतिपादन करने के लिए प्रस्तुत की गई है। अतः इसके लेखक द्वारा निबन्ध की विवेचना –पद्धति का उपयोग किया गया है। इस निबन्ध में एक हल्का सा व्यंग्य भी मिलता है– "बह्मा के यहां से किसी को चिट्ठी–पत्री नहीं लिखी है कि यह ब्राह्मण है और वह चाण्डाल।'' इस निबन्ध का विषय धार्मिक या पौराणिक है। इसमें तत्कालीन समस्याओं के अनुसार विषय का विश्लेषण हुआ है। अतः इसे विवेचनात्मक निबन्ध की कोटि में रखा जा सकता है। (हिन्दी गद्य का विकास, पृ. 245)

परन्तु अधिकांश समीक्षकों का मत है कि इस निबन्ध में निबन्ध के लक्षणों एवं स्वरूप का सही निर्वाह नहीं मिलता। यह तो मुंशी सदासुखलाल 'नियाज' के विष्णु प्राण के आधार पर लिखे 'सुखसागर' का एक अध्याय मात्र है। कुछ विद्वान राजा शिवप्रसाद के 'राजा भोज का सपना' को निबन्ध मानते हैं। किन्तु अन्य विद्वानों ने इसे भी अस्वीकार किया है। उनका मानना है कि मान्टेन ने जो निबन्ध का स्वरूप माना था वह फ्रेंच, लेटिन, अग्रेंजी के क्रमशः एक्जीजि, एसाई (Essai) Essay आदि शब्द रूप धारण कर चुका हैं। अतः तर्क – वितर्क में न पड़कर हिन्दी निबन्ध का सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही मानना उचित है। हिन्दी निबन्ध साहित्य के ऐतिहासिक विकास को साहित्येतिहासकारों ने निम्नलिखित युगों में विभाजित किया है।

(1) भारतेन्दु युग जागरण काल (1873 – 1900 ई०)

(2) द्विवेदी युग : परिमार्जन काल (1901– 1920 ई०)

(3) शुक्ल युग : उत्कर्षकाल (1921– 1940 ई०)

(4) शुक्लोत्तर युगः प्रसार काल (1941– अब तक)

इन काल खंडों का संक्षप्त विवेचन इस प्रकार है –

1.3.1 भारतेन्दु युग : (1873 –1900 ई०)

इस युग में सामयिक समस्याओं के समाधान हेतु जागी जनमानस नवचेतना जागृति, अग्रेंजी साहित्य का संपर्क, मुद्रण यंत्र के प्रचलन, साहित्यकारों की जनता के संपर्क में आने की बलवती स्पृधा तथा पत्र–पत्रिकाओं के प्रचार–प्रसार के कारण हिन्दी निबन्ध का न केवल जन्म ही हुआ बल्कि इसका विकसित स्वरूप लगा। इस काल खंड़ के निबन्धकार किसी न किसी पत्रिका के सम्पादक भी थे। भारतेन्दु जी (1850–1885 ई०) हरिशचन्द्र मैगजीन (1873) जिसके आठ अंकों के बाद उसका नाम हरिश्चन्द्र चन्द्रका' हो गया था तथा बालबोधिनी (सन् 1874) के पं. प्रताप नारायण मिश्र (1956–94) ब्राह्मण – (सन् 1883 ई०) के पं. बालकृष्ण भट्ट (1844–1904) हिन्दी प्रदीप (1977) के पं. बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन (1865–1923), तथा आनन्द कादम्बिनी (सन् 1882) के बाबू तोता राम भारतबन्धु (सन् 1876) के, राधचरण गोस्वामी (सन् 1851–1925 ई०) भारतेन्द (1884 ई०) के, पं. अम्बिकादत्त व्यास, (1838 – 1900 ई०) पीयूष – प्रवाह (सन् 1884 ई०) के केशवराम भट्ट (1954– 1994 ई०) बिहारबन्धु सन् (1872) के तथा पं. मोहन लाल विष्णु लाल पंडया (1850 –1912 ई०) 'मोहन चन्द्रिका (सन 1880) तथा हरिचन्द्र चन्द्रिका (उत्तरा कालीन) के सम्पादक थे। संक्षेप ने जिस प्रकार 18 वीं शताब्दी में इंग्लेंड में पत्र –पत्रिकाओं के व्यापक प्रचार से अंग्रेजी निबन्ध के प्रचार व प्रसार में योग मिला उसी प्रकार भारतेन्दु काल में उपराक्त चर्चित पत्रिकाओं हिन्दी निबन्ध के प्रचार–प्रसार में वैसी ही भूमिका का निर्वाह किया।

इस काल के निबन्धकारों में धर्म, इतिहास, पुरातत्व भाषा, साहित्य शास्त्र अदि को विषय बनाया। भारतेन्दु जी के निबन्धों की भाषा के दो रूप रह – शुद्ध हिन्दी जिसका प्रयोग गंभीर निबन्धों में हुआ दूसरा सामान्य हिन्दी, जो विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में सामान्य निबन्धों की भाषा रही। भारतेन्द युग के निबन्धकारों में बालकृष्ण भट्ट का स्थान सर्वोधिक महत्त्वपूर्ण है। ये हिन्दी 'वर्धिनी सभा' के संस्थापक तथा हिन्दी प्रदीप नामक प्रमुख पत्र के सम्पादक थे ये अध्ययनशील और प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति थे। उनके निबन्ध सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक आदि विषयों से सम्बद्ध हैं। उनके कल्पना, आशा, माधुर्य, चन्द्रोदय, आदि निबन्धों के शीर्षक जहां एक शब्द के हैं "वोहीं मागिवों भला न बाप से जो विधि राखें टेक'' जमीने चमन गुल खिलाती है क्या–क्या बदलता है रंग आसमां कैसे – कैसे ? आदि निबन्ध एक – एक या दो – दो पक्तियों के हैं। भावात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक निबन्धों के लेखक भट्ट की भाषा का स्वरूप संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू–सस्कृत आवश्यकतानुसार अंग्रेजी शब्दावली युक्त रही है। उनके निबन्ध के संग्रह 'साहित्य सुमन और भट्ट निबन्धावली' प्रथम एवं द्वितीय भाग शीर्षकों के रूप में प्रकाशित हुए हैं।

प. प्रताप नारायण मिश्र इस युग के तीसरे बेजोड निबन्धकार हैं। वे हिन्दी, हिन्दू और हिन्दोस्तानी के समर्थक रहे उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक विषयों पर अपनी स्वच्छन्द एवं निर्भीक लेखनी चलाई। उन्होंने स्वाभाविक भाषा का प्रयोग कर लोकभाषा एवं जनभाषा को निकट लाने के लिए मुहावरों लोकोक्तियों से उसे संजीव बनाया और अरबी, फारसी, उर्दू ग्रामीण, पंडिताऊ आदि सभी प्रकार के शब्दों का बेधड़क प्रयोग किया। उन्होंने नाक, भौं, दांत, मुच्छ, पेट आदि शारीरिक अंगों जुआ, अपव्यय आदि दुर्व्यसनों, दान, विश्वास, भलमानसों, सत्य, मनोयोग आदि सद्वृत्तियों छल, स्वार्थ, रिश्वत आदि दुर्वृत्तियों बात, आप, सोने का डण्डा, नास्तिक, ईश्वर की मूर्ति, शिवमूर्ति आदि सामान्य विषयों पर ही नहीं लिखा बल्कि व्यंग्य प्रधान निबन्ध भी लिखे। इनके अधिकतर निबन्ध आत्म व्यंजक व्यक्तित्व प्रधान एवं भावात्मक हैं। इन्होंने विचारात्मक निबन्ध भी लिखें है। इनके चार संग्रह 'निबन्ध नवनीत', प्रताप पीयुष, प्रताप समीक्षा, प्रताप नारायण ग्रंथावली के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। भारतेन्द् युग के अन्य निबन्धकारों में पं. बद्रीनारयण चौधरी प्रेमधन, पं. राधाचरण गोस्वामी, ठाकुर जगमाहेन सिंह पं. अम्बिकादत तोता राम वर्मा, केशवराम भट्ट, श्रीनिवास पंडया, आदि 'उल्लेखनीय हैं। 'प्रेमधन' के निबन्धों में हमारी मसहरी, हमारी दिनचर्या, फाल्गुन ऋतुवर्णन आदि उल्लेखनीय है। इन्हें विचारात्मक तथा आलोचनात्मक निबन्धों का श्री गणेशकर्ता माना जाता है। श्री निवास दास के नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना करके उन्होंने हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक निबन्धों का सूत्रपात किया।

पं. राधाचरण गोवस्वामी की शैली भारतेन्दु जी से मिलती जुलती थी। इनका स्वपन शैली में लिखा 'यमलोक की यात्रा' शीर्षक निबन्ध बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त रेलव स्त्रोत, तुम्हें क्या, होली आदि निबन्ध भी अच्छे कहे गए हैं। इनके निबन्धों में हास्य–व्यंग्य की मीटी चुटकियों की प्रवृत मिलती है। ठाकुर जगमोहन सिंह के निबन्ध प्रायः वर्णानात्मक हैं। जिनमें उनकी भावुकता दिखती है। प्रकृति संबंधी निबन्धों के लिखने में सिद्धहस्त है। इसी प्रकार अन्य निबन्धकारों ने भी इस काल खंड में निबन्ध लेखन धारा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया और हिन्दी निबन्ध लेखन धारा को प्रवहमान बनाया।

1.3.2 द्विवेदी युग (1901–1920 ई.)

इस युग को परिमार्जन काल भी कहा गया है। इसकी अवधि 1901 से 1920 ई० तक मानी जाती है। सन् 1900 ई० में "सरस्वती'' पत्रिका के प्रकाशन् से हिंदी साहित्य को नया बल मिला, व्यापक दिशाएं मिली। निबन्ध का जागरण काल समाप्त और उसके परिमार्जन का युग शुरू हुआ। भाषा में स्थिरिता, एकरूपता आई, व्याकरण सम्मत प्रयोगों पर बल दिया जाने लगा। सन् 1903 में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती पत्रिका' का सम्पादन संभाला। हिन्दी में अच्छे निबन्ध लिखे जाऐं लेखकों के प्रोत्साहन हेतु अंग्रेजी निबन्धकार बेकन तथा मराठी निबन्धकार विष्णु करुण शास्त्री चिपलूणकर के निबन्धों के अनुवाद किए गए। बेकन के निबन्धों का अनुवाद 'बेकन विचार रत्नावली' के रूप में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया और चिपलूणकर शास्त्री के मराठी निबन्ध को अनुवाद "निबन्धों मालादर्श' शीर्षक पं. गंगा प्रसाद अग्निहोत्री ने किया। ये दोनों अनुवाद विचारात्मक निबन्धों के अनुवाद थे। परिणामतः उन लेखकों को इस प्रकार के निबन्ध लिखने की प्रेरणा मिली। इससे अनुवाद लेखकों को कई विशेष लाभ नहीं हुआ। अग्निहोत्री भी अनुवाद तक ही सीमित होकर रह गए। द्विवेदी जी भी मौलिक बहुत कम लिख पाए। इस युग के प्रमुख निबन्धकारों को यूं गिनाया जा सकता है –

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864–1938 ई०), गोविन्द नारायण मिश्र (1851–1926 ई0), माधव प्रसाद मिश्र (1871– 1907 ई०), सरदार पूर्ण सिंह (1881– 1907 ई०) चन्द्रघर शर्मा गुलेरी (1883 – 1920 ई०) डॉ० श्याम सुन्दर दास (1875–1949 ई), जगन्ननाथ प्रसाद चतुर्वेदी (1875 –1945 ई०) पदम सिंह शर्मा (1876–1932 ई०), कृष्ण बिहारी मिश्र (1890 –1963 ई०) आदि है।

इस युग को उत्थान युग की संज्ञा भी दी गई है। इसे प्रौढ़ गद्य काल भी कहते हैं। सन् 1900 में हिन्दी को न्यायालयों में स्थान प्राप्त हुआ। काशी नागरी प्रचारिणी सभा को सरकारी सहयोग प्राप्त हआ। इसी वर्ष से सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हआ। द्विवेदी जी ने विचारात्मक निबन्ध लिखे रचनाकारों की भाषा का संस्कार करना भी वे अपना कर्तव्य समझते थे। ये साहित्यकार की अपेक्षा उपदेशक और निरदेशक थे। विद्वानों ने उनकी तुलना अंग्रेजी साहित्य के विद्वान डॉ. जानसन की है। "अग्रेजी साहित्य के विकास के एक चरण में जिस प्रकार डॉ. जानसन ने साहित्य के सभी रूपों के विकास क्रम को अपनी आसाधारण प्रतिभा द्वारा नई दिशाएं प्रदान की भी उसी प्रकार आचार्य द्विवेदी ने भी पूरे दो दशकों तक हिंदी साहित्य के सभी रूपों के विकास क्रम का संचालन किया।'' (डॉ. विश्वनाथ मिश्र) उन्होंने जो संक्षिप्त, मनोरंजक, सरल तथा ज्ञानवर्धक निबन्धों की जो शक्तिशाली परम्परा चलाई उसने निबन्ध को हिंदी साहित्य का एक प्रमुख अंग बना दिया। आचार्य शुक्ल के नाम द्विवेदी जी लिखने की सफलता इस बात में मानते थे कि कठिन विषय को भी ऐसे सरल रूप में रख दिया जाए कि साधारण समझ वाले पाठक भी उससे बहुत कृछ समझ जाएं।

भावात्मक निबन्ध लेखन के क्षेत्र में पं. माघव प्रसाद मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। इनकी पूर्ववर्ती लेखकों से कहीं अधिक परिमार्जित व परिनिष्ठित थी। इन्हीं के पर्व–त्योहारों, तीर्थ स्थानों, तथा नैतिक विषयों पर लिखें निबन्ध अधिक श्रेष्ठ है। प. गोविन्द नारायण मिश्र के निबन्ध अधिकांशतः साहित्यिक विषयों पर ही है। 'कवि और चित्रकार' 'आत्माराम के टें – टें' आदि इनके प्रसिद्ध निबन्ध हैं। इनकी भाषा समासयुक्त रही जिसके कारण पाठक उस ओर कम आकृष्ट हुए। पं. बाल मुकुन्द गुप्त अपनी व्यंग्यात्मक बोली के लिए प्रसिद्ध है। उर्दू पत्रिका–'बंगवासी' के सम्पादन के बाद 'भारत मित्र' के प्रधान सम्पादक भी बने। आचार्य शुक्ल के शब्दों में– ''बड़े ही चलते पुरजे तथा विनोद शील लेखक थे। अतः कभी–कभी छेड़छाड़ भी कर बैठते थे।?'' डॉ. वार्ष्णेय उन्हें हिन्दी का आदर्श निबन्ध लेखक मानते हैं। उनकी रचनाओं में निबन्ध के सभी आवश्यक तत्व पाए जाते है। इनके निबन्धों का संकलन 'गुप्त निबन्धावली के नाम से प्रकाशित हो चुका है। 'वैश्योपरक' तथा 'सुदर्शन' के सम्पादक पं. माधव प्रसाद मिश्र भी द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबन्धकार थे। उनके निबन्धों में बालकृष्ण भट्ट की गंभीरता एवं विद्वता है और सरदार पूर्ण सिंह की भावुकता। उनमें रागात्मक तत्व प्रधान है, कल्पना तत्व अपेक्षाकृत गौण हैं। उनके निबन्धों का संकलन माधव मिश्र निबन्ध माला शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। सरदार पूर्ण सिंह सहृदय भावुक एवं कोमल प्रकृति के कलाकार है। इनके निबन्धों में इनकी सरल भावुकता एवं प्रगतिशील विचारधारा सर्वत्र प्रवाहमान है। इन्होंने कुछके निबन्धों के बल पर भी हिन्दी निबन्ध साहित्य में जो ख्याति प्राप्त की वैसी बड़े–बड़े निबन्धकारों को भी नहीं मिल सकी। हिन्दी में इन्होने 'आचरण की सभ्यता', 'सच्ची वीरता, मजदूरी और प्रेम, नयनों की गंगा, कन्यादान, पवित्रता आदि आठ निबन्ध लिखे। इनकी समता का भावात्मक निबन्धकार अन्यत्र दुर्लभ है। आचार्य शुक्ल के अनुसार, ''उनके निबन्धों में विचारों और भावों को अनूठे ढंग से मिश्रित करने वाली एक नई शैली मिलती है।'' डॉ. श्यामसुन्दर दास द्विवेदी इस युग के निबन्धकार होते हुए भी स्वतंत्र वृति के साहित्यकार हैं। वे हिन्दी, अंग्रेजी, तथा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। हिन्दी की सेवा में उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया। उनकी मौलिक तथा संकलित पुस्तकों की संख्या पचास से अधिक है। आलोचक सम्पादक, कोषकार, निबन्धकार, अध्यापक शोध निर्देशक, हिन्दी सेवी विज्ञान उनके अनेक रूप हैं। उनके आरम्भिक निबन्ध साधारण हैं परन्तु परवर्ती निबन्ध सभी विचारात्मक हैं। इनकी भाषा द्विवेदी युग की में आकाक्षाओं की पूर्ति करती है। पं. चन्द्रधर शर्मा संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनके समस्त निबन्ध 'गुलेरी ग्रंथ' के चार भागों ने सम्पादित हैं। इनके निबन्ध भावात्मक वर्ग में आते हैं। इन्होंने इतिहास, संस्कृति, पुरात्व तथा भाषा पर गवेषाणात्मक निबन्ध लिखे। साहित्यिक निबन्धों के अन्तर्गत कछ आ धर्म, मोरसि मोहि कुठांव, देवकुल, सोऽहंग उल्लेखनीय हैं। पद्म

सिंह शर्मा संस्कृत, पाली प्राकृत अरबी, फारसी, हिंदी आदि भाषाओं के विद्वान थे। उनके निबन्ध भावात्मक, विचारात्मक, कथात्मक आदि प्रकार के हैं। तुलनात्मक आलोचना के प्रवर्तक माने जाते है। मुं. प्र. चन्द के शब्दों में एक खास शैली के जन्मदाता हैं— जिसमें चुलबुलापन है। शोखी है, प्रवाह है और उसके साथ ही गाम्भीर्य थी। उनका पांडित्य उनके काबू में है। वे उस पर शहसवार की भान्ति सवार होते है।''

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि इस युग में निबन्ध—विकास को विविध आयाम और दिशाएं मिली जिससे निबन्ध साहित्य परम्परा समृद्ध बनती गयी। अन्य भाषाओं के निबन्धों के अनुवाद भी पर्याप्त किए गए। इस युग में निबन्ध साहित्य का मुख्य उद्देश्य जनता को शिक्षित करना व उनका मनोरंजन करना भी था। विचारात्मक शैली के निबन्धों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई आचार्य शुक्ल के शब्दों में — अधिकांश लेखक ऐसे ही कामों में लगे जिन में बुद्धि का श्रम कम पड़े।

1.3.3 शुक्ल युग : उत्कर्षकाल (1920—1940 ई०)

यद्यपि शुक्ल जी द्विवेदी युग में भी लिखते थे तथापि उनकी प्रौढ लेखनी का चमत्कार 1920 ई० के पश्चात् विशेष रूप से दृष्टिगोचर हुआ। सभी समीक्षक विद्वानों के मतानुसार उनके निबन्ध समस्त हिन्दी निबन्ध जगत में बेजोड़ हैं। भाषा की लक्षणा व्यंजना शक्तियों का उत्कर्ष तथा व्याकरण—शुद्धता का जैसा आदर्श रूप हास्य विनोद की जैसी उत्कृष्ट योजना और शैली का जैसा अनिन्द्य भव्य रूप, शुक्ल जी के निबन्धों में मिलता है। वैसा हिन्दी निबन्ध साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। इसीलिए इस उत्कर्षकाल को 'शुक्ल युग' की संज्ञा दी गई है। इस युग में हिन्दी निबन्ध अपने उत्कर्ष को भी प्राप्त हुआ। अतः इसे उत्कर्षकाल कहना भी सार्थक है। इस युग के निबन्धकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (1884—1941 ई०), बाबू गुलाब राय (1888—1963 ई०), जयशंकर प्रसाद (1889—1937 ई०) पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी (1894—ई०) सियारामशरण गुप्त (1895—1963 ई०), मुंशी प्रेम चन्द (1880—1936 ई०), पं. माखन लाल चतुर्वेदी (1899—1960 ई०) पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (1896—191 ई०) महादेवी वर्मा (1907 ई०) शान्तिप्रिय द्विवेदी, राहुल सांस्कृत्यायन (1893—1963 ई०) तथा आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी (1906—1969 ई०) प्रमुख हैं।

शुक्ल जी ने हिन्दी निबन्ध साहित्य में विचारात्मक निबंधों का अभाव पूरा किया। सन् 1904 ई० में इनके निबंध तत्कालीन 'आनन्द कादम्बिनी' आदि प्रमुख पत्रिकाओं में छपते थे। इनके उत्कृष्ट निबन्धों का संग्रह 'चिंतामणि भाग —1' तथा 'चिन्तामणि भाग—2' है। भाग—एक पर इन्हें 'मंगलप्रसाद पुरस्कार' से भी विभूषित किया गया। इनके निबन्धों में बुद्धि एवं हृदय का मणिकंचन संयोग मिलता है। इनके मनोविकार संबंधी सन् 1892—1919 तक नागरी प्रचारिणी सभा की पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। उस समय शुक्ल उनके सम्पादक थे शुक्ल जी के निबन्धों की हिन्दी निबन्ध साहित्य में उपमा नहीं। भाषा, शैली, विचारधारा, प्रभुविष्णुता सभी दृष्टियों से इनके निबन्ध आदर्श हैं। बाबू गुलाब राय के अधिकांश निबन्ध विचारात्मक हैं। 'मेरी असफलताएं', ठलुआ क्लब, फिर निराशा क्यों, मन की बों, मेरे निबन्ध आदि इनके निबन्ध संग्रह हैं। इन्होंने जहां साहित्य समीक्षात्मक निबन्ध लिखे हैं। वहाँ दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक तथा वैयक्तिक निबन्ध भी इनके व्यंग्य बड़े सरस हैं। व्यंग्यात्मकता, आत्मीयता, बोधगम्यता आदि इनके निबन्धों की विशेषताएं हैं। इस युग के निबन्धकार प्रसाद के निबन्ध 'काव्य और कला' तथा 'कला तथा अन्य निबन्ध' शीर्षक निबन्ध संग्रहों में संग्रहीत हैं। इनके कुछ एक निबंध इन्दु तथा 'नागरी प्रचारिणी — पत्रिका में भी प्रकाशित हुए। इनके विचारात्मक निबन्धों में चिन्तन जन्य गम्भीरता है। भाषा संस्कृतनिष्ठ, प्रौढ़, तथा परिष्कृत है। कतिपय निबन्धों में गद्य — काव्य की शैली का अनुसरण किया है। इन्दु' पत्रिका में प्रकाशित 'प्रकृति — सौन्दर्य' शीर्षक निबन्ध इसी शैली में लिखा निबन्ध है। पदमु पुन्नालाल बख्शी के निबन्ध संग्रहों में पंचपात्र, विश्व साहित्य, प्रबन्ध पारिजात, हिन्दी साहित्य विमर्श, मकरन्दबिन्दु, बख्शी जी के

निबन्ध यात्री आदि उनके निबन्ध संग्रह है। विषय की दृष्टि से इनके निबन्धों को दार्शनिक, आध्यात्मिक, ऐत्तिहासिक एवं आलोचनात्मक चार वें में विभक्त किया जाता है। शैली की दृष्टि से विचारात्मक, भावात्मक तथा विवरणात्मक हैं। इनके भावात्मक निबन्ध मान्तेन – शैली का स्मरण दिलाते हैं। प्रेमचन्द जी के निबन्ध 'कुछ विचार' शीर्षक निबन्ध संग्रह में संगृहीत है। सियारामशरण गुप्त के निबन्ध 'झूठ–सच' शीर्षक निबन्ध संग्रह में प्रकाशित हैं। इनके निबन्धों में साहित्यिकता की प्रधानता और कथात्मकता एवं वर्णनात्मकता का समन्वय मिलता है। महादेवी वर्मा के निबन्ध संग्रह 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएं', 'श्रृंखला की कड़ियां' प्रकाशित हैं। इनके निबन्ध संस्मरणात्मक एवं समस्यात्मक है। इनकी भाषा परिष्कृत प्रौढ़ एवं संस्कृतनिष्ठ है, शैली विवरणात्मक एवं कथात्मक है। इस युग के अथ निबन्धकारों महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के निबन्ध वैयक्तिक, विचारात्मक, विवरणात्मक, आलोचनात्मक आदि सभी प्रकार के हैं। पुरातत्व निबन्धावली, साहित्य निबन्धावली, मेरी जीवन यात्रा, यात्रा के पन्ने आदि निबन्ध संग्रह हैं। आचार्य नंद दुलार वाजपेयी, 'प्रख्यात आलोचक निबन्धकार थे। इनके निबन्ध समीक्षात्मक है, हिन्दी साहित्य बीसवीं सदी, आधुनिक साहित्य, नया साहित्य, नए प्रश्न आदि इनके प्रख्यात निबन्ध संग्रह हैं। इनकी शैली विवेचनात्मक, विचारधारा, श्रृंखलाबद्ध एवं सुनियोजित, प्रभावोत्पादक है। इनके अतिरिक्त डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. पीताम्बर दत बड़थ्वाल, डॉ. 'रघुवीर सिंह', चतुरसेन शास्त्री, डॉ. सम्पूर्णानंद, हरिशंकर शर्मा आदि निबन्धकारों ने भी इस युग में अपनी निबन्ध सृजना द्वारा महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस युग में प्रायः सभी प्रकार के निबन्ध सभी प्रकार की शैलियों में लिखे गए। भाषा प्रौढ़, परिष्कृत तथा प्रत्येक प्रकार से समृद्ध हुई।

1.3.4 शुक्लोत्तर युग : (1941 से अब तक)

वर्तमान काल में हिन्दी निबन्ध साहित्य का इतना प्रसार हुआ, विषयों में इतना वैविध्य आया कि इस यग को प्रसार युग कहना अधिक समीचिन कहा गया है। निबन्धकारों की संख्या इतनी बढ़ गई कि उनके नाम गिनाना एक समस्या हो गई। इस युग के निबन्धों में आलोचनात्मक निबन्धों का महत्व सर्वोपरि है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डॉ. नगेन्द्र इस युग के सर्व श्रेष्ठ निबन्धकार हैं। इस प्रकार युग के प्रवर्तक पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी माने गए हैं। उन्होंने निबन्ध के क्षेत्र में नए प्रतिमान स्थापित किए। अपूर्व चिंतन पद्धति, गहन सांस्कृतिक अध्ययन व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण, चुटीली व्यंग्य, सन्तुलित भाषा इनके लेखन की विशिष्टताएं हैं। इस युग के निबन्धकारों के कृतित्व मुख्यतः सामयिक समस्याओं व पश्चिम के निबन्ध में प्रतिबिम्बित व्यक्ति व्यजक प्रवृति का अनुसरण करता है। श्री निवास मिश्र दिवाकर प्रसाद विद्यार्थी, रामेश्वर नाथ तिवारी के निबन्धों में आंचलिकता के प्रति मोह, प्रकृति प्रेम विज्ञान का विरोध, पूंजीवाद का विरोध, मार्क्सवाद की आवश्यकता, इन विषयों का प्रचुर वर्णन हैं। कुबेर नाथ, हरिशंकर परसाई और प्रभाकर माचवे के निबन्धों में समाज के मनोविज्ञान का प्रबल चित्रण है। हरिशंकर परसाई ने अपने लेखन में सामाजिक विकृतियों को व्यंग्य के माध्यम से चित्रित किया है। देवेन्द्र नाथ शर्मा का व्यंग्य साहित्यिक, मौलिक व रोचक है। (ललित निबन्ध, संगीता सारस्वत)

डॉ. नगेन्द्र इस युग के द्वितीय प्रतिभाशाली निबन्धकार हैं। इनके निबन्ध प्रायः आलोचनात्मक विचारात्मक हैं किन्तु 'रवीन्द्र के प्रति' शीर्षक वाला निबन्ध भावात्मक है। इनके निबन्धों में आचार्य शुक्ल के निबन्धों जैसी विशेषताएं मिलती हैं। 'काव्य और चिन्तन' 'विचार और अनुभूति', विचार और विश्लेषण, "विचार और विवेचन इनके प्रतिनिधि निबन्ध संग्रह हैं। उनकी विविध शैलियों ने उनके आकर्षण में योग दिया है। 'उपन्यास' शीर्षक निबन्ध स्वप्न शैली में और 'आचार्य केशव' पत्र शैली में लिखें निबन्ध हैं। जैनेन्द्र कुमार इस के गांधीवादी दार्शनिक तथा विचारात्मक निबन्धकार हैं। 'जड़ की बात', पूर्वोदय, 'साहित्य का श्रेय और प्रेय', मन्थन, सोच–विचार, प्रस्तुत प्रश्न आदि इनके निबन्ध संग्रह हैं। इनका ललित निबन्ध संग्रह 'बन्दे वाणी विनायको' प्रसिद्ध है। परशुराम चतुर्वेदी के

निबन्ध विचारात्मक, सांस्कृतिक व साहित्यिक है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विषयक निबन्धों के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके 'पृथ्वीपुत्र', 'कला और संस्कृति', कल्पवृक्ष, वाग्धारा आदि निबन्ध संग्रह प्रकाशित हैं। आलोचनात्मक निबन्ध लेखकों में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ. विनय, मोहन शर्मा, डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. सरनाम सिंह शर्मा, डॉ विजयेन्द्र स्नातक, डॉ. बालकृष्ण राव, डॉ. लक्ष्मी नारायण, वार्ष्णेय, अज्ञेय, नलिन विलोचन शर्मा, डॉ. इन्द्रनाथ मदान आदि उल्लेखनीय है यशपाल, रांगेय, राघव, डॉ. राम विलास शर्मा, प्रकाश चन्द गुप्त आदि प्रगतिवादी विचारात्मक निबन्धकार हैं। हास्य व्यंग्यात्मक निबन्ध लेखकों ने बेढ़व बनारसी, हरिशंकर शर्मा, गोपाल व्यास, बनारसी लाल चतुर्वेदी, हरिशंकर पुरसाई आदि लोकप्रिय हैं। इलाचंद्र जोशी, तथा डॉ. देवराज उपाध्याय मनोवेज्ञानिक अध्ययन के लिए प्रसिद्ध है। इनके विचारात्मक निबन्धों में मनोवैज्ञानिक अध्ययन की छाप है। विद्यानिवास मिश्र, गुरूदयाल मल्लिक, लक्ष्मीकांत झा आदि उत्कृष्ट आत्म व्यंजक ललित निबन्ध लेखक हैं। विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों की रचना प्रक्रिया की दृष्टि से दो व्यों में वैयक्तिक और समीक्षात्मक निबन्ध रखा गया है। कुरबेरनाथ राय का स्थान भी ललित निबन्धकारों की श्रेणी में सुरक्षित है। इनके निबन्ध व्यक्त प्रधान निबन्धों की श्रेणी ने आते हैं। कुल मिलाकर हिन्दी निबन्ध का स्वरूप अब व्यापक हो गया है। उसके अन्तर्गत विचारात्मक – अलोचनात्मक, साहित्यिक सौदर्य शास्त्रीय, आदि– भावात्मक, वैयक्तिक, वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक सभी प्रकार के निबन्ध आते हैं। अतः अब निबन्ध को मान्तेन शैली तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। शुक्ल जी के निबन्ध विधेयक सिद्धांत आदर्श तथा उनके निबन्ध आज भी निबन्धकारों के लिए मार्गदर्शक का कार्य करते हैं। उनका महत्व आज भी अक्षुण्ण है।

विद्यार्थियों! इस दिशा में व्यापक गंभीर ज्ञान पाने हेतु अंत में दर्शाई गई पुस्तकों का अध्ययन अवश्य करें। वास्तव में अध्ययनशीन शोध प्रवृति वाले छात्रों को निबन्ध की मूल संवेदना को समझने, उसकी समग्रता को जानने और अपने चिंतन, अध्ययन और अनुभव को निबन्ध रूप में बांधने हेतु निबन्ध के हर पक्ष को बसीकी से गंभीरता से जानना स्नाताकोत्तर स्तर के छात्रों के लिए अनवार्य है।

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

1. निबंध को अंग्रेजी में क्या कहते है?
2. शुक्ल के अनुसार हिन्दी का पहला निबंध कौन–सा है?
3. हिन्दी निबंध की वास्तविक शुरूआत किस युग से मानी जाती है?

1.4 सारांश

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों से निबंध लिखने की परंपरा का आरंभ होता है। निबंध ही नहीं, गद्य की कई विधाओं का प्रचलन भारतेन्दु से होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि गद्य और उसकी विधाएं आधुनिक मनुष्य के स्वाधीन व्यक्तित्व के अधिक अनुकूल हैं।

1.5 कठिन शब्दावली

आरभ – शुरू

उद्भव – जन्म, उद्गम

विकास – उन्नति

1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. एस्से
2. भारतेन्दु द्वारा रचित 'नाटक' निबंध
3. द्विवेदी युग

1.7 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ० निर्मला जैन (सम्पादक) निबंधों की दुनिया, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. बच्चन सिंह, साहित्यिक निबंध आधुनिक दृष्टिकोण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

1.8 सात्रिक प्रश्न

1. हिन्दी निबंध के उद्‌भव एवं विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए।
2. निबंध से आप क्या समझते हैं? निबंध के स्वरूप तथा तत्वों पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–2
बालकृष्ण भट्ट जीवन और साहित्य

संरचना

2.1 भूमिका
2.2 उद्देश्य
2.3 बालकृष्ण भट्ट जीवन और साहित्य
2.3.1 जीवन परिचय
2.3.2 साहित्यिक परिचय
स्वयं आकलन प्रश्न–1
2..4 कौलीन्य और सद्वृत्त निबंध का सार
2.4.1 कौलीन्य और सदवृत्त निबंध का उद्देश्य
स्वयं आकलन प्रश्न–1
2.5 सारांश
2.6 कठिन शब्दावली
2.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
2.8 संदर्भित पुस्तकें
2.9 सात्रिक प्रश्न

2.1 भूमिका

इकाई एक में हमने हिन्दी निबंध के आरंभ और विकास का अध्ययन किया। इकाई दो में हम बालकृष्ण भट्ट के जीवन और साहित्य का अध्ययन करेंगे। जीवन और साहित्य के अन्तर्गत हम उनके जीवन परिचय और साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित निबंध 'कौलीन्य और सद्वृत्त' के सार और उद्देश्य का भी विस्तृत अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इकाई दो का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. बालकृष्ण भट्ट का जन्म कब और कहां हुआ?
2. बालकृष्ण भट्ट ने कहां तक शिक्षा प्राप्त की ?
3. बालकृष्ण भट्ट की पारिवारिक पृष्ठभूमि कैसी रही?
4. बालकृष्ण भट्ट की साहित्यिक परिचय क्या है?
5. बालकृष्ण भट्ट की भाषा शैली कैसी है?

6 बालकृष्ण भट्ट द्वारा रचित निबंध 'कौलीन्य और सद्वृत्त' का सार क्या है?

2.3 बालकृष्ण भट्ट : (1844–1914 ई० तक) जीवन और साहित्य

2.3.1 जीवन परिचय

बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु युगीन निबन्धकार है। डॉ. लक्ष्मी सागर वाष्णेय, डॉ. कृष्णलाल धनजय, भट्ट सरल तथा डॉ. धीरेन्द्र शर्मा बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी का प्रथम निबन्ध लेखक स्वीकारते हैं। जयनाथ मलिन ने भी भारतेन्दू का महत्त्व स्वीकारने पर भी भट्ट जी को ही प्रथम निबन्धकार माना है। इन्हें हिन्दी के शुद्ध निबन्ध का

जनक कहा जाता है। इन्होंने 'हिन्दी' प्रदीप' पत्रिका के माध्यम से अपनी निबन्ध कला का व्यापक परिचय दिया। परन्तु उपरोक्त सभी मतों के परिप्रेक्ष्य में ऐसा निर्णय करना तर्क संगत होगा कि भारतेन्दु ही हिन्दी निबन्ध के प्रथम निबन्धकार हैं, क्योंकि उन्हीं के निबन्धों में ये सारी विशेषताएं मिलती हैं जो ऐसा तर्कपूर्ण निर्णय लेने या निर्णयात्मक स्थापना हेतु हितकार होती हैं। उनके निबन्ध हिन्दी निबन्धों के प्रारम्भ का उद्घोष करने में समर्थ हैं। (संदर्भ – डॉ. संगीता सारस्वत, ललित निबन्ध, पृ. 18)

बालकृष्ण भट्ट का जन्म सम्वत् 1901 (सन् 1844 ई०) में प्रयाग (इलाहाबाद) में हुआ। इनकी आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। बचपन से ही इन्हें अध्ययन में रुचि थी, इन्होंने अपना व्यावसायिक जीवन प्रयाग में 'कायस्थ पाठशाला' कालेज में संस्कृत के अध्यापक के रूप में प्रारम्भ किया था। वे हास्य–व्यग्य के धनी और उनका व्यक्तित्व सामयिक चेतना के प्रति सजग था। वे स्पष्टवादी भी थे, इनके इस चरित्रगत गुण की छाप इनके निबन्धों में भी मिलती है। भट्ट जी को एक प्रगतिशील लेखक कहा गया है। वह संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे, रसिकता की अपेक्षा तर्क की प्रधानता के पक्ष में रहे। यही कारण है कि इनके साहित्य में ये विशेषताएं मिलती हैं। इनके व्यक्तित्व में सहजता एवं गंभीरता भी जो इनके निबन्धों में भी देखी जा सकती है। इनका साहित्यिक जीवन हिन्दी की मासिक पत्रिका 'हिन्दी प्रदीप' (सन् 1933) के सम्पादन से ही आरंभ हुआ। शुक्ल जी के अनुसार भट्ट जी सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक, भौतिक सभी प्रकार के छोटे–छोटे गद्य प्रबन्ध अपने पत्र में तीस वर्ष तक निकालते रहे। इनके लिखने का ढंग पंडित प्रतापनारायण के ढंग से मिलता–जुलता है। मिश्र जी के समान भट्ट जी भी स्थान–स्थान पर कहावतों का प्रयोग करते थे, पर उनका झुकाव मुहावरों की ओर अधिक रहा। इनका देहावसान सम्वत् 1971 (सन् 1914) में हुआ।

2.3.2 साहित्यक परिचय

बालकुष्ण भट्ट भारतेन्दु के समकालीन साहित्यकार थे। वे हिन्दी के उन्मेषकाल के ऐसे व्यक्तित्व थे जिन्होंने निबन्ध लेखन द्वारा जनजागरण का काम किया। वे परवर्ती निबन्धकार लेखकों की प्रेरणा के आधार भी बने इनकी गुणना खड़ी बोली के जन्मदाताओं में की जाती है। इन्होंने 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका का पैंतीस वर्ष तक सम्पादन किया और हिन्दी (खड़ी बोली) का स्वरूप निर्माण किया। इन्होंने विविध क्षेत्रों में निबन्ध रचना की है। इनके निबन्धों में साहित्य दर्शन, राजनीति, पुरात्व, धर्म, व्यंग्यादि उल्लेखनीय क्षेत्र हैं। इन्होंने सरल, गंभीर, सभी विषयों पर निबन्ध लिखें हैं। इनकी तुलना इस विद्या लेखन ने अग्रेंजी के एड़ीसन, स्टील चाल्स तथा लैम्ब से की जाती है। इनके निबन्धों की गणना एक हजार तक बतायी जाती है। अधिकांश निबनध 'प्रदीप पत्रिका' की फ़ायलों में ही पड़े हैं। इनके निबन्धों के दो संग्रह निबन्ध माला (भाग –1, भाग – 2) उनके सुपुत्र धनंजय भट्ट ने नागरी प्रभारिणी सभा से प्रकाशित करवाए तथा तीसरा लक्ष्मी व्यास के संपादकत्व में बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों का संग्रह उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से प्रकाशित हुआ हैं। इसमें 101 निबन्ध है। इनके दो निबन्ध संग्रह (1) साहित्य मन तथा (2) साहित्य सरोज 140 काटन स्ट्रीट कलकता से प्रकाशित हुए हैं, परन्तु उपलब्ध नहीं हैं। इनके निबंधों के शीर्षक एक–एक या दो–दो पंक्तियों के भी हैं जैसे – कल्पना आशा, माधुर्य, चन्द्रोदय आदि एक शब्द शीर्षक वाले निबन्ध हैं। भगिवो भला न बाप से, जो विधि राखैटेक, जमीने चमन गुल खिलाती है क्या–क्या, बदलता है रंग–आसमां कैसे–कैसे आदि दूसरे वर्ग के उदाहरण हैं। साहित्यिक निबंध इनके गंभीर अध्ययन तथा आलोचनात्मक प्रतिभा के परिचायक है। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार इनकी रचनाएं इस प्रकार बतायी गयी हैं:–

(क) भट्ट निबन्ध माला (भाग – 1, भाग – 2)

(ख) साहित्य सुमन (निबन्ध संग्रह)

(ग) कलिराज की सभा, रेल का विकट खेल बाल विवाह, भाग्य रेखा, चन्द्रसेन (छोट–छोट नाटक) पद्मावती और शर्मिष्ठा माइकल मधुसूदन दत्त के बंग भाषा के अनुवाद नाटक)

(घ) सौ अजान एक सुजान, नूतन ब्रह्मचारी (उपन्यास)

(ड) शुवल जी के शब्दों में संवत् 1943 में भट्ट जी ने लाला श्रीनिवासदास के संयोगिता स्वयंवर नाटक की सच्ची समालोचना की, और पत्रों में उसकी प्रशंसा देखकर की थी। उसी वर्ष उपाध्याय प. बदरीनारायण चौधरी ने बहुत ही विस्तृत समालोचना अपनी पत्रिका में निकाली थी। इस दृष्टि से सम्यक आलोचना का हिन्दी सूत्रपात करने वाले इन्हीं दो लेखकों को समझना चाहिए।

भट्ट जी के ललित निबन्धों में आध्यात्मिकता, धर्म, देशभक्त/राष्ट्रप्रेम आदि सांस्कृतिक मूल्य मुख्य रूप से मिलते हैं। इन्होंने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष स्पष्ट अथवा व्यंग्य से अपने निबन्धों द्वारा अपने देश प्रेम तथा राष्ट्रभक्ति को पुष्ट किया है। इनके ललित–निबन्धों में – शंकराचार्य, शंकराचार्य और गुरू नान्हिक (नानक) चैतन्य महाप्रभु स्वामी दयानन्द आदि निबन्ध गिनाए जा सकते हैं।

स्वप्न कथात्मक शैली के निबन्धों में विभिन्न स्वप्न, धूमकेतु 1, धूमकेतु – 2 आदि निबन्ध हैं। इसके अतिरिक्त ललित निबन्ध शैली, नाटकीय – संवाद बोली, स्तोत्र – शैली – व्यंग्य, आक्षेप आलोचना ही मुख्य अंलकृत शैली इनके निबन्धों की मुख्य बोलियां हैं। अधिकांश निबन्ध विचारात्क हैं। गंभीर विषयों संबंधी निबंधों में 'शब्द की आकर्षण शक्ति' साहित्य, जनसमूह का विकास है, आत्मनिरर्भरता, चरित्र शोधन, आत्म गौरव, कल्पना आदि निबन्ध उद्धरणीय हैं। पत्नी स्तवः वधू स्तवराज, दम्मारख्यान, तथा हाकिम आप, उनकी हिम्मत आदि डॉ. मधुकर भट्ट का है कि–इनके ललित निबन्धों में विविधता और रोचकता मिलती है। भट्ट जी ने अनेक शैलियों में अनेक प्रकार के रोचक ललित निबन्ध लिखे हैं। इन्हीं निबन्धों में लेखक बहुधा पाठक से बेतकल्लुफी के साथ बात करता है। इस आत्मीय राग के कारण ये निबन्ध बड़े रोचक बन पड़े हैं। भारतेन्दु कालीन गद्य लेखकों से भट्ट जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उपरोक्त विवरण के अनुसार भट्ट जी ने निबन्ध रचना के साथ नाटक और उपन्यास भी लिखे हैं परन्तु इनकी लोकप्रियता निबन्धों के कारण ही है। निबन्ध लेखन में इन्हें विशेष सफलता मिली है। इनके निबन्धों का विषय राजनीति, साहित्य, नैतिकता संबंधी विषयों से जुड़ा है। इनके निबन्धों में समस्याओं का प्रतिपादन विचारों की गंभीरता लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यंजना भली भांति हो पाई है। इनके निबन्धों में नाटकीय, संलाप, कथोपकथन एवं भाषण पद्धतियों का प्रयोग मिलता है। इतना विविध शैली प्रयोग अन्यत्र किसी निबन्धकार की रचनाओं में नहीं मिलता। हास्य व्यंग्य का पुट तो इनके निबन्धों की विशेषता है।

हिन्दी साहित्य इतिहास लेखकों ने इनके निबन्धों को चार श्रेणियों में बांटा है–

1) वर्णनात्मक 2) विचारात्मक 3) भावात्मक 4) ललित

इन्होंने अपने निबन्धों द्वारा अंग्रेजों की शोषक नीति, शासकों की अति – क्रूरताओं, पुलिस के अत्याचारों आदि का निर्भीकता से पर्दाफाश किया है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, भारतीय आचार–विचार, परम्पराओं आदि के समर्थन में भी इन्होंने निबन्ध लिखकर अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। समीक्षकों का मानना है कि भट्ट जी भारतेन्दु युग के सांस्कृतिक मूल्यों के प्रमुख सूत्रधार थे।

निबन्ध साहित्यः

भारतेन्दु युग को रचनात्सक आन्दोलन के युग माना जाता है। सभा – समिति के नाम से अनेक संगठन उन दिनों को देखने को मिलते। भट्ट जी तो भारतेन्दु के सहयोगी लेखकों में से एक थे। 'हिन्दी प्रदीप' पत्रिका में सामाजिक, काल्पनिक, भावात्मक प्रौंढ़ निबन्ध लिखे। वे स्वतंत्र विचार के आदमी थे, इसलिए आत्मविश्वास के साथ अपनी बात कहते। शुक्ल जी के अनुसार अनेक प्रकार के यह प्रबंध भट्ट जी ने लिखे है, पर सब छोट–छोटे। वे बराबर कहा करते थे कि न जाने कैसे लोग बड़े–बड़े लेख लिख डालते हैं इनके जाने पहचाने निबन्ध इस प्रकार है –

'कवि और चितेरे की डांडा मेड़ी, कोलीन्य और सद्वृत्त, बड़ों–बड़ों के हौंसले, आंसू, सूर्योदय, नयी सभ्यता की बानगी, ढोल के भीतर बोल, संसार कभी एक सा नहीं रहा', रुचि, बातचीत, मेला ठेला, खटका, जवान, उपदेशों की अलग–अलग बानगी' आदि। गंभीर अध्ययन व आलोचनात्मक प्रतिभा के स्पष्ट परिधायक निबंधों में 'साहित्य जन समूह के ह्रदय का विकास है। शब्द की आकर्षण शक्ति–उल्लेखनीय है। इनके अधिकांश निबन्ध विचारात्मक है। कुछेक हल्के – फुल्के निबन्ध भी हैं, साहित्य इतिहासकारों ने इन्हें हिंदी का पहला आलोचक कहा है, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र की तुलना अंग्रेजी निबन्ध कार ऐडिसन – स्ट्रील से की है।''

हिंदी साहित्य इतिहासकारों की दृष्टि में निबन्ध परम्परा का युग सम्वत् 1900 से प्रारम्भ हुआ है। यह क्रांति और संक्रांति का युग था। हिन्दी भाषा की समस्याओं के समाधान का युग था। उस काल खंड में उर्दू का तीव्र प्रचलन था। संस्कृत निष्प्राण हो रही थी। हिन्दी को राष्ट्रीयता का चोला पहनाने की समस्या मुख्य थी। सामाजिक चेतना भी खुली हवा में सांस लेने को आकुल–व्याकुल थी। चौतरफा समस्या औरं संघर्ष का युग था। इन्होंने अपने समय के समाचार पत्रों में खूब लिखा। अपनी पत्रिका 'हिन्दी प्रदीप' में सामाजिक, राजनैतिक, सामयिक विषयों तक निबन्ध लिखे। इन्होंने भावात्मक निबन्धों में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। इन्होंने साधारण विषयों पर निबन्ध लेखन हेतु परिचयात्मक शैली और गंभीर विषयों पर लिखने के लिए भावात्मक शैली का प्रयोग किया। डॉ. संगीता सारस्वत ने इनके निबन्धों की विशेषताओं की चर्चा करते हुए लिखा है कि भट्ट जी अपने समय के श्रेष्ठ निबन्धकार थे। इन्होने यद्यापि नाटक, उपन्यास, कहानी, समालोचना, यात्रा संस्मरण अनुवाद आदि पर अपनी लेखनी चलाई तथापि इन्होंने निबन्ध विधा को प्रतिष्ठित करके उसे उत्कर्ष प्रदान किया। इनके निबन्धों में देशप्रेम तथा देश के लोगों की दशा सुधारने की चिंता निरन्तर विद्यमान है। इनके निबन्ध समाज, समाज की कुरीतियों रूढ़ियों, आडम्बरों, विषमताओं पर चोट करते हैं। इनके विचार कही सीधे–सीधे कहीं व्यंग्य, कहीं –उपदेशात्मक शैली में मिलते है। इन्होंने स्त्री शिक्षा पर भी खूब निबन्ध लिखे हैं। स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए तो इनके निबन्ध घट कर वकालत करते हैं। इनके निबन्ध साहित्य को अध्ययन सुविधा की दृष्टि से दो वर्गों में रख सकते है;– (1) विषय की दृष्टि से (2) रचना शैली की दृष्टि से।

ललित निबन्धः

भट्ट जी ने ललित निबन्ध भी लिखे हैं, जिन्हें व्यक्ति व्यंजक या व्यक्तिवादी निबन्ध या आत्मपरक निबन्ध भी कहते हैं। ये अंग्रेजी के पर्सनल एस्से के अनुरूप उसी तर्ज पर लिखे जाते हैं। कल्पना, स्वच्छंदता, रागात्मकता, व्यक्ति अभिव्यंजना स्वानुभूति इनके गुण हैं। इनका विषय कुछ भी हो सकता हैं। इनमें निबन्ध संबंधी सिद्धांतों का प्रयोग इनमें नगण्य होता है। निबन्धकार के व्यक्तित्व को मुखरित करते हैं। निबन्ध को ललित बनाना तो निबन्ध की कुशलता है अभिव्यक्ति समर्थ है। धर्म, आचार–विचार, अतीत की गौरव, वर्तमान का अध पतन, राजनीतिक दुर्दशा तथा इतिहास, विज्ञान, मनोविज्ञान, आदि विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। समाज सुधार, जिंदादिली, राष्ट्रीयता इस युग के निबन्धों का मुख्य स्वर था। इन्होंने हास्य व्यंग्य का सहारा लेकर कटु तथा आपत्तिजनक, संदर्भों पर भी क्लिष्ट भाषा तथा मुहावरे लोकोक्तियों का प्रयोग कर गंभीर निबन्ध भी लिखे। बालकृष्ण भट्ट के ललित निबन्धों में आध्यात्मिकता धर्म, देशभक्ति या राष्ट्रीयता आदि सांस्कृतिक मूल्यों की ओर अधिक आग्रह मिलता है। विद्वानों के मतानुसार 'आध्यात्मिकता भारतीय सस्कृत का उच्च मूल्य रहा है। आत्मानं विद्धि' अथवा अभयात्मा परानन्द ये सब आध्यात्मिकता के मुख्य सत्र हैं। इस संसार भे यदि प्राणी किसी महान् मूल्य के लिए नहीं जिएगा तो उसका सांसारिक चक्र निरन्तर पेट भरने तक ही सीमित होकर रह जाएगा। चिन्तकों तथा ऋषियों ने इसीलिए 'मोक्ष' केवल निसार से मुक्ति नहीं अपितु 'जन्म–मरण से मुक्ति की कामना और उपायों पर चिंतन कहा है। भट्ट जी के ललित निबन्धों में उनके आध्यात्मिक संबंधी विचारों की पुष्टि मिलती है। इन्होंने ब्रह्म, विष्णु, शिव के–महत्त्व को दर्शाते कहा है– 'ब्रहा, विष्णु, रुद्र ये तीन देवता सदैव संसार में प्रत्यक्ष रहते हैं। मनुष्य के नित्य,

नैमित्तक बरताव और व्यवहार में काम आते हैं। और उन्हीं की दया – दृष्टि का निर्वाह होता है। 'भट्ट निबन्ध माला, भाग–एक भारतेन्दु युगीन निबन्धकारों में विशुद्ध अध्ययन समसामयिक परिस्थितियों के अन्तरंग पहलुओं का विश्लेषण करने की अपूर्व शक्ति थी। भारतेन्दु युग में हरिश्चन्द्र मैंगजीन, हिन्दोस्तान, भारतजीवन, सज्जन, कीर्ति सुधाकर, देश हितैषी, हिन्दी प्रदीप, आनंद कादम्बिनी, नागरी नीरद ब्राह्मण, पीयूष प्रवाह आदि पत्र निकले। अतः इस युग के साहित्यकार कम – अधिक रुप में पत्रकार भी थे।

विषय चयन

यह तो सर्व मान्य है कि लेखक के भाव बोध की अभिव्यक्ति्त निबन्ध में होती है। अपने व्यक्तिव की यथा संभव सभी छायाओं को यहां व्यक्त करने की आजादी लेखकों द्वारा ली जा चुकी हैं। युग की स्थितियों ज्ञान का रूप धारण कर निबन्ध में प्रकट होती हैं। इस संबंध में प्रायः सभी समीक्षक एकमत हैं। भट्ट के विषय चयन में भी एक विशेषता और चमत्कार प्रियता दिखाई देती है। साधारण विषयों पर भी इन्होंने सुंदर लेख लिखे हैं जैसे– कान, नाक, आंख, बातचीत इत्यादि इनकी व्यक्तिगत शैली का अच्छा उदाहरण इनके इन्हीं लेखों में पाया जाता है। भाषा में व्यवहारिक 'प्रवाह, और उतार चढ़ाव दिखाई पड़ता है। मुहावरों के सुन्दर प्रयोग में आत्मीयता और कथन का सीधापन प्रकट होता है जैसेः–

''वही हमारी साधारण बातचीत का ऐसा घरेलू ढंग कि उसनें न करतल ध्वनि का कोई मौका है, न लोगों के कहकहे उड़ाने की कोई बात उसमें रहती है। हम तुम दो आदमी प्रेमपूर्वक संलाप कर रह रहे हैं।'' (बातचीत, शीर्षक निबन्ध से)

''रूपया पैसा हाथ पांव की मैल है हर चलन से जो दंगीला हो गया उसका शिष्ट भले लोगों में यथोचित आदर पाना बहुत कठिन है। इसी से प्रामाणिक पुरुष संसार के अनेक क्षुद्र सुखों को लात मारते हैं। (कोलीन्य और सद्वृत शीर्षक निबन्ध से)।

तथा–

"जितने तरह के अभिमान हैं उनमें कुल का अभियान बड़ा छूछा मालूम होता है। अस्तु, गुण की गरिमा हो या अधिक धन पास हो तो उसे कुल का अभिमान भी सोहता है। कितने मुफलिश कुल्लांच फाके मस्त जब अपने हाड़ के उत्तमता की शेखी में ऐसें जाते हैं तो देखते ही बनता है।'' ('कोलीन्य और सद्वृत' शीर्षक निबन्ध से) डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के अनुसार– भट्ट जी ने लिखा बहुत है। उस समय का लिखना स्वतः, सुख्याय और अन्तप्रेरणा का द्योतक नहीं था। समाचार पत्रों के लिए मसाला जुटाना ही उस समय का प्रेरक भाव था, परन्तु देशकाल की आलोचना का ऐसा अनुभूति मूलक और आत्मीयत से भरा पूरा रूप साधारणतः आज कल भी नहीं मिलता। साधारण विषयों के साथ – साथ भट्ट जी ने कुछ गंभीर विषयों पर भी लिखा है। जैसे –शब्द की आकर्षण शक्ति, साहित्य जनसमूह, आत्म गौरव, कल्पना आदि निबन्ध इस दिशा में उद्धरणीय है। इन निबन्धों में विषय प्रतिपादन की पद्धति भी संयत और स्वच्छ है। इसी सन्दर्भ में जगन्नाथ प्रसाद शर्मा की यह टिप्पणी भी द्रष्टव्य है – "भारतेन्दु भट्ट जी तथा प्रताप नारायण मिश्र के क्रियाशील उद्योग से हिन्दी का गद्य साहित्य बलिष्ठ हो चला था। उसमें परिपक्वता का आभास आने लगा था भिन्न– भिन्न प्रकार के विषयों का दिग्दर्शन होने लगा था, इस समय के गद्य की अवस्था उस पक्षि–शावक के समान थी जो अभी स्फूरण शक्ति का संचय कर रहा हो।' (हिंदी गोली का विकास)

मनोविज्ञान विषयक निबन्ध

भट्ट जी के समीक्षकों का मत है कि 'भट्ट जी गहरी समझ और व्यापक सोच वाले साहित्यकार थे। उन्होंने जहां समाज के विभिन्न पक्षों पर विचार रखे हैं यहां उन्होंने व्यक्तित्व के विश्लेषण में मन के विज्ञान पर भी विमर्श किया है। भट्ट जी के समय में मनोविज्ञन हिन्दी जनता के लिए नया–नया विषय था। अतः पडित बालकृष्ण भट्ट

ने इस विषय को अपनी लेखनी के स्पर्श से प्रकाशित किया। मनोविज्ञान से संबंधित निबन्धों में बाल्यभाव, मनोविज्ञान वक्रता या कुटिलाई, हमारी अपूर्ण अभिलाषाएं, दृढ़ संकल्प आदि उल्लेख्य निबन्ध हैं।'

अन्य विषय

इनके निबन्धों के संग्रह के आधार पर अन्य विषयों में देश–सेवा, भक्त, कृषि, कृषक, ग्राम्यजीवन, भक्तिव्यता, मनुष्य जीवन की कर्त्तव्यता, आत्मशोधन, जीवन भरण तथा शंकराचार्य, शंकराचार्य और गुरु गान्धिक, कृष्ण चौतन्य महाप्रभु, स्वामी दयानंद तथा कणाद दर्शन आदि विषयक निबन्ध उल्लेखनीय हैं। भट्ट जी घनिष्ठ व्यक्ति थे। मनु द्वारा धर्म के अन्तर्गत गिनाए सत्य, अस्तेय, इन्द्रिय निग्रह आदि को आचरणीय मूल्य मानते थे। धर्म में संकीर्णता समुचित मनोवृत्ति को ये स्माज्य मानते थे। उन्होंने तत्कालीन सनातन धर्म के स्वरूप को सर्जित करते हुए कहा है कि– "जिसमें सात ही वर्ष की कन्या ब्याही जाए, जिसमें आठ कनौजिए नौ चुल्हे हों, जिसमें लड़कपन के क्षीर कण्ठ चालक का ब्याह करके स्वच्छंद जीवन का पांव तोड दिया जाए जिसमें एक जाति वाला दसरे जाति वाले को – भोज कर लेने पर पवित्र हों जाए वह सनातन धर्म क्या विचारवान लोगों के पोषण योग्य है?" (हिंदी के ललित निबन्धों में सांस्कृतिक मूल्य– डॉ. संगीता सारस्वत पू. 127) भट्ट जी ने धर्म, संस्कृति जाति आदि विषयों पर अपने ललित निबन्धों में मीठी तथा तीखी चुभती फब्बत्तियां कसी हैं। पाठक स्वयं निर्णय लेता है, उसे उस दिशा में क्या निर्णय लेना चाहिए। निबन्ध के विषय की यही लेखकीय धर्मिता है। भट्ट जी ने आजादी की परी लड़ाई देखी भोगी है। सन् 1867 में वे 14 वर्ष के थे। उन्होंने पराधीनता की पीड़ा झेली है। वे जहां दाव लगता या समय मिलता, अंग्रेजी सरकार को खूब कोसते। डॉ. मधुकर भट्ट ने लिखा है – ''साहित्य सेवा के बाद, भट्ट जी को, देश सेवा ही सबसे प्रिय थी। सन् 1896 के '"हिन्दी प्रदीप' में भट्ट जी ने लिखा है कि विलायत वालों ने जो हमें दासत्व की अवस्था में छोड़ दिया, हमारा शिल्प, वाणिज्य हम से छीन विलायत के अपने भाईयों का हर तरह से पेट भर रहे हैं। हमारे पसीने की मेहनत का फल मुल्क की पैदावरी का सुख आप उठा रहे हैं। सो सब हमारे कुलक्षणों से। मसाल है '"जिसकी लाठी उसकी भैंस (पं. बालकृष्ण भट्ट व्यक्तित्व और कृतित्य पृ. 63) डॉ. संगीत सारस्वत के अनुसार भट्ट जी ने प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष स्पष्ट अथवा व्यंग्य से अपने निबन्धों द्वारा अपने देश प्रेम तथा राष्ट्र भक्ति को स्पष्ट पुष्ट किया है। उसकी निर्भीक राष्ट्रभक्ति और दृढ़ देश प्रेम के मूल्य, उनके निबन्धों के माहर्ष मूल्य हैं। समगत श्री भट्ट जी के निबन्धों में आध्यात्मिकता, धर्म, देशभाक्ति प्रमुख विषय रहे हैं। वास्तव में साहित्य की युग सापेक्षता भी यही थी। देश पराधीन था, स्वतंत्रता पाने का विगुल सर्वत्र गूंज रहा था। देशवासियों में अपनी भाषा, अपना धर्म, अपनी संस्कृति, अपनी आजादी पाने को मांग प्रमुख स्वरूप में उभर रही थी। साहित्य की ही विद्या इस दायित्व को राष्ट्रप्रेमियों के साथ निभा रही थी। अतः ऐसे मूल्यों का समकालीन साहित्य में चर्चित होना सत्य साहित्य की सापेक्षता है। भट्ट जी ने इस स्वर की हर स्तर पर समझा और अपनाया। इसी विशेषता के कारण हिंदी साहित्य में अपना स्थान सुरक्षित कर सके। शुक्ल के शब्दों में –"पंडित प्रताप नारायण मिश्र और बालकृष्ण ने हिन्दी गद्य साहित्य में वही काम किया है जो अंग्रेजी पद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया था।

भाषा प्रयोग

भट्ट जी बहु पठित, बहुश्रृत, बहुविद साहित्यकार थे। अतः उनका भाषा प्रयोग बढ़ा सुविचारित है। सही शब्द का सही स्थान पर प्रयोग वे जानते थे। उनके संस्कृति ज्ञान और पाण्डित्य ने भाषा संस्कार में उन्हें प्रभूत योग दिया। हिन्दी प्रदाय के माध्यम से उन्होंने अपने समकालीन लेखकों की तुलना में समर्थ जीवन्त और सामयिक भाषा दी। इनके निबन्धों में अरबी – फारसी शब्दावली के साथ अंग्रेजी और संस्कृत की पदावली का प्रयोग भी मिलता है। हिन्दी – फारसी की मैत्री भी झलकती है। इसके अतिरिक्त इनकी भाषा में पूर्वीपन विशेषकर अवधी का पुट अधिक मिलता है। अतः इनका भाषा प्रयोग सार्थक, समर्थ, विषयानुकूल, विविधतायुक्त रहा है।

इनके अधिकांश निबन्ध स्वच्छ सुसम्बंद्ध और प्रवाह युक्त हैं। भावात्मक स्थलों पर पहुंचकर आवेश के साथ तत्समता का आधिक्य मिलता है। जैसे – अंग – अंग की सजावट, कोमलता, सलोनापन, और सुकुमारता से मन हर लेती है (यह निबन्ध माला भाग –1, पृ. 21) साहित्य युग सापेक्ष होता है, समकालीनता का स्वच्छ दर्पण होता है। जिसमें समाज, संस्कृति, इतिहास तथा जनजीवन की स्वच्छ छाया प्रतिबिम्बित होती है। ऐसी स्थिति में भाषा की प्रकृति भी विषयानुरुप परिवर्तित होती रहती है। अतः भट्ट जी ने जहां कहीं अपने जमाने की हीनावस्था और आचार पर व्यंग्यात्मक आक्षेप किए हैं वहां कटु और विरोधमूलक अक्खड़ी उक्तियों का वेग भी देखने योग्य हुआ है। इनके निबन्धों में भावात्मक स्थलों में पहंच कर आवेश के साथ तत्संमता का आधिक्य हो जाता है जैसे–

''अब उधर भी नजर फैलाइए – स्वरुप देखिए मानो साक्षात् लक्ष्मी। मुंह से बोल निकला मानो फल झर रहा है। अंग– अंग की सजावट, कोमलता, सलोनापन और सुकुमारता से मन हर लेती है। (भट्ट निबन्धमाला, भाग–1 पृ. 27):

भाषा भाव प्रकाशन का सफल एवं सबल माध्यम है। भाव की सरलता या गभीरता को सरस, रोचक एवं सर्वग्राहा बनाने में भाषा ही सार्थक साधन बनती है। यही लेखक की भाषा शैली की विशिष्टता गिनी जाती है। भट्ट जी की शैली में बात कहने के ढंग में सीधापन मला पावन उत्तर – श्रद्राव दिखाई देता है। क्योंकि सरल योजना, शब्द प्रयोग में मिला जुला रूप भाव प्रकाशन में आत्मीयता पूर्ण मेत्री भाव उनकी भाषा प्रयोग की विशिष्टताएं हैं। इनकी शैली में बनावटी रूप कहीं नहीं मिलता। भट्ट जी के अधिकांश निबन्ध स्वच्छ, सुसंबद्ध और प्रवाह युक्त हैं। इनकी प्रतिनिधि भाषा शैली का स्वरूप इस प्रकार से है –

"मनष्य के जीवन की शोभा या रौनक चरित्र है। आदमी के लिए यह एक ऐसी दौलत है जिसे अपने पास रखने वाला कैसी भी हालत में हो समाज के बीच गोरव और प्रतिष्ठा पाता है। वरन संघों के समूह में जैसा आदर नेक चलन वाले का होता है वैसा उनका नहीं जो धन और वैभव से सब भाति से रंजे–पुंजे और खुशहाल होते हैं।' (भट्ट निबन्ध माला, अंग – 2, पृ. 32)

भट्ट जी की भाषा में प्रवाह और अपनापन रहने पर भी अनेक चिंतय प्रयोग भी दिखाई देते हैं। ब्रजभाषा का 'ऐकार' एवं का बाहुल्य इनकी भाषा शैली में भी चलता रहा कटे, दै, पडेगा, पकेगा, सिधारे, घरेलू, आदि शब्द प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त इनके निबन्धों में पूर्वी शब्दों के प्रयोग की, स्वच्छंदता भी दिखाई देती है। जैसे – देठा, टेघराना, भागाभुगी, चट्ट, जोर, खटराग, ऐंचपेचं आदि। इनकी वाक्यवाली में यत्र –तत्र – अशुद्ध प्रयोग भी दिखाई देता है। जैसे – 'स्वच्छ रखने का एक रास्ता – है', नीचे की ओर जाते हुए', लीला देखा बंद के उत्पत्ति का समय, आदि प्रयोग भी बहुतायत में हुए हैं। कहीं –कहीं बडे वाक्यों में कर्त्ता का प्रयोग भी दो बार हो गया है। उर्दू– फारसी शब्द प्रयोग से भी भट्ट जी को कोई विशेष विरोध नहीं था। अतः यकाकदा वाक्य योजना में क्रम विन्यास भी उर्दू ढंग का आ जाता था। जैसे बाद गिने जाने के सुपुर्द उन्होंने मुझे कर दिया आदि। परन्तु ऐसे प्रयोग, बहुत कब हैं। वास्तव में उस समय निबन्धकारों का ध्यान भाषा के परिष्कार की ओर नहीं था। लिखने की आवश्यकता अधिक थी। पत्रिका प्रकाशन मुख्य लक्ष्य था। अतः विवशता में या शीघ्रता में भी लिखना पड़ता शायद तभी इनके निबन्धों में विरानादि चित्रों के प्रयोग में भी बड़ी असावधानी चलती रही। परन्तु इनकी भाषा में मिश्र जी की अपेक्षा नागरिकता की मात्रा अधिक पाई जाती है। भट्ट जी के लेखों – निबन्धों के शीर्षकों, भाषा की भावभंगिया से स्पष्ट बोध हो जाता है कि यह उन्हीं की लेखनी हैं। उनकी हिंदी भी तो अपनी ही हिन्दी होती थी, जो संजीवता एवं रोचकता पूर्ण थी। उनकी भाषा में ग्रामीणता की झलक नहीं थी। इनका वायुमण्डल साहित्यिक था उनके भाषा प्रयोग में विषय और भाषा की संस्कृति टपकती थी। मुहावरों का भी सर्वत्र सुन्दर प्रयोग हुआ है। कुछेक निबन्धों में तो मुहावरों की लड़ी सी गुथी दिखायी पड़ती है। जैसे – कौलीन्य और सद्‌वृत निबन्ध में "रुपया पैसा हाथ की मैल है'' प्रमाणिक पुरुष संसार के अनेक क्षुद्र सुखों को लात

मारते हैं। तथा कुल का अभिमान नितांत ओछापन है। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल के अनुसार – पं. बालकृष्ण की भाषा अधिकतर वैसी ही होती थी जैसी खरी – खरी सुनाने में कान में लाई जाती थी। जिन लेखों में उनकी चिड़चिडाहट आती है वे विशेष मनोरंजक हैं। नूतन पुरातन का वह संघर्षकाल था। इससे भट्ट जी को चिढ़ाने की पर्याप्त सामग्री मिल जाया करती थी। भाषा उनकी चटपटी, तीखी और चमत्कारपूर्ण होती थी। हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 307।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. बालकृष्ण भट्ट का जन्म कब हुआ था?
2. हिन्दी भाषा का स्टील किसे कहा जाता है।

2.4.1 कौलीन्य और सद्वृत निबंध का सार

'कुलीनता का लक्षण बताते हुए निबन्धकाकर कहते है कि निम्न जाति में पैदा हआ व्यक्ति यदि नेक चलन का है तो वह कुलीन। हम कुछ समझने में भी भूल करते है। प्रायः कुलीनता को नेक चलनी ही मानते है। जिसमें चलन नहीं है उसे कुलीन कहते हम संकोच करते है। दूसरे श्लोक में कहा गया है कि जो धन से हीन है वह दरिद्र नहीं किंतु जो वृत से हीन है वह दरिद्र है। इसलिए वृत को रक्षा करे। धन तो आता है चला जाता है। क्योंकि रुपया पैसा तो हाथ की मैल है। परन्तु जो चलन से दगीला हो जाता है। उसका अच्छे भले लोगों में आदर पाना कठिन हो जाता है। शायद तभी प्रभाणित पुरूष तुच्छ सुखे। को लात मारते हैं। गरीबी के कारण कष्ट झेलते है। परन्तु उस अनुचित कार्य को नहीं करते जो उनकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल होता है। निबन्धकार उस जीवन के माध्यम से अपने कथन को वजनी बनाते हैं जिसमे कहा गया है कि गिरा हुआ क्या गिरेगा। गिरने का डर तो उसे है जो उपर को चढ़ा है। जैसे जो मैला कपड़ा पहने है उसे मेले –गंदे स्थान पर बैठने से क्या परहेज होता है उसी प्रकार चलन ने जो एक बार दगीला हो गया फिर उसे शर्म या शील पालन की चिंता कब होती है। जैसे जो व्यक्ति एक बार जेल हो आया हो, उसे दोबारा जेल जाते कोई शर्म नहीं आती। अभिजात्य या शिराफत भलमनसाहत बड़ी नाजक है कोमल है, संवेदनीय है छोटी सी बात से इसके बिगड़ने का भय समाया रहता है। अतः शील या वृत्त ही कुलीनता का मुख्य अंग है।

सत्कर्म का फल भी आप ही हो पापी जो फल भोगता है वह भी तुम्हीं धारण करते हो। सज्जनों ने जो श्रद्धा है वह भी तुम्हारा रूप है। जो कुलीन घराने में जन्मते, नेक चलन, सद्वृत हो वह भी तुम ही हो। तुम चाहो तो संसार में उसकी लाज बची रहेगी, 'अन्यथा उसका निभाना मुश्किल है 'धनेनकुलम' सूत्र की व्याख्या करते निबन्धकार कहते है। कि आज धन से कुलीनता पर जितना बल दिया जाता है शायद उतना पहले नहीं था परन्तु विदेशियों के संपर्क में आने से हममें यह बात आ गई है कि धन होने से आदमी कुलीन हो जाता है। परन्तु वहां ऐसा नहीं है वहां काम से अधिक–कुलीन समझे जाते हैं। धन से नहीं। वहां यह भी है कि वहां उद्यमशील को धन की कमी रहती ही नहीं। कौलीन्य ऐसी वस्तु नहीं–जो धन से बढ जाती है और गरीबी में घट जाती है। कुलीनता व्यक्ति के काम कर्म पर टिकी है। कुलीन किसी भी घटिया नीच कर्म करने से पहले रुकेगा, जबकि दूसरा जिसमें कुलीनता की गंध भी नहीं वह उस कार्य को बेधड़क करेगा। जितने तरह के अभिमान हैं सबसे बढ़कर कुल का अभिमान है जो छूछा मालूम होता है जिसके पास धन हो, गुण की गरिमा हो, उसे कुल का अभिमान नहीं छोड़ता है। परन्तु जब मुफलिश कुसांध, फाकेगस्तत, अपने हाड़ मास की उसनता की गोदी में ऐंठे जाते हैं, तो देखने बनता है।'' निबन्धकार का मानना है कि 'आर्योक्त' वह आर्योक्त ऐसे शब्द आ गए हैं जो इसकी प्रगति में कदम–कदम पर बाधा डाल रहे हैं हम स्वच्छंद नहीं होने देते जिसके हमारा समाज उवर्रित हो रहा है कुल की रक्षा, श्रेष्ठता सदैव स्त्रियों के साथ रही है। उन पर परिचयान होना कुलनियता की पहली सीढ़ी है।

कुलीनता, बुद्धि और सौन्दर्य इन तीन को लेकर लक्ष्मी डोलती फिरती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यूरोपीय देशों में पाया जाता है। परन्तु भारत में इसके विपरीत है। यहां की भूमि और जलवायु से लक्ष्मी देवी को ईष्या है और किसी कारण यहां लक्ष्मी आई भी तो यूरोप के विपरीत कुमाते, कुढंग कुलाभिमान, और अन्ततः विनाश अपने साथ लेकर। अंत में निबन्धकार यह कह कर विदा लेता है कि प्रिय पाठको ! मैंनें कुलीनता के गुण–दोष सब कह सुनाए हैं अब आप तय करें केसी कुलीनता कौमियत का कलंक है ?

2.4.2 कौलीन्य और सद्वृत निबंध का उद्देश्य

प्रस्तुत निबन्ध के माध्यम से निबन्धकार कुलीनता और सद्वृत का अर्थ स्पष्ट करते हुए यह बताने का प्रयास करते हैं कि कुलीनता का वास्तविक अर्थ क्या होता है। कुलीनता किसी बड़े कुल में जन्म लेने मात्र से बढ़ नहीं जाती और किसी गरीब दरिद्र के घर जन्मने से घट नहीं जाती। जो धन से कुलीनता को जोड़ते हैं या धन के आने से कुलीनता का अदाज लगाते है वे भ्रम में है। धन तो आता जाता रहता है कभी एक हाथ में कभी दूसरे में। परन्तु चरित्र एक बार गीला हो जाए तों अच्छे भले समाज में आवर पाना कठिन हो जाता है। प्रमाशिक पुरुष द्वारा तुच्छ मुर्खों को नकारना भी शायद इसीलिए अच्छा समझा जाता है। वे गरीबी झल लेते हैं, परन्तु अनुचित कार्य नहीं करते। वास्तव में कुलीनता बना रहने का अम उनी को होता है जो कुलीन है, ऊपर चढ़ा है, सम्मानित है। जो भिरा है, अपमानित है, उसके गिरने या अपमानित होने से क्या फर्क है। एक बार जिसका चलन दागी हो जाता है, उसे बार–बारी होने में कोई चिंता लज्जा नहीं होती। अतः शील या वृत की कुलीनता का मुख्य अंग है। 'धनेन कुलन' की बाते भा निराधार है। क्योंकि यह पहचान लेना कि व्यक्ति केसा भी है, परन्तु है पैसे वाला इसलिए वह कुलीन है यह सोचना गलत है। क्योंकि कुलीन अकुलीन में अंतर है। कुलीन किसी भी घटिया कार्य को करने से पूर्व कुछ समय सोचेगा अश्या परन्तु जो अकलीन होगा वह बेधड़क उस कार्य को करेगा। कुल की रक्षा श्रेष्ठता सदैव स्त्रियों के हाथ में है। अतः इनका चरित्रवान होना कुलीनता की पहली सीढ़ी है। कुलीनता और सत को स्पष्ट करना ही लेखक का अभीष्ट है, उद्देश्य है। जिसमें उन्हें सफलता मिली है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. कौलीन्य का अर्थ क्या होता है?
2. निबंध के अनुसार लक्ष्मी किन्हे लेकर डोलती फिरती है?

2.5 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि बालकृष्ण भट्ट का जन्म 23 जून, 1844 ई० को हुआ था, वे इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। इनके माता – पिता का नाम पार्वती देवी एवं बेनी प्रसाद भट्ट था। इनके पिता पेशे से एक व्यापारी थे और माता एक सूसंस्कृत महिला जिन्होंने बालकृष्ण भट्ट के मन में अध्ययन की रूचि एवं लालसा जगाई।

2.6 कठिन शब्दावली

सारस्वत – सरस्वती नदी के तट का

सामयिक – अवसारनुकूल

चद्रोदय – चंद्रमा के उदय होने की आस्था

2.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. 1844 ई. में
2. बालकृष्ण भट्ट

अभ्यास प्रश्न–2

1. कुलीनता
2. कुलीनता, बुद्धि, सौदर्य

2.8 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ० बाबू राम मैहला, हिन्दी निबंधों में सांस्कृतिक चेतना, निर्मला पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
2. डॉ० आरती अग्रवाल, हिन्दी निबंध साहित्य का लालित्य विधान, संजय प्रकाशन, दिल्ली
3. बालकृष्ण भट्ट, कौलीन्य और अद्‌वृत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

2.9 सात्रिक प्रश्न

1. बालकृष्ण भट्ट के जीवन एवं साहित्यिक परिचय पर प्रकाश डालिए।
2. 'कौलीन्य और सद्‌वृत्त' निबंध का प्रतिपाद्य और उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

*****

इकाई–3
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जीवन और साहित्य

संरचना

3.1 भूमिका
3.2 उद्देश्य
3.3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जीवन और साहित्य
3.3.1 जीवन परिचय
3.3.2 साहित्यिक परिचय
स्वयं आकलन प्रश्न–1
3.4 'कविता क्या है' निबंध का सार
3.5 'कविता क्या है' निबंध का उद्देश्य
स्वयं आकलन प्रश्न–2
3.5 सारांश
3.6 कठिन शब्दावली
3.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
3.8 संद्भित पुस्तकें
3.9 सात्रिक प्रश्न

3.1 भूमिका

इकाई दो में हमने बालकृष्ण भट्ट के जीवन और साहित्यिक परिचय का अध्ययन किया। इकाई तीन में हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के जीवन और साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध 'कविता क्या है के सार और उद्देश्य का भी विस्तृत अध्यन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इकाई तीन का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होगे कि –

1. आचार्य रामचन्द्र श्क्ल का जन्म कब और कहां हुआ?
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जीवन परिचय क्या है?
3. रामचन्द्र शुक्ल का साहित्यिक परिचय क्या है?
4. 'कविता क्या है' निबंध का सार क्या है?
5. 'कविता क्या है' निबंध का उद्देश्य क्या है ?

3.3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जीवन और साहित्य

3.3.1 जीवन परिचय

आचार्य शुक्ल का समय सन् 1884 से सन् 1941 तक का समय है। हिन्दी साहित्य में इस कालखण्ड को हिंदी निबन्ध साहित्य का चरमकाल कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। इस पक्ष में बाबू गुलाब राय का मत द्रष्टव्य है – आचार्य रामचन्द्र शक्ल के निबन्ध साहित्य में पदार्पण करने से निबन्ध विधा में एक नया मोड़ आया। बाबू श्यामसुन्दर दास भी शुक्ल जी के समकालीन निबन्धकार हैं। उनके निबन्ध आलोचनात्मक और विचारात्मक

निबन्ध लेखन परम्परा में आते हैं शुक्ल जी की भाषा में गंभीरता है, विचारों एवं भावों को पूर्ण क्षमता के साथ व्यक्त करने की प्रतिभा भी है। बाबू जी के निबन्ध पाण्डित्य एवं ओजपूर्ण निबन्ध हैं जो शुक्ल जी के निबन्धों के साथ बराबर की टक्कर नहीं ले सकते। शुक्ल जी हिन्दी निबन्ध साहित्य को इतना कुछ क्यों और कैसे दे पाए थे इसके लिए उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को संक्षिप्त रूप में जानना जरूरी होगा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के अगोना ग्राम में संवत् 1941 या सन् 1884 ई. को हुआ। इनके पिता का नाम पं. चन्द्रबली शक्ल, और माता विभाषी गावा के उस मिश्र वंश से थी जिसमें कई सौ वर्ष पूर्व विश्ववंद्य स्वामी तुलसीदास का जन्म हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू, अंग्रेजी तथा फारसी में हुई। विधिवत शिक्षा केवल इंटरमीडियेट तक ही हो सकी। कुछ समय तक मिर्जापुर के मिशन स्कूल में अध्यापन कार्य करते रहे। वहां बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' के सम्पर्क में आए और हिन्दी की ओर विशेष झुकाव हुआ। इनके पारिवारिक परिवेश के विषय में डॉ. ललिता प्रसाद सक्सेना 'ललित' ने लिखा हैः –

इनके पिता पं. चन्द्रबली शुक्ल का व्यक्तित्व एक प्रकार से रामचन्द्र शुक्ल के व्यक्तत्व का विरोधी था वे अंग्रेजियत के समर्थक तथा मुसलमानियत के कायल थे। फारसी साहित्य से उन्हें अगाध प्रेम था। मौलवी अकबर अली से उन्होंने 15 वर्ष तक फारसी पढ़ी थी। उनके मित्र भी अधिकतर मुस्लमान थे। ढीली धोती से सख्त नफरत करते, हिन्दी और संस्कृत को 'बेहुदा जवान' समझते और ब्राह्मणों को 'ब्रह्मन' कहते थे। परन्तु वे रामचरितमानस और रामचन्द्रिका घर के सब लोगों को एकत्रित करके चिताकर्षक ढंग से सुनाते उन्हें भारतेन्दु के नाटक प्रिय थे। सुर के पद, बिहारी के दोहे, आदि उनके अध्ययन के विषय थे। आर्य समाज का भी उन पर गहरा प्रभाव था।

ऐसी विपरीत परिस्थिति होने पर भी शुक्ल जी के हिन्दी प्रेम में कोई कमी नहीं आई। अंततः उनका हिन्दी के प्रति अनुराग दृढ़ और विजयी रहा। परिवार में उनकी माता प्रेरक रही। हिन्दी संस्कृत से उन्हें प्रेम था। रामचरितमानस कण्ठस्थ था। यही कारण है कि 'शुक्ल जी का जीवन दर्शन गोस्वामी तुलसीदास से अधिक प्रभावित रहा। उनका स्वदेश एवं जन्म भूमि प्रेम तुलसी की मानस के राम के सदृश था। संभवतया इसी कारण उनके काव्यशास्त्र की भिति तुलसी के काव्य सिद्धातों की नीव पर आधारित है। कुल मिलाकर इनका बाल युवा एवं साहित्यिक व्यक्तित्व अनुवंशिक परंपरा अर्थात मातृ एवं पितृ दोनों पक्षों से प्रभावित रहा जो विकसित होकर अनेक दिशाओं में मुखारित हुआ।

उस समय हिन्दी का पढ़ना घृणा दृष्टि से देखा जाता। स्कूल में भी हिन्दी आठवीं तक पढ़ाई जाती। शुक्ल जी को विधिवत शिक्षा नहीं मिल सकी। बाल्यावस्था से ही उनमें हिन्दी के प्रति आकर्षण था। 'अतः वे पिता के आदेश का उल्लंघन करके चुपके से हिन्दी की कक्ष में पं. गंगा प्रसाद से हिन्दी पढते थे। जब ये आठ वर्ष के थे तब इनकी माता चल बसी। सं. 1950 में इनके पिता ने दूसरा विवाह किया। बिमाता का व्यवहार अच्छा नहीं था परन्तु घर में मातामही का शासन था, जिससे वे दबी रहत। सं. 1953 में 12 वर्ष की अवस्था में इनका विवाह काशी के रायफल ज्योतिष की कन्या के साथ हुआ। मातामही के देहांत ने उन्हें खिन्न एवं गंभीर बना दिया। हंसी के प्रसंगों में भी हंसना बन्द हो गया उनकी गंभीरता उनके साहित्य में भी व्याप्त है।

विभाता के व्यवहार के कारण इनकी स्कूल फीस देना भी बंद हो गई। अतः शिक्षा – व्यय में आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा परन्तु ये कभी हतोत्साहित नहीं हुए। अपना खर्चा चलाने के लिए, ट्यूशन किए, आनन्द कामिनी मासिक पत्रिका में कार्य किया और आर्थिक संकट से मुक्ति पाने हेतु एडीसन के Essary on imagination (कल्पना का आनंद) तथा मेगास्थनीज की 'द इण्डिका'। मेगास्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन शीर्षकों से अनुवाद किया घरेलु स्थितियां विधिवत स्कूल कालेज अध्ययन के पक्ष में नहीं रहीं। पिता की इच्छानुसार 2 वर्ष कानून का अध्ययन कर प्लीडरशिप की परीक्षा भी दी। परन्तु सफल नहीं हो सके क्योंकि उन्हें उसमें रूचि नहीं थी। जिले के कलेक्टर ने उनकी नियक्ति नायव तहसीलदारी के लिए कर दी। उसने उन्हें रविवार को

कार्यालय आने को कहा जिसे उन्होंने आत्म सम्मान की छवि से सही नहीं समझा और त्याग पत्र दे दिया। नौकरी त्याग करने के बाद उन्हें जीवकोपार्जन, का कोई साधन नहीं रहा। लोग फालतू – 'वहतू' समझने लगे। परिणामतः सं. 1965 में मिर्जापुर के मिशन स्कूल में ड्राईग मास्टरी कर ली।

सम्वत् 1966–67 में नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें हिन्दी शब्द सागर के सहायक पद पर नियुक्त किया वहां उनकी गणना हिन्दी के महारथियों में होने लगी। शब्द कोश का कार्य समाप्त होने के बाद –बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक पद पर नियुक्ति हो गई। तब वहां डॉ. श्यामसुन्दर दास विभागाध्यक्ष थे। सं. 1994 में उनके अवकाश ग्रहण करने के बाद शुक्ल जी हिन्दी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त किए गए और अन्तकाल तक उसी पर बने रहे। वे श्वास के रोगी हो गए थे। काशी में माघ सदी रविवार सं. 1997 (2 फरवरी 1947) को महान साहित्य सेवी चल बसे।

श्याम वर्ण, मझले कद और लम्बी – लम्बी मूंछ वाले शुक्ल जी को कोट, पैंट तथा टाई चश्मा लगाए देखकर समन्वय बाद का स्मरण हो आता है। वे घर में प्रायः धोती पहनते और बाहिर सूट पहन कर ही जाते जिसमें उनके व्यक्तित्व पर भारतीय और पाश्चात्य प्रभावों का समन्वित रूप दिखाई देता। जीवन में विपरीत स्थितियों के कारण इनके व्यक्तित्व में गंभीरता रही। वे हास्य –व्यंग्य विनोदी स्वभाव के थे। उन्होंने गंभीर विषयों में भी लोभियों, पाखण्डियों, भूखों तथा साहित्यकारों पर फबतियां कसी, चुटकियां ली और व्यंग्य किए। इनकी आनुवंशिकता तथा परिवेश की देन साहित्य विविधा के रूप में मुखरित हुई। इन्हें अपने जीवन में साहित्य प्रेमियों से मिलने के अवसर मिले जिससे उनका यह प्रेम निरन्तर बढ़ता गया। सोलह वर्ष की आयु में ही वे अपनी साहित्य मण्डली के नेता बनें शुक्ल जी शील और सौम्य प्रकृति के थे, कभी – कभी अत्यधिक शालीनता उनके दुःखों का कारण भी बन जाती।

3.3.2 साहित्यिक परिचय

शुक्ल जी को प्रकृति से अपार प्रेम था। उनका समस्त साहित्य उनके प्रकृति प्रेमी अंग्रेज़ी के कवि वर्ड्सवर्थ से कम नहीं था। वे आलम्बन रूप में प्रकृति वर्णन के बड़े समर्थक थे। उनके जीवन का पूर्वाद्ध मिर्जापर में बीता था। पं. विद्येश्वरी प्रसाद और रामेश्वर नाथ शुक्ल भी प्रकृति प्रेमी थे, जिनके साथ ये खूब घुमा करते। शुक्ल जी ने स्वाध्याय द्वारा संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला और हिंदी के प्राचीन साहित्य का गंभीरता से अध्ययन किया। हिन्दी साहित्य में उनका प्रवेश कवि और साहित्यकार के रूप में हुआ माना जाता है। उन्होंने बंगला और अंग्रेजी साहित्य के कुछ सफल अनुवाद भी किए। आगे चलकर आलोचना इनका मुख्य विषय बन गया। वे हिन्दी के यग प्रवर्तक आलोचक है। इनके तुलसीदास ग्रंथ से ही हिन्दी में प्रौढ़ आलोचना का सूत्रपात हुआ। उन्होंने आलोचना के शास्त्रीय पक्ष का विशद विवेचन करने के साथ – साथ सूर, तुलसी, जायसी, की आलोचना द्वारा व्यावहारिक आलोचना का भी मार्ग प्रशस्त किया। अतः निबन्ध क्षेत्र में इनका स्थान सर्वोच्च है। शुक्ल जी अगाध पांडित्य और बहमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। वे नाटककार, कहानीकार, कवि, आलोचक, निवन्धकार, अनुवादक, इतिहासकार, कोश रचयिता, ग्रंथों – पत्रों के संपादक सब कुछ एक साथ थे। उनके साहित्य को प्रकाशित ग्रंथों के आधार पर यूं कहा जा सकता है –

1. नाटक	हास्यविनोद, पृथ्वीराज
2. काव्य	लाइट ऑफ एशिया पर आधारित प्रबन्ध काव्य 'बुद्ध चरित लिवा और मनोहर छटा एवं प्रकृति संबंधी अन्य कविताएं कवि हृदय की परिचायक हैं।
3. व्यावसायिक आलोचना	रस मीमांसा
4. सैद्धान्तिक आलोचना में	हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (प्रथम) वैज्ञानिक इतिहास है।
5. काव्यालोचना	इस में इतिहास के साथ, कवियों की समालोचना तथा उनका मूल्यांकन तथा कालों की प्रवृत्तियों की विवेचना है।
6. निबन्ध	चिन्तामणि के दोनों भागों के निबन्ध अपने क्षेत्र में बेजोड़ हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य, भाषा की शक्ति, उपन्यास, मित्रता आदि निबन्ध प्रारंभिक रचनाएं होने पर भी उनकी विषय संबंधी क्षमता एवं प्रज्ञा के परिचायक है। ऐसा इनके निबन्ध समीक्षकों का मत है।
7. अनुवाद कार्यों में;	(1) कल्पना का आनन्द' तथा (2) 'मेगस्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन' (3) शंशाक–राखालदास (वद्योपद्याय के बंगला उपन्यास का अनुवाद) (4) विश्व प्रपंच (जर्मन दार्शनिक हैकल के ग्रंथ) (Riddle of the universe का अनुवाद) इसके अतिरिक्त (5) आदर्श जीवन (सैमुअल स्माईल के) (Plan Iving and high thanking के आधार पर लिखित है। (6) राज्य प्रबन्ध शिक्षा (Mirror Hints) (7) अखण्डत्व सदाचार, उत्तम प्रकृति आदि निबन्ध।

शुक्ल जी एक कुशल संपादक भी थे। उनके संपादित ग्रंथों में निम्नलिखित रचनाएं मुख्य हैं –

1) हिन्दी शब्द सागर (2) जायसी ग्रथावली (3) तुलसी संभावली (4) अमरगीत सार (5) आनन्द कादम्बिनी पत्रिका सम्पादन आदि।

निबन्ध साहित्य

शुक्ल जी के निबन्धों को विषय की दृष्टि से दो भागों में– बांटा गया है–

(1) मनोविकार विषयक (2) आलोचना विषयक

मनोविकार विषयक निबन्धों में भाव या मनोविकार' 'उत्साह', 'श्रद्धा भक्ति', कृष्णा लज्जा, और ग्लानि, लोभ और प्रीति, घृणा' ईर्ष्या, भय तथा 'क्रोध' दस निबन्ध आते हैं। कुछ विद्वान इन्हें मनोवैज्ञानिक निबन्ध भी कहते हैं। परन्तु अधिक का मानना है कि इन निबन्धों का विवेचन जीवन तथा साहित्य के आधार पर किया गया है न कि मनोवैज्ञानिक ग्रंथों के आधार पर। निबन्धकार ने भी इन्हें साहित्य की दृष्टि से ही देखा है। आलोचना विषयक निबन्धों के अन्तर्गत कविता क्या है? भारतेन्दु हरिशचन्द्र, तुलसी का भक्त मार्ग, मानस की धर्मभूमि, शब्द में लोकमंगल की साधनावस्था, साधारणीकरण, और व्यक्ति बैचित्र्यवाद, 'रसानात्मक बोध के विविधरूष, तथा चिन्तामणि के द्वितीय भाग के 'काव्य में रहस्यवाद' 'काव्य में अभिव्यंजनावाद का निबन्धत्व संदिग्ध है। यदि इसे निबन्ध मानें तो वह आलोचना विषयक निबन्धों में ही गिना जाएगा। समीक्षको ने इनके आलोचना विषयक निबन्धों में ही गिना जाएगा। समीक्षकों ने इनके आलोचना विषयक निबन्धों को पुनः दो भागों में बांटा है –

(क) सैद्धान्तिक आलोचना विषयक

(ख) व्यवहारिक आलोचना विषयक

पहले वर्ग में 'कविता क्या है', 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था, साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद' 'रसात्मक बोध के विविध रूप', काव्य में प्राकृतिक दृश्य, तथा चिन्तामणि भाग के निबन्ध आते हैं। (ख) दूसरे वर्ग में – (1) भारतेन्दु हरिशचन्द्र (2) तुलसी का भक्ति मार्ग और (3) मानस की धर्मभूमि गिनाए जाते हैं।

विशेषताएं

निबन्ध साहित्य आलोचकों, साहित्य इतिहासकारों में निबन्धकार के मूल्यांकन हेतु उसके निबन्धों की पना संबंधी शिल्पगत विशेषताओं को मूल्यांकन आधार पर माना है। निबन्धकार शुक्ल के मूल्यांकन हेतु उनकी निबंध रचना को शिल्पगत विशेषताओं की दृष्टि से देखना सम्यक होगा –

मौलिकता

निबन्ध की मौलिकता उसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। आलोचकों के अनुसार शुक्ल जी के चिन्तामणि में संकलित सभी मौलिक कहे जाते हैं, जो हिन्दी साहित्य को उनकी अमूल्य उत्कृष्ट देन है। उनमें सर्व नवीन विचारधारा है। उन पर किसी पाश्चात्य या भारतीय विचारक या साहित्यकार का कोई प्रभाव नहीं है। उनके निबंधकार की निजी विचारधारा तथा दृष्टिकोण है जो 'स्वकीय साहित्यिक, सरस एवं प्रभावोत्यादक शैली में अभिव्यक्त है। उनकी मान्यताएं, उनका विषयचयन, उनकी तर्क श्रृंखलाएं उनकी अन्योक्त उनके सरस रोचक उदाहरण अपने हैं और यही उनकी अपनी मौलिकता है। शुक्ल जी के दस निबन्ध ऐसे हैं, जिनका संबंध मुख्यतः मनोविज्ञान से है। ये निबन्ध उनके साहित्यालोचन का मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते है। डॉ. रामविलास शर्मा अनुसार, "इन में उसकी स्थापनाएं मौलिक हैं और न केवल साहित्यशास्त्र को, वरन् मनोविज्ञान और समाज शास्त्र को भी महत्त्वपूर्ण देन है। डॉ. जयनाथ नलिन के अनुसार अनेक समीक्षकों ने आचार्य शुक्ल के निबन्धों को मनोवैज्ञानिक कहा है। उत्साह, क्रोध, करूणा, लोभ और प्रीति, श्रद्धा और भक्ति, घृणा ईष्या आदि निबन्ध मनोविज्ञान के लिए भारी देन हैं। समान लगने वाले मनोविकारों से अंतर का जो विवेचन शिल्पी ने किया है, बह अपनी कला और साहित्य विषयक आत्माओं पर अधिक आधारित है।

संक्षिप्तता

निबन्ध का निबंधत्व संक्षिप्तता में है। इस कथन में कोई वो तप नहीं। निबन्ध का आकार सीमित हो इससे स्पष्ट है कि निबन्धकार को अपना विषय संक्षेप में विवेचित करना चाहिए। इसका यह नहीं कि निबन्ध अपने विषय के विवेचन की गहराई में न जाए, उसके विविध पक्षों में से कुछेक पर ही विचार करे। बल्कि इसका अर्थ यह है कि विषय का विवेचन इतना व्यापक और गभीर न हो कि वह निबन्ध न रह कर एक ग्रथ बन जाए। हर्बटरीड ने तो निबन्ध को ऐसी रचना को माना है, जिस की शब्द संख्या 3500 से 5000 तक हो। परन्तु इस नियम का कठोरता से पालन संभव नहीं क्योंकि किसी भी निबन्ध की शब्द संख्या विषय की व्यापकता – अव्यापाकता पर निर्भर करती है। जहां मेकाले, कार्लाइल तथा लॉक के निबन्ध 50 या उससे अधिक पृष्ठ वाले हैं, निबन्ध संज्ञा के अधिकारी नहीं हैं। वहाँ 40– 50 पृष्ठ वाली निबन्ध रचनाएं जिनमें निबन्ध की विशेषताएं विद्यमान हो निबन्ध कहलाने की अधिकारिणी हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध भी इसके अपवाद नहीं हैं। चिन्तामणि भाग दो के निबन्ध 'काव्य में रहस्यवाद' तथा 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' इस विशेषता की सीमा में नहीं आते। अन्य निबन्धों में भी इस शर्त का पालन नही मिलता। इसका कारण विषय के प्रति उनकी भावकुता तथा विचारधारा के प्रवाह के फलस्वरूप विस्तृत विवेचन की प्रवृति हो सकता है। दोनों निबन्ध ग्रंथ जैसे लगते हैं। इनका प्रकाशन अलग से पुस्तक रूप में भी हो चुका है, जिनकी पृष्ठ संव्या क्रमशः 111 तथा 82 है। इसी प्रकार 'कविता क्या है' निबन्ध की पृष्ठ संख्या 46, श्रद्धाभक्ति की 27, 'रसात्मक बोध के विविध रूप की 30 है। चिन्तामणि भाग दो में काव्य में प्राकृतिक दृश्य निबन्ध की पृष्ठ संख्या 45 है। संभवतया इन निबन्धों की पृष्ठ संख्या विषय की व्यापकता के कारण अधिक हो गई है, परन्तु इनके निबन्धत्व में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। विषय को व्यापकता एवं गंभीरता के कारण ये रचनाएं निबन्ध ही है। परन्तु चिंतामणि भाग– 2 में "भाव या मनोविकार'' 5 पृष्ठों का निबन्ध है और मानस की धर्म भूमि 6 पृष्ठ का धर्म भूमि 6 पृष्ठ का।

हृदय एवं बुद्धि का समन्वय

शुक्ल जी का व्यक्तित्व भाव एवं विचार का समन्वय रहा। परिणामतः इनकी निबन्ध रचनाएं भी विचारात्मकता एवं भावात्मकता का समन्वय है। उन्होंने चिन्तामणि प्रथम भाग के निवेदन में लिखा है – इस पुस्तक में अन्तर्यात्रा में पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकरा अपना रास्ता निकालती हुई बुद्धि जहां कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों पर पहची है। वहां हृदय भी थोड़ा बहुत रमता अपनी प्रवृति के अनुसार कुछ कहता गया है। इस प्रकार यात्रा के श्रम का परिहार होता रहा है। बुद्धि पथ पर हृदय भी अपने लिए कुछ न कुछ पाता रहा है।

अतः उन्होंने अपने निबन्धों में हृदय एवं बुद्धि का समन्वय स्वयं कबूल किया है। मनोविज्ञान एवं साहित्य शास्त्रीय, जटिलता, नीरसता को हल्का करने के लिए मामिकता प्रदान करना जरूरी समझा। इसके लिए उन्होंने यत्र –तत्र सरसता एवं आकर्षण विधान हेतु अपेक्षित तत्त्वों की योजना की है। उनका निजी दृष्टिकोण का कुछ अंश द्रष्टव्य है–

निबन्ध लेखक जिधर चलता है उधर अपनी सम्पूर्ण मानसिक सता के साथ अर्थात बद्धि और भावात्मक हृदय दोनों लिए हुए। जो कृष्ण प्रकृति के हैं, उनका मन किसीं बात को लेकर अर्थ संबंध सूत्र पकडे हए करुण स्थलों की ओर झुकता और गंभीर वेदना का अनुभव करता चलता है। जो विनोदशील है. उनकी दृष्टि उसी बात को लेकर उसके ऐसे पक्षों की ओर दौड़ती हें सामने पाकर कोई इसे बिना नहीं रह सकता। इसी प्रकार वस्तु के नाना सूक्ष्म व्योरों पर दृष्टि गड़ाने वाला लेखक किसी छोटी से छोटी तुच्छ से तुच्छ बात को भी गंभीर विषय का सा रूप देकर पाण्डित्यपूर्ण भाषा की पूरी नकल करता हुआ सामने रख सकता है। पर सब अवस्थाओं में कोई बात अवश्य चाहिए। (संदर्भ हिंदी साहित्य का इतिहास, प. 483) उनके इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करते इनके निबन्धों में से अनेक अवतरण उद्धत किए जा सकते हैं।

रोचकता, सजीवता, आर्कषण

एक सफल निबन्ध में रोचकता, सजीवता तथा विषय का आकर्षण होना जरूरी है। निबन्धकार अपने निबन्धों में इन विशेषता ओं को लाने में जितना कशल होगा उसे इस क्षेत्र में उतनी ही अधिक सफलता मिलती है। हास्य– व्यंग्य की योजना, कहावतों – महावरों का प्रयोग, शब्द – शक्तियों के उप्योग, लक्षणा एवं व्यंजना के चमत्कार की आकर्षक एवं साथक सुष्टि शब्द चयन कौशल, सहज अभिव्यक्ति, स्वाभाविक अलंकरण, निबन्धकार की नैसर्गिक प्रतिभा आदि के कारण निबन्ध में रोचकता, सरसता, सजीवता तथा आकर्षण की सृष्टि होती है यही उसका प्राण है। जैसे दुखी व्यक्त जितना ही असहाय और असमर्थ होगा उतनी ही अधिक उसके प्रति हमारी करुणा होगी। एक अनाथ अवला को भार ढोते देख हमें जितनी करुणा होगी उतनी एक सिपाही या पहलवान को पिटते देख नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि परस्पर साहाय्य के जो व्यापक उद्देश्य है, उनका धारण करने वाला मनुष्य का छोटा सा अन्तकरण नहीं विश्वात्मा है।' (संदर्भ – करुणा)

व्यंग्यात्मकता

व्यंग्यात्मकता निबन्ध की महत्वपूर्ण विशेषता है। इस प्रयोग से निबन्ध में रोचकता और आकर्षण बढता है। इसके अभाव में निबन्ध एक नीरस शुष्क रचना रह जाती है। फलतः निबन्धकार का उद्देश्य पूरा नहीं होता। शुक्ल जी ने अपने निबन्धों में इस विशेषता पर पूरा बल दिया है। उनके हरेक निबन्ध में विचित्र अकर्षण रहता है। उनकी प्रखर प्रतिभा अपने तीखे – मीठे व्यंग्य प्रयोग के कारण ऐसी निबन्ध सृष्टि करती जाती है कि पाठक उनकी व्यंग्य – कुशलता पर मुग्ध हो जाता है। कुछेक उदाहरण देखिए–

"सबकी टकटकी टके की ओर लग गई। लक्ष्मी की मूर्ति धातुमयी हो गई, उपासक सब पत्थर के हो गये। धीरे–धीरे यह दशा आई कि जो बातें पारस्परिक प्रेम की दृष्टि से, धर्म की दृष्टि से की जाती थी वे भी रूपये – पैसे की दृष्टि से की जाने लगी। आजकल तो बहुत सी बातें धातु के ठीकरों पर ठहरा दी गई हैं (संदर्भ लोभ और प्रीति, चिन्तामणि भाग– 2, (पृ. 73–74)

जीवन निर्वाह की कठिनता से उत्पन्न स्वार्थ की शुष्क प्रेरणा के कारण उसे दूसरे के दुःख की ओर ध्यान देने, उस पर दया करने और उसके दुख की निवृति का सुख प्राप्त करने की फुरसत नहीं। इस प्रकार हृदय को दबाकर केवल क्रूर आवश्यकता और कृत्रिम नियमों के अनुसार हीं चलने पर विवश और कठपतली सा जड़ हो जाता है। उसकी भावुकता का नाश हो जाता है। घमण्डी लोग मनोवेगों का सच्चा निर्वाह न देख हताश हो मुंह बनाकर कहने लगे हैं– करुणा छोड़ो प्रेम छोड़ो। बस, हाथ – पैर हिलाओ, काम करो। (चिन्तामणि – करुणा, पु. 43)

समव्यवयात्मकता

डॉ. ललिता प्रसाद सक्सेना के शब्दों में शुक्ल जी का समन्वयवाद प्रसिद्ध है। भारतीय – पाश्चात्य, भारतीय – यूरोपीय, प्राचीन नवीन हृदय एवं बुद्ध, भावुकता एवं विचारात्मकता, साहित्य एंव जीवन सभी में समन्वय के हामी हैं। उनका रहन–सहन, वैशभूषा, भाषा शैली आदि भी समन्वयात्मक प्रतिभा के परिचायक हैं। शुक्ल जी के निबन्ध ा साहित्य के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि उनके न तो प्राचीनता के प्रति अनुचित आग्रह है न नवीनता के प्रति मोह। उनके अधिकांश निबन्ध विचारात्मक हैं। परन्तु उनमें उनके हृदय और व्यक्तितत्त्व का समन्वय है। उनका हृदय उनकी बुद्धि के समानान्तर रहा है। उनकी भावुकता के कारण ही विचारात्मक निबन्ध भी रोचक एवं ग्रहणीय है। उन्होंने साहित्य को जीवन का दिग्दर्शन, पथप्रदर्शक एवं उन्नायक माना है। श्रद्धा – भक्ति निबन्ध का यह अवतरण द्रष्टव्य है–

वृत्तियों की भिन्नता के बीच से जो मार्ग निकल सकेगा वही लोक रक्षा का मार्ग होगा – यही धर्म का चलता हुआ मार्ग होगा। जिसमें शिष्टों, के आदर, दीनों पर वया, दुष्टों के वमन आदि जीवन के अनेक रूपों को सौंदर्य दिखाई पड़ेगा, वही सर्वागंपूर्ण लोक – धर्म का मार्ग होगा। इसी प्रकार एक उदाहरण 'करुणा' निबन्ध से भी द्रष्टव्य है –

''झूठ बोलने से बहुधा बड़े – बड़े अनर्थ हो जाते हैं, इसी से इसका अभ्यास रोकने के लिए नियम कर दिया गया कि किसी भी अवस्था में झूठ बोला ही न जाए। पर मनोरंजन खुशामद और शिष्टाचार आदि के बहाने संसार में बहुत सा झूठा बोला जाता है। जिस पर कोई समाज कुपित नहीं होता। यदि किसी के झूठ बोलने के कोई निरपराध और निःसहाय व्यक्ति अनुचित दण्ड से बच जाए तो ऐसा बोलना बुरा नहीं बतलाया गया है क्योंकि नियम शील या सद्वृति का साधक है समकक्ष नहीं।''

गंभीरता

शुक्ल जी के निबन्ध का विषय गंभीर है। समीक्षकों के शब्दों में, "उनके निबन्ध न केवल गंभीर व्यक्तित्व की गंभीर सृष्टि है बल्कि उनके विषय भी प्रायः सभी गंभीर हैं। एक ओर उनके मनोविकार विषयक निबन्धों की गंभीरता है तो दूसरी और उनकी समीक्षात्मक निबन्धों की गंभीरता लगता है कि दोनों एक – दूसरे से छोड़ करके आगे निकल जाना चाहते हैं। संभवतया इसी कारण सामान्य पाठक उनके निबन्धों के प्रति रुचि नहीं दिखाता। परन्तु जिन पाठकों को गंभीर विषयों के विवेचन में रुचि हैं उनके लिए शुक्ल जी के निबन्ध सरस, साहित्यिक, प्रभावोत्पादक तथा आनन्दायक होते हैं। तुलसी का भक्ति मार्ग ही यो काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था या साधारणीकरण या व्यक्ति वैचित्र्यावाद अथवा 'मानस की धर्मभूमि' सभी निबन्धों में उनके गंभीर व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं।

पूर्णता

निबन्ध के विषय को पूर्ण रूप से या उस पर सम्यक रूप से विचार हो, निबन्धकार, अपनी विधागत सीमा में रहता हुआ भी उसमें विषय पर पूर्ण रूप से विचार करे उसे पूर्णता कहते हैं। यह सही है कि विषय की पर्णता को स्पष्ट करने हेत, या विवेचन करने हेतु मिलना विस्तार शोध ग्रंथ में सहज संभव होता है उतना निबन्ध में नहीं। शुक्ल जी एक कुशल निबन्धकार है, अत स्वभावतः उन्होंने इस बात का ध्यान रखा है। उनके मनोविकार विषयक निबन्ध इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनमें निबन्धकार की मौलिकता सहज स्वाभाविक, अभिव्यक्ति, क्षमता तथा निबंधोचित पूर्णता देखने को मिलती है। कविता क्या है ? 'रसात्मक बोध के विविध रूप' 'काव्य के लोकमंगल की साधनावस्था', 'साधारणीकरण एवं व्यक्ति वीचित्यवाद', 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य' आदि निबन्ध इस विशेषता के उदाहरण हैं।

वर्गीकरण की प्रवृत्ति

विद्वानों का मत है के वर्गीकरण विचारात्मक निबन्धों की एक विशेषता है। निबन्धकार इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता शुक्ल जी भी इसके अपवाद नहीं है। उन्होंने अपने विवेचन के लिए निबन्धकार की इस प्रवृति का परिचय दिया है, परन्तु अतिशयता कहीं नहीं की है। श्रद्धाभक्ति निबन्ध में इस विशेषता को रेखांकित किया जा सकता है इसी प्रकार 'रसात्मक बोध के विविध रूप'। 'मानस की धर्मभूमि ', 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद' आदि निबन्धों में इस विशेषता का निर्वाह मिलता है। इस प्रवृति के कारण निबन्ध की विषय विवेचना हेतु संगति, प्रवाह, औचित्य एवं क्रमबद्धता का प्रश्रय मिला है।

सम्प्रेषण पटुता

सम्प्रेषणीयता को निबन्ध की महत्वपूर्ण विशेषता माना है निबन्धकार की कुशलता भी इस बात में है कि गंभीर से गंभीर विषय के विवेचन को भी पाठकों के लिए सहज, सरस तथा बोधगम्य बना दे। शुक्ल जी भी इस में पर्याप्त पटु हैं। उनको निबन्ध की सम्प्रेषण क्षमता प्रसिद्ध हैं। ये गंभीर विषयों की भी अपनी सम्प्रेषण क्षमता के लिए सरस, सुस्पष्ट एवं बोध गम्य बनाने में सफल रहे हैं। ईष्या, क्रोध, 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था निबन्ध में इस विशेषता के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। समीक्षकों के अनुसार उन्होंने विभिन्न प्रकार के आदि साधनों, उपकरणों एवं पद्धतियों के प्रयोग किए है। वे कभी किसी बात को सूत्र रूप में कहे जीवन एवं साहित्य विभिन्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करते हैं। कभी व्याख्या एवं उदाहरणों द्वारा पहले बात को स्पष्ट करके अंत में निष्कर्ष देते हैं – तथ्य को हृदयगन कराने के लिए वे कभी किसी अन्य समान तथ्य से तुलना करते, कभी किसी तथ्य से वैषम्य प्रदर्शित करते हैं, कभी बिम्बों का आश्रय लेते हैं और कभी अमूर्त विषयों का मूर्तिकरण करके उसे काव्यात्मक एवं सरस बनाते हैं।" इस विशेषता के कारण इनके निबन्धों में मानवीकरण, अलंकरण, आदि के सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। ऐसे प्रयोग द्वारा जटिल विषय बोध में सुगमता बढ़ी है।

उत्कृष्ट गद्यात्मकता

आचार्य शुक्ल गद्य को कवियों की कसौटी मानते हैं निबन्ध को गद्य की कसौटी। उनके अनुसार पूर्ण शक्ति का विकास निबन्धों में ही संभव होता है।" यह कथन उनके निबन्धों में पूर्णतया चरितार्थ होता है। उनके विचार में भाषा प्रौढ़, परिष्कृत, व्याकरण, सम्मत, प्रभावोत्पादक है। उनके निबन्ध उत्कृष्ट गद्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं तत्सम, तद्भव, अर्द्धत्सम, अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी तत्सम शब्दों का यथोचित स्थान पर व्यवहार मिलता है।

सशक्त भाषा शैली

वही निबन्ध सफल विचारात्मक निबन्ध कहा जाता है कि जिसमें विषय निरूपण के सर्वगीणता का गुण जाए। यह मत शुक्ल जी का है। यह इस मत के प्रस्तोता हैं। कहने का अभिप्राय शुक्ल जी ने निबन्ध विधा के विषय में मान्यता या विशेषता का प्रतिपादन किया उस पर स्वयं भी पूरे उतरे हैं।' उनके निबन्ध किसी का सीधा

सपाट वर्णन नहीं है। वे उस विषय को काव्य तर्क संगत पद्धति के अनुरूप पक्ष और विपक्ष या वादी प्रतिवादी से भी जोड़ लेते हैं। वे पहले विपक्षी द्वारा सभी संभावित प्रश्नों एंव तर्कों को प्रस्तुत करते हैं और तदनन्तर सभी प्रश्नों पर एक – एक करके या एक साथ लेकर अत्यंत संयम के साथ निगूढ़ चिन्तन की पद्धति के आधार पर उठाई गई। शंका का समुचित समाधान प्रस्तुत करते हैं।" इनके निबन्ध विचारात्मक और आलोचनात्मक परम्परा के थे। इनके निबन्ध इनकी भाषा परिष्कृत और संस्कृत निष्ठ है। लेखन शैली विशलेषणात्मक है।

शुक्ल जी की भाषा – शैली को समीक्षकों ने सशक्त तर्कसंगत' भाषा शैली का नाम दिया है। उनका पाठक जो उनकी शैली का निर्भीक व्यक्ति की सशक्त शैली के रूप में स्वीकार करता है। उनकी शैली में घनत्व गुण' की प्रधान हैं इसी कारण इनकी शैली में प्रभावशक्ति है। उनके द्वारा प्रस्तुत एवं स्थापित मान्यताओं में किसी प्रकार का अन्तरिक नहीं दिखाई देता ऐसा सर्वसम्मत मत है। जैनेन्द्र कमार के शब्दों में, ''वे चौहद्दी बांधकर अपनी विपक्षी को पहले लेते है और जब वह कही भाग निकलने में सर्वथा असमर्थ हो जाता है तब उसे अपने प्रहार से क्षत –विक्षत कर देते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त संक्षिप्त विवचेन से हम यह निष्कर्ष पाते हैं कि शुक्ल जी के निबन्धों में निबन्ध विद्या की वे सभी अपेक्षित विशेषताएं हैं जो किसी भी विचारात्मक निबन्धकार के उत्कृष्ट निबन्धों में हो सकती है। उनका यह कथन कि 'उनके निबन्ध उनकी अपनी कलात्मक अभिधि एवं प्रज्ञा की सृष्टि हैं – पूर्णतया सार्थक है। उनके निबन्धों में उनका अपना व्यक्तित्व, जीवन की अनुभूतियां, भावोच्छवास, करूणोदगार, जीवनादर्श, निबन्ध विषय दृष्टिकोण तथा कला संबंधी सोच एवं सिद्धांत भुखरित हैं। उनकी भाषा–शैली अनेक निबन्धकारों की आदर्श बनी हैं। उनके निबन्धों से हृदय एवं मस्तिष्क का मणि कंचन संयोग मिलता है। '"उनकी निबन्ध रचना शैली के अन्तर्गत हमें लाक्षणिक और वैज्ञानिक शैलियों के दर्शन होते हैं। वे समास शैली द्वारा सागर को गागर में भरने का प्रयास करते हैं'' जैसे – ब्रह्म की व्यस्त सता सतत क्रियमाण हैं एवं धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है।'' प्रत्यक्ष निश्चय कराता है और परोक्ष अनिश्चय में डालता है। कहना छोड़ो प्रेम छोड़ो। बस हाथ पैर हिलाओ काम करो तथा करुणा सेंत की सोदा नहीं।'' उनकी निबन्ध कला की हर आलोचक ने प्रशंसा की है उनका महत्व आज भी पूर्ववत हैं वे आज भी हिन्दी जगत में अपनी समता नहीं रखते। हिन्दी निबन्ध साहित्य को समृद्ध करने में उनका योगदान नित्य नवीन एवं चिरस्मरणीय है। समग्रतः शुक्ल जी का निबन्ध साहित्य में प्रवेश हिन्दी के निबन्ध लेखन के लिए 'मील का पत्थर' का कार्य करता है। ऐसा निश्चित है कि लगातार बीस वर्षो तक (सन 1920 से 1940 तक) शुक्ल जी का प्रभुत्व रहा। इस काल खंड को हिन्दी निबन्ध साहित्य का चरमकाल कहा जाता है। इस युग के निबन्ध साहित्य और आचार्य शुक्ल के विषय में अपने विचार व्यक्त करते बाबू गुलाब राय ने लिखा है।' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध साहित्य में पदार्पण करने से निबन्ध विद्या में एक नया मोड़ लिया।'' समग्र जो प्रतिभा, ज्ञान और तर्क की शक्ति निबन्धकार शुक्ल में थी, वैसी बौद्धिक एवं तर्क तथा उन की सामर्थ्य उनके समकालीन किसी भी निबन्धकार में नहीं थी विशेषकर उस क्षेत्र में जिसे शुक्ल ने अपने निबन्धों का विषय बनाया हैं। निबन्ध रचना का आरम्भ कुछ विद्वानों ने बालकृष्ण भट्ट और शिव प्रसाद सितारे हिन्द से माना है परन्तु निबन्ध की अपेक्षित विशेषताएं शुक्ल जी के निबन्धों में ही मिलती है। इसलिए हिन्दी साहित्य में निबन्ध–रचना का आरम्भ शुक्ल से ही मानना बाजिब है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. 'रामचन्द्र शुक्ल के निबंध साहित्य में पदोपण करने से निबंध विद्या में एक नया मोड़ आया' किसका कथन है?
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म कब हुआ?

3.4 कविता क्या हैं निबंध का सार

कविता क्या है' निबंध का सार 'कविता क्या है आचार्य शुक्ल का सबसे महत्त्वपूर्ण निबंध है। इस निबंध के माध्यम से शुक्ल जी ने अपनी काव्यशास्त्रीय मान्यताएँ प्रस्तुत की है, जिसमें भाषा संदर्भ महत्त्वपूर्ण है।

कविता की भाषा के संदर्भ में शुक्ल जी बिम्ब एव नाद सौदर्य पर बल देते हैं। शुक्ल जी अलंकारों एवं कोरे उक्ति वैचित्र की अधिकता को कविता के लिए अनावश्यक मानते है। वे मूलतः सौंदर्य को आंतरिक वस्तु मानते हैं और कहते हैं कि "सौदर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है मन के भीतर की वस्तु है।' साथ ही निबंधों को सरस बनाने के लिये कई स्थानों पर विनोद – भाव का समावेश भी किया है। उदाहरण स्वरूप – "बंदर को शायद बंदरिया के मुँह में ही सौंदर्य दिखाई देता होगा, पर मनुष्य पशु – पक्षी, फूल – पत्ते और रेत–पत्थर में भी सौंदर्य पाकर मुग्ध होता है। (कविता क्या है)

शुक्ल जी ने 'कविता की भाषा' की विशेषताओं में सर्वप्रथम लाक्षणिकता को महत्त्व दिया है। उनका मानना है कि कविता हमारे समक्ष सूक्ष्म पदार्थों और व्यापारों को भी गोचर रूप से रखती है, स्थूल रूप में प्रत्यक्ष करती है। अन्य विशेषता उन्होंने नाद – सौष्ठव में देखी है। और कहा कि "(कविता) नादसौष्ठव के लिये संगीत कुछ – कुछ सहारा लेती है।' साथ ही इस बात पर भी ध्यान देते हैं कि भाव को अधिक तीव्रता और पुष्टता प्रदान करने के लिये, केवल चमत्कार उत्पन्न करने के लिये नहीं, वर्णों का सूक्ष्म भेद अपनाया जाना चाहिये।

कविता में व्यंग्य को वे महत्त्वपूर्ण मानते हैं और वे व्यंग्य करने में माहिर भी हैं। उनकी मान्यता है कि व्यंग्य विषय व्यंजकता को बढ़ा देता है वहीं दूसरी ओर गंभीर से गंभीर विषय को सरस भी बना देता है। उदाहरण के लिये –'खेद के साथ कहना पड़ता है कि बहुत दिनों से" बहुत से लोग कविता को विलास की सामग्री समझते चले आ रहे हैं। एक प्रकार के कविराज तो रईसों के मुँह में मकरहवज रस झोंकते थे, दूसरे प्रकार के कविराज कान में कमरध्वज रस की पिचकारी देते थे, पीछे से तो ग्रीष्मोपचार आदि के नुस्खे भी कवि लोग तैयार करने लगे। (कविता क्या है।)

3.6 कविता क्या है' निबंध का उद्देश्य

'कविता क्या है'? आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी द्वारा रचित एक महत्त्वपूर्ण तथा बहुचर्चित निबंध है, जिसमें उन्होंने कविता को परिभाषित करते हुए उसके रूप स्वरूप पर उसके अंग – प्रत्यंग पर विशद् –व्यापक प्रकाश डाला है। कविता को परिभाषित करते हुए वे कहते हैं – जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाता है। हृदय की उसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द – विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग व समकक्ष मानते हैं।''

उनका मानना है कि कविता मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक–सामान्य भाव – भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। कविता मनुष्य के हृदय पर नित्य प्रभाव रखने वाले रूपों और व्यापारों को भावना के सामने लाकर बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की आंतरिक प्रकृति का सामंजस्य करती हुई उसकी भावात्मक सत्ता के प्रसार का काम करती हैं। यह मनुष्य जीवन के लिए अति प्रयोजनीय है। शुक्ल जी मनुष्य जीवन के लिए कविता की आवश्यकता और प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं – ''मनुष्य के लिए कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य – असभ्य सभी जातियों में, किसी न किसी रूप में, पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो; पर कविता का प्रचार अवश्य रहेगा। बात यह है कि मनुष्य अपने ही व्यापारों का ऐसा सघन और जटिल मंडल बाँधता चला आ रहा है; जिसके भीतर बँधा – बँधा वह शेष सृष्टि के साथ अपने हृदय का सम्बन्ध भूला –सा रहता है। इस परिस्थिति में मनुष्य को अपनी मनुष्यता खोने का डर बराबर रहता है। इसी से अन्तः प्रकृति में मनुष्यता को समय–समय पर जगाते रहने के लिए कविता मनुष्य–जाति के साथ चली आ रही है और चली चलेगी। जानवरों को इसकी जरूरत नहीं।''

शुक्ल जी काव्य दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट करते हैं कि सामान्य काव्य – दृष्टि दो प्रकार की होती है – नरक्षेत्र से संबंधित तथा मनुष्येत्तर बाह्म सृष्टि से संबंधित। उनके अनुसार "संसार में अधिकतर कविता नर क्षेत्र के भीतर हुई है। नरत्व की बाह्य – प्रकृति और अन्त प्रकृति के नाना सम्बन्धों और पारस्परिक विधानों का संकलन या उद्‌भावना ही काव्यों में – मुक्तक हों या प्रबन्ध – अधिकतर पाई जाती है।' दूसरे क्षेत्र मनुष्येत्तर बाह्य सृष्टि का रूप हमारे यहाँ संस्कृत के प्राचीन प्रबंध काव्यों के बीच–बीच में ही पाया जाता है। मनष्येत्तर बाह्य प्रकृति का रूप कुमार संभव और रघुवंश के बीच – बीच में मिलता है। मनुष्येत्तर प्रकृति के बीच के रूप –व्यापार कुछ भीतरी भावों या तथ्यों की भी व्यंजना करते हैं।

शुक्ल जी कविता के क्षेत्र में कल्पना का महत्त्व स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं– ''पुराने धार्मिक लोग उपासना का अर्थ "ध्यान' ही लिया करते हैं। जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है, उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव करना ही उपासना है। साहित्य वाले इसी को 'भावना' कहते हैं और आजकल के लोग 'कल्पना'। जिस प्रकार भक्ति के लिए उपासना या ध्यान की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार और भावों के प्रवर्तन के लिए भी भावना या कल्पना शिथिल या अशक्त होती है, किसी कविता या सरस उक्ति को पढ़ – सुनकर उनके ह्रदय में मार्मिकता होते हुए भी वैसी अनुभूति नहीं होती।'' वे कल्पना के दो प्रकार बताते हैं – "कल्पना दो प्रकार की होती है – विधायक और ग्राहक। कवि में विधायक कल्पना अपेक्षित होती है और श्रोता या पाठक में अधिकतर ग्राहक। अधिकतर कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ कवि पूर्ण चित्रण नहीं करता, वहाँ पाठक या श्रोता को भी अपनी ओर से कुछ मूर्ति – विधान करना पड़ता है। यूरोपीय साहित्य – मीमांसा में कल्पना को बहुत प्रधानता दी गई है। है भी काव्य का अनिवार्य साधन, पर है साधन ही, साध्य नहीं, जैसा कि उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है। किसी प्रसंग के अन्तर्गत कैसा ही विचित्र मूर्ति – विधान हो, पर यदि उसमें उपयुक्त भाव सत्र्चार की क्षमता नहीं है तो वह काव्य के अन्तर्गत न होगा।'

शुक्ल जी कविता को मात्र मनोरंजन का साधन नहीं मानते, बल्कि उसका अंतिम लक्ष्य जगत् के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उनके साथ मन्ष्य ह्रदय का सामंजस्य स्थापन मानते हैं। इसलिए वे कहते हैं – ''इतने गंभीर उद्देश्य के स्थान पर केवल मनोरंजन का हल्का उद्देश्य सामने रखकर जो कविता का पठन –पाठन या विचार करते हैं, वे रास्ते में ही रह जाने वाले पथिक के समान हैं। कविता पढ़ते समय मनोरंजन अवश्य होता है, पर उसके उपरान्त कुछ और भी होता है और वही सब कुछ है।''

इस प्रकार कविता के संदर्भ में वे उसके सौंदर्य पर विचार करते हुए कहते हैं – "सौंदर्य चाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। यूरोपीय कला समीक्षा की यह बड़ी ऊंची उड़ान या बड़ी दूर की कौड़ी समझी गई है। पर वास्तव में यह भाषा के गड़गड़झाले के सिवा और कुछ नहीं है। जैसे वीरकर्म से पृथक् वीरत्व कोई पवार्थ नहीं, वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं। कुछ रूप – रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं। जो हमारे मन में आते ही थोडी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्तस्सत्ता की यही तदाकार – परिणति सौदर्य की अनुभूति है। इसके विपरीत कुछ रंग–रूप की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनकी प्रतीति या जिनकी भावना हमारे मन में कुछ देर टिकने ही नहीं पाती और एक मानसिक आपत्ति –सी जान पड़ती है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार–परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जाएगी।' कविता के संदर्भ में वे चमत्कार को भी मनोरंजन का ही साधन मानते हैं, अतः उसे अधिक तरजीह नहीं देते। वे कहते हैं– "काव्य के सम्बन्ध में 'चमत्कार', 'अनूठापन' आदि शब्द बहुत दिनों से लिए जाते हैं। चमत्कार मनोरंजन की सामग्री है; इसमें संदेह नहीं। इसमें जो लोग मनोरंजन को ही काव्य का लक्ष्य समझते हैं, वे यदि् कविता में चमत्कार ही ढूँढ़ा करे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पर जो लोग इससे ऊँचा और गम्भीर लक्ष्य समझते हैं वे चमत्कार मात्र को ही काव्य नहीं मान सकते। 'चमत्कार' से हमारा अभिप्राय यहाँ प्रस्तुत वस्तु

के अद्‌भुतत्व या वैलक्षण्य से नहीं, जो अद्‌भुत रस के आलम्बन में होता है। 'चमत्कार' से हमारा तात्पर्य उक्ति के चमत्कार से है जिसके अन्तर्गत वर्णविन्यास की विशेषता (जैसे अनप्रास में), शब्दों की क्रीड़ा (जैसे श्लेष, यमक आदि में), वाक्य की वक्रता या वचनभंगी (जैसे काव्यार्थापत्ति, परिसंख्या, विरोधाभास, असंगति इत्यादि में), वाक्य की वक्रता या वचनभंगी (जैसे काव्यार्थापत्ति, परिसंख्या, विरोधाभास, असंगति इत्यादि में) तथा अप्रस्तुत वस्तुओं का अद्‌भुतत्व अथवा प्रस्तुत वस्तुओं के साथ उनके सादृश्य या सम्बन्ध की अनहोनी या दूरारूढ़ कल्पना (जैसे उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि में) इत्यादि बातें आती हैं।"

चमत्कारवाद के बाद वे कविता की भाषा पर विचार करते हैं तथा स्पष्ट करते हैं कि कविता की भाषा ऐसी हो, जो कविता में कही गई बात चित्र रूप में हमारे सामने लाने में सफल हो। इस संदर्भ में वे कविता की भाषा की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करते हैं। कविता की भाषा अगोचर भावनाओं या बातों को भी जहाँ तक हो सके स्थूल गोचर रूप में प्रकट करने में समर्थ होनी चाहिए। कविता की भाषा ऐसी होनी चाहिए कि उसमें जाति संकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष – रूप – व्यापार – सूचक शब्द अधिक हों। वे काव्य – भाषा के वर्ण–विन्यास पर बल देते हुए नाद सौष्ठव को भी उपयुक्त मानते हैं। वे कहते हैं–"नाद – सौंदर्य में कविता की आयु बढ़ती है। तालपत्र, भोजपत्र, कागज आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की जिह्वा पर नाचती रहती है। बहुत –सी उक्तियों को लोग, उनके अर्थ की रमणीयता इत्यादि की और ध्यान ले जाने का कष्ट उठाए बिना ही, प्रसन्न – चित्त रहने पर गुनगनाया करते हैं। अतः नाद – सौंदर्य का योग भी कविता का पूर्ण स्वरूप खड़ा करने के लिए कुछ न कुछ आवश्यक होता है।' वे काव्य–भाषा के संदर्भ में एक चौथी विशेषता का भी उल्लेख करते हैं। यह विशेषता जो संस्कृत से आई है, वह यह है कि कहीं–कहीं व्यक्तियों के नामों के स्थान पर उनके रूप – गुण या कार्य – बोधक शब्दों का व्यवहार किया जाना चाहिए।

शुक्ल जी कविता के सौंदर्य वृद्धि के लिए अलंकारों की उपयोगिता स्वीकार तो करते हैं, परन्तु इसे वे केवल साधन कहना ही उपयुक्त समझते हैं; साध्य नहीं मानते। उनका कहना है कि अलंकारों को कविता का साध्य मान लेने से कभी – कभी कविता का रूप इतना विकृत हो जाता है कि वह कविता ही नहीं रह जाती। पुरानी कविताओं में इस प्रकार के उदाहरणों का भी वे उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं– 'जिस प्रकार एक कुरूपा स्त्री अलंकार लादकर सुन्दर नहीं हो सकती, उसी प्रकार प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की रमणीयता के अभाव में अलंकारों का ढेर काव्य का सजीव स्वरूप नहीं खडा कर सकता। केशवदास के पच्चीसों पद्य ऐसे रखे जा सकते हैं, जिनमें यहाँ से वहाँ तक उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ भरी हैं, शब्दसाम्य के बड़े – बड़े खेल – तमाशे जुटाए गए हैं, पर उनके द्वारा कोर्ड मार्मिक अनुभूति नहीं उत्पन्न होती। इन्हें कोई सहृदय या भावुक काव्य न कहेगा। आचार्यों ने भी अलंकारों को 'काव्य – शोभाकार', 'शोभातिशायी' आदि ही कहा है। महाराज भोज भी अलंकार को 'अलमर्थमलंकर्त्तुः' ही कहते हैं। पहले से सुंदर अर्थ को ही अलंकार शोभित कर सकता है। सुन्दर अर्थ को शोभा बढ़ाने में जो अलंकार प्रयुक्त नहीं, वे काव्यालंकार नहीं। वे ऐसे ही हैं जैसे शरीर पर से उतारकर किसी अलग कोने में रखा हुआ गहनों का ढेर। किसी भाव या मार्मिक भावना से असंपृक्त अलंकार चमत्कार या तमाशे हैं।'

अंत में वे उन कवियों की भर्त्सना भी करते हैं जो लोभ और स्वार्थ के वशीभत होकर अपात्रों की– आसमान पर चढ़ाने वाली – स्तुति करते हैं तथा द्रव्य न देने वालों की निराधार निंदा करते हैं। शुक्ल जी का कहना है कि ऐसी तुच्छ वृत्ति वालों के हृदयों में कविता निवास नहीं करती।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'कविता में व्यंग्य को महत्त्वपूर्ण मानते हैं और व्यंग्य करने में माहिर भी थें कथन किसके लिए कहा गया है?
2. 'कविता क्या है' निबंध में आत्मा की मुक्तावस्था को क्या कहा गया है?

3.5 सारांश

अतः कहा जा सकता है कि अचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी आलोचक, कहानिकार, निबंधकार, साहित्येतिहासकार, कोशकार, अनुवादक कथाकार और कवि थे। उनके द्वारा लिखी गई सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक है। हिन्दी साहित्य का इतिहास, जिसके द्वारा आज भी काल निर्धारण एवं पाठ्यक्रम में सहायता ली जाती है। 'कविता क्या है आचार्य शुक्ल का सबसे महत्वपूर्ण निबंध है। इस निबंध के माध्यम से शुक्ल जी ने अपनी काव्यशास्त्रीय मान्यताओं को स्थापित किया है।

3.6 कठिन शब्दावली

शोधन – अशद्धि, परीक्षण

बानगी – नमूना

प्रतिपादन – प्रतिपत्ति, निरूपण, बोधन

3.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. बाबू गुलाब राम
2. सन् 1884

अभ्यास प्रश्न–2

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. ज्ञानदशा

3.8 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ० निर्मला जैन (सम्पादक) निबंधों की दुनिया, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. रामचन्द्र शुक्ल, कविता क्या है, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

3.9 सात्रिक प्रश्न

प्र० 1. आचार्य शुक्ल का जीवन परिचय देते हुए उसकी साहित्यिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र० 2. 'कविता क्या है' निबंध का प्रतिपाद्य एवं उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

*****

इकाई–4
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जीवन और साहित्य

संरचना

4.1 भूमिका
4.2 उद्देश्य
4.3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जीवन और साहित्य
4.3.1 जीवन परिचय
4.3.2 साहित्यिक परिचिय
स्वयं आकलन प्रश्न–1
4.4 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध का सार
4.4.1 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध का उद्देश्य
स्वयं आकलन प्रश्न–2
4.5 सारांश
4.6 कठिन शब्दावली
4.7 संदर्भित पुस्तकें
4.8 सात्रिक प्रश्न

4.1 भूमिका

इकाई तीन में हमने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के जीवन परिचय और उनके द्वारा रचित निबंध 'कविता क्या है" का अध्ययन किया। पाठ चार में हम हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन और साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते है' के सार एवं उद्देश्य का भी विस्तृत अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इकाई चार का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जीवन परिचय क्या है?
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्यिक परिचय क्या है?
3. 'नाखून क्यों बढ़ते है' निबंध का सार क्या है?
4. 'नाखून क्यों बढ़ते है' निबंध का उद्देश्य क्या है?

4.3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जीवन और साहित्य

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय को ललित निबन्ध परम्परा के वृहत्तत्रयी की संज्ञा दी जाती है। द्विवेदी जी इनमें सिरमौर हैं और ललित निबन्ध लेखन के आदर्श हैं। आचार्य शुल्क ने हिन्दी निबन्ध साहित्य की जिस तरह प्राण प्रतिष्ठा की तो उसे भारतीयता प्रदान करके उन्मृक्त वातावरण में लाने का श्रेय हजारी प्रसाद द्विवेदी को है। सभीक्षकों का मानना है कि यदि निष्पक्ष भाषा से कहा जाए तो शुक्ल के बाद द्विवेदी जी ही हिन्दी के सबल निबंधकार हैं। इसीलिए द्विवेदी जी क निबन्ध अपनी अतिशय आत्मीयता, शैली का सरस

प्रसादता तथा मानववाद के कारण हिन्दी साहित्य में शीर्षस्थ है। (संदर्भ ललित निबन्ध : संगीतार्भी श्री पृ. 36) ऐसे साहित्यक व्यक्तित्व के निबन्ध साहित्य तथा अन्य कृतियों के सही अध्ययन – मनन के लिए आवश्यक होता है। कि हम उनके व्यक्तत्व की जानकारी प्राप्त करे।

4.3.1 जीवन परिचय

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1907 ई. में उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के एक छोटे से गांव आरतदुबे का छापरा, ओझवलिया में हआ था। द्विवेदी जी का आरम्भिक जीवन अत्यंत साधारण और अभावग्रस्त परिस्थित्तियों में बीता था। गांव के प्राथमिक स्कल में आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करके वे उच्च शिक्षा पाने के लिए काशी आए। काशी, वैसे तो विद्वानों–पण्डितों की नगरी है, भारतीय शिक्षा का प्रतिषठित केन्द्र है परन्तु वहां विरोध और ईर्ष्यालु प्रकृति के विद्वानों की भी कमी नहीं रहीं। ऐसे वातावरण में ईर्ष्या एवं विरोध के बीच उन्होंने अपने जीवन को बड़ी बुद्धिमता से व्यतीत किया। वहीं से (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से) शास्त्राचार्य की उपाधि प्राप्त करने के बाद द्विवेदी जी को शान्त निकेतन का अनुकूल निश्छल वातावरण मिला और गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर की छत्रछाया प्राप्त हुई। द्विवेदी जी के व्यक्तित्व विकास एवं निर्माण में यहां का वातावरण अनुकूल रहा काशी में रहते उन्होंने संस्कृत भाषा तथा साहित्य ज्योतिष आदि विषयों का ज्ञान तो प्राप्त कर लिया था। परन्तु उन्हें समझने और व्याख्यायित करने की नयी दृष्टि शान्ति निकेतन में ही संभव हुई क्योंकि यहाँ अनेक विदेशी विद्वानों से सम्पर्क बना, संवाद के मंच मिले। शान्ति निकेतन के हिन्दी भवन शिक्षक के रूप में सन् 1930 से 1950 तक रहे। सन 1950 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष बने। इस पद पर दस वर्ष सन् 1960 ई तक रहे। तत्पश्चात उसी वर्ष पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद का कार्यभार संभाला। वहां रहते प्रोफेसर ऑफ टैगोर चेयर, डाइरेक्टर ऑफ गांधी भवन, डीन ऑफ युनिवसिटी इन्स्ट्क्शन आदि पदों को गौरवान्वित किया। वहां से सन् ।948 ई० पुनः वाराणसी चले गये और वहां काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में व्याकरण विभाग के निदेशक बने। तत्पश्चात उत्तर प्रदेश ग्रंथ अकादमी के निर्देशक रहे। वर्ष 1940 में लखनऊ विश्वविद्यालय से डीलिट की उपाधि। सन् 1957 ई० में राजेन्द्र प्रसाद द्वारा पद्मविभूषण की उपाधि और सन 1962 में साहित्य अकादमी के टैंगोर पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 19 मई, 1970 को दिल्ली में इनका निधन हो गया।

ऊपर से अत्यन्त सरल और सपाट दिखने वाला उनका सास्कृतिक व्यक्तित्व, मिथकीय संशलिष्टता का प्रतिरूप था। परम्परा का मूल्यांकन उनकी साहित्य साधना का प्रस्थान बिन्दु था तो जीवन संघर्ष उनके व्यक्तित्व की केन्द्रीय धुरी। उनके परिवार में आर्थिक विपन्नता रही। परिणामतः अध्ययन काल से ही संघर्षशील रहे। उनका व्यक्तित्व संकोच शील, विनम्र, सहिष्णु, वे परवाह, मस्ती और स्वाभिमानी था। उन्होंने स्वयं लिखा है। मुझे संस्कृत कालेज में 15 रूपये की वृति मिलती और 5 रूपये की टयूशन करता था कुछ खाता, कुछ बचाकर घर भेज देता। विद्यार्थीकाल में कथा वाचकर रुपया कमाता। घर की बिल = विल, बाहर की दूर – दर की चौतरफा नकार की गहरी पीड़ा झेलकर द्विवेद्ी कभी विचलित नहीं हुए। उन्होंने जीवन संघर्षो से नयी प्रेरणा ली। द्विवेदी जी का मूदु विद्रोह व्यकितत्व संधर्षशील रचनाकारों के जीवन से प्रभावित और उनकी मौलिकता का कार्यकाल के उन्मुक्त प्रशसंक और सूरदास उनके प्रिय थें परन्तु जीवन संधर्ष में चार बार तुलसीदास का स्मरण करने में उन्हें विशेष आनंद आता। द्विवेदी जी के व्यक्तित्व को साकार करती – ये पक्तियां सुख हो या दुःख, प्रिय हो या अप्रिय, जो मिल जाए उसे ज्ञान के साथ हृदय से बिलकुल अपराजित होकर सोल्लास ग्रहण करो। हार न मानो। उनमें क्लासिकी व्यक्तित्व की विशिष्टता, थी। जो उन्हें लेखक की गरिमा के स्तर से नीचे उतरने नहीं देती। उनका गरिमामय सांस्कृतिक व्यक्तित्व निर्विवाद रूप से किसी भी विवाद से परे है। ऐसा उनके आलोचकों समीक्षकों का मत है।

द्विवेदी जी विषय परिस्थितियों में जीवन्त व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे, तमाम अभावग्रस्तता के बावजूद भौतिक सुखों के लिए परिस्थितियों से समझौता नहीं किया। घर जोड़ने की माया से विमुख होने के कारण ही उन्होंने मन को अपने ऊपर सवार नहीं होने दिया। उन्होंने 'कुटज' निबन्ध में लिखा है – जिसका गन अपने वश में नहीं है वही दूसरे के मन का चंदावर्तन करता है. अपने को छिपाने के लिए जाल बिछाता है। शान्ति निकेतन में रहते उन्हें हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के तत्कालीन उपकुलपति द्वारा हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद के लिए निमन्त्रण भेजा गया तो साथ ही विभाग में अध्यक्ष पद के दावेदारों के ईर्ष्यालु प्रतिस्पर्धा के धमकी पत्र तार भी पहुँचने लगे। काशी और शान्ति निकेतन को गुरुभूमि मानने वाले द्विवेदी जी ने पहले तो काशी न जाने का निर्णय लिया परन्तु बाद में जाना ही पड़ा। जिस मन ने उन्हें काशी आने के लिए फुसलाया – बलहाया वही मन बाद में समझने लगा –'नारायण ही इस नाव के कर्णधार हैं। हम तो तूफान देखकर बेकार हाय हाय करने वाले जीव हैं।" वे तो मध्यकालीन लोकजागरण के उन्नायक और सांस्कृतिक जीवन की धड़कन रहे हैं। ये फक्कड़ जीवन के प्रतीक रहे। हास – परिहास, व्यंग्य – विनोद और बीच– बीच में लगने वाला ठहाकों जिसकी अनुगूंज उनकी रचनाओं में बराबर प्रतिध्वनित होती है। यह उनकी शैली का खास मिजाज है ही नहीं, उनके मिथकीय व्यक्तित्व का ही एक जीवन्त आयाम है। वे परम्परावाद एवं आधुनिकता का समन्वय थे। मध्यकालीन बोध का स्वरूप पुस्तक के प्राक्कथन में डॉ. इन्द्रनाथ मदान में लिखा हैं। "द्विवेदी जी अतीत जीवि हैं या नहीं, यह विवाद का विषय हो सकता है किन्तु यह निर्भ्रान्त सत्य है कि वे केवल सपनों मे डूबे रहने वाले आधुनिकतावादी नहीं हैं। सामान्य मानव संस्कृति का विकास उनके मानवतावादी चिंतन का लक्ष्य था और इस लक्ष्य, के प्रति उनका अटूट विश्वास रहा।

4.3.2 साहित्यिक परिचय

द्विवेदी जी मनुष्यता को समर्पित ऐसे सम्पूर्ण मनुष्य थे जिसके सामने बड़े से बड़ा लेखक भी छोटा हो जाता। लेखन में वे रेटायरिक आवेश को क्लासिकी संयम से अनुशासिक करना जानते थे यही कारण है कि इनके लिखने में तीखी टिप्पणियां नहीं मिलती हैं जैसे आचार्य शुक्ल, डॉ. रामविलास शर्मा, या डॉ. नामवर सिंह के लेखन से मिलती है। द्विवेदी जी सिर से पांव तक मस्तमौला थे। द्विवेदी जी के साहित्य – सृजन क्षेत्र के विषय में जानकारी पाने पर हमें उनके चार रूप दिखायी देते हैं (1) साहित्येतिहासकार (2) आलोचक (3) उपन्यासकार (4) निबन्धकार।

'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य – उद्‌भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य का आदिकाल' साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित ग्रंथ में 'सूर साहित्य', 'नाथ सम्प्रदाय', 'कबीर', 'मध्यकालीन धर्मसाधना', सहज साधना', 'भारतीय नाट्य परम्परा', 'साहित्य सहचर', 'कालीदास की लालित्य योजना,, 'सन्त का सक्ष्म वेद', 'साहित्य का मर्म', मध्यकालीन बोध का स्वरूप आदि इनकी आलोचनात्मक कृतियां हैं। बाणभट्ट की आत्म कथा', 'चारु चन्द्रलेखा, पुनर्नवा और 'अनामदास का पोथा' इनके उपन्यास है। विचार प्रवाह, विचार और वितर्क इनके विषयनिष्ठ और कल्पलता, 'अशोक के फुल' मुख्यतः व्यक्तिनिष्ठ और विषयनिष्ठ दोनों प्रकार के निबन्ध हैं। उपरोक्त मौलिक कृतियों के अतिरिक्त द्विवेदी जी ने मेघदूत, प्रबन्ध चिंतामणि, प्रबन्धकोश, सन्देशरासक, संक्षिप्त पृथ्विराज रासो, लाल कनेर, रवीन्द्र कविता कानन आदि दर्जन ग्रथों का अनुवाद और सम्पादन भी किया है। इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी ने प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद नामक ग्रंथ लिखकर कला एवं संस्कृति के प्रति अपनी परिष्कृत अभिरुचि और निष्ठा का परिचय दिया है। संक्षेप में कहा जाए तो इतना करना अलग होगा कि द्विवेदी जी का रचनात्मक व्यक्तित्व अत्यंत व्यापक समृद्ध एवं बहुआयामी रहा। उन्होंने अपने जीवनकाल में जिन विषम परिस्थितियों का गरल पिया उसे साहित्य सृजनरूपी अमृत में बदल कर जीवन्तता का प्रतीक बना दिया।

निबन्ध कला

विद्यार्थियो! आप को द्विवेदी जी के जीवन और कृतित्व के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान हो गया होगा। आप यह भी जाने चुके होंगे कि द्विवेदी जी भाव प्रधान या ललित निबन्ध लिखने में एक कुशल और सफल लेखक हैं। उनके निबन्धों की कुछ निजी विशेषताएं हैं। जिसके कारण उनका हिन्दी निबन्ध साहित्य में विशेष स्थान है। आइये! हम उनका निबन्ध अशोक के फल के परिप्रेक्षय में उनकी निबन्ध कला का बोध पाने का भी प्रयास करे।

'अशोक के फूल' एक ललित निबन्ध है। यह निबन्ध द्विवेदी जी के निबंध संग्रह 'अशोक के फूल' में संकलित है इसमें तेरह–निबन्ध संकलित हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है – (1) अशोक के फूल (2) बंसत आ गया (3) प्रायश्चित की घड़ी (4) घर जोड़ने की माया (5) मेरी जन्म भूमि (6) सावधानी की आवश्यकता (7) आपने मेरी रचना पढ़ी (8) हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली (9) भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या (10) भारतीय संस्कृति की देन (11) हमारे पुराने इतिहास की सामग्री (12) संस्कृत का साहित्य (13) पुरानी पोथियां (14) काव्य कला (15) रवीन्द्र नाथ के राष्ट्रीय गान (16) एक कुत्ता और एक मैना (17) आलोचना का स्वतंत्रमान (18) साहित्यकारों का दायित्व (19) मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है। (20) नया वर्ष आ गया (21) भारतीय फलित ज्योतिष। इनका विषय प्रेम आलोचना, भारतीय संस्कृति प्रेम, समाज सुधार, शोधपरक, गुरुभक्ति, राष्ट्रीय चेतना आदि से जुड़ा है। इसमें ललित निबन्ध भी हैं। अतः यह निबन्ध संग्रह द्विवेदी जी के भावात्मक एवं विचारात्मक व्यक्तित्व को एक साथ सांझा रूप प्रस्तुत करता है। विद्या निवास मिश्र जैसे निबन्धकार की द्विवेदी जी को अर्पित श्रंद्धाजलि इस संदर्भ में सटीक या उपर्युक्त बैठती है।

"द्विवेदी जी का निबन्धकार अशोक के फूल की तरह रागाकुल, शिरीष की तरह अवधूत, कुटज की तरह बीहड–मनमौजी और देवदारु की तरह व्योमकेश है। यह बसंत की आगवानी के लिए सबसे आगे जाने को आतुर है, यह त्रिपुर सुन्दरी के पद संचार की आकांक्षा में पुलकित होने वाला है। वह निढाध के ताप पर उठा कर हंसता है पर हल्की सी दुर्भावना के स्पर्श से कुम्हला जाता है। वह कठोर पाषाण को भेद कर अपना योग संग्रह करता है। परन्तु इसके साथ ही यह चाकस्थित है वह मेध के लिए आत्मदानी के लिए प्रथम अर्ध्य है– अपने व्यक्तत्व को प्रेषणीय बनाने के लोभ से समझौता करने की तनिक भी प्रस्तुत नहीं।'

द्विवेदी जी ने प्रकृति, प्रेम, साहित्य, अलोचना, संस्कृति, समाज, ज्योतिष, आदर्शी व्यक्तित्वों आदि विषयों संबंधी निबन्ध लिखकर हिन्दी निबन्ध साहित्य को समृद्ध किया है, नए आयाम, नयी सोच तथा नया स्वरूप प्रदान किया है। इनके निबन्धों की विषय व्यापकता अर औभिव्यक्त कुशलता एवं जागरूकता को रेखांकित करने विद्यानिवास मिश्र ने एक स्थान पर लिखा हैं – ज्ञान की उपयोग निबन्धों को व्यापक आयाम देने हेतु करते हैं। उनका क्षेत्र कथा मात्र के स्वप्नलोक में विचरण करना नहीं है। इन विचारों की सार्थकता दिवेदी के इन शब्दों से स्वंय सही सिद्ध होती है जिस प्रकार वीणा क एक तार की छड़ने से बाकी सभी तार अंकत हो उठते हैं उसी प्रकार एक विषय को छूते ही लेखक की चितभूमि पर बंधे हुए सैकड़ों विचार बज उठते हैं। वास्तव में इनके निबन्ध इनके व्यक्तित्व को व्याख्यायित करते हैं जो प्क को निराशा से उठाकर आशा के लोक में ले जाते है। उनमें मानवता का सर्वत्र संचार है एवं साथ–साथ सज्ज सौंदर्य प्रेरणा भी उनके निबन्धों का अन्तर चिन्तक का परन्तु प्रेषणीया भावक की।

द्विवेदी जी के निबन्धों में गहरी मानवीय दृष्टि मिलती है। ये इस दिशा में कभी कम और कभी बहुत अधिक भावुक हैं। वे अतीत की दुनिया में जाते हैं भारतीय सांस्कृतिक सरोवर में डुबकी लगाते हैं तथा मुग्ध भाव से उसे व्यक्त करते हैं, मनमौजी विश्लेषण करते हैं। द्विवेदी जी संस्कृत साहित्य के अलावा पुरातत्व तथा सास्कृतिक परम्परा के अध्येता रहे हैं। वे किसी प्रश्न की ज्वाला शांत करने के लिए सूक्ष्म निरीक्षण और प्रसंग के यथासंभव सभी पहलुओं से परिचित होने का प्रयास करते हैं। गतिशील दृष्टि से उन्होंने ऐतिहासिक संदर्भों को व्याख्यायित

करने का प्रयास किया है। शोध का अर्थ उनके शब्दों में –जिन लोगों ने अनेक शास्त्रों का गहन अध्ययन किया है, वे ही प्रकृति के रहस्यों का भेदन कर सकते हैं और व्यक्ति और समाज मानव के नए और पुरान जीवन मूल्यों, जीवनादर्शों और उनकी गतिविधि की गहराई में प्रवेश कर सकते हैं। ये शब्द द्विवेदी जी पर पूरी तरह लागू होते हैं। इनकी शोध पद्धति मे शास्त्रों का गहन अध्ययन, प्रकृति के रहस्यों का भेदन तथा जीवनादर्शों का सार तत्व का विश्लेषण करने की क्षमता है। इनके अनुसंधानपरक निबन्ध– हिन्दी में शोध का प्रश्न, हिंदी का आदिकाल, संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त परिचय, महाभारत क्या है, रामायण और पुराण, बौद्ध संस्कृत साहित्य, जैन साहित्य, कवि समय और काव्य समय कवि प्रसिद्धियां आदि महत्वपूर्ण हैं। इनके निबन्ध विचारों की प्रक्रिया के बजाए अनुभूति की भूमि से उपजे हैं। अनुभूति अनुभूति का लक्षणः चिन्तन को अपने अनुभव में ढाल लेना। अनुभूति के कारण ही चिन्तन का अमूर्तन सजीव होकर विश्श्वसनीय हो जाता है।' निर्मल वर्मा उन्हें सही अर्थ में आधुनिक मानते हैं क्योंकि यह अतीत की सब छलनाओं से मुक्त थे। वे सही अर्थ मे हिंदू थे। आधुनिकत्ता और इन दोनों के मेल से वह प्रामाणिक अर्थ में भारतीय बने थे। उनकी दृष्टि से भारतीयता वर्तमान के पासपोर्ट पर कोई बनी बनाई विरासत नहीं थी, जिसे हम अतीत से पा लेते। वह ऐसा मूल्य भी जिसे हर पीढ़ी को अपने समय में अर्जित करना पड़ता है। (आलोचना अंक 49–50 पृ.7)

समीक्षकों के शब्दों में – "कुटज'' इनके जीवन और व्यक्तित्व : का प्रतीक बन गया है। कुटज की परिस्थितियां द्विवेदी जी की ही विषम परिस्थितियां हैं। कुटज की रचना प्रक्रिया में ही द्विवेदी जी की सजन प्रक्रिया है जिसमें गरल पीकर अमृत देने वाले मृत्युंजय आचारये के सात्विक संस्कारों के साथ ही लोक, शास्त्र, इतिहास, पुराण, दर्शन, कला, संस्कृति, साहित्य समाज और भाषा ज्ञान के रासायनिक उपादानों का सामंजस्यपूर्ण समायोजन है।' 'अशोक के विषय में भी ये शब्द न्यूनाधिक रूप में सही – सार्थक मालूम होते हैं। संक्षेप में निबन्ध कला की दृष्टि से हिन्दी निबन्धकारों में द्विवेदी जी का स्थान बहुत कथा है। अतः के इन शब्दों में द्विवेदी जी के निबन्ध अपनी अतिशय आत्मीयता, होली की सरस प्रसादता तथा मानववाद के कारण हिन्दी साहित्य में शीर्षस्थ है, किसी प्रकार की अतिशयता नहीं है।'

द्विवेदी जी से पूर्व निबन्ध साहित्य परम्परा

पूर्व–पृष्ठों में यह जान चुके हैं कि द्विवेदी जी के निबन्ध साहित्य में 'विचार–वितर्क, 'कल्पलता और 'अशोक के फूल' चार निबन्ध संग्रह हैं। इनमें प्रथम दो निबन्ध संग्रहों में विषयनिष्ठ निबन्ध संग्रहीत हैं और अन्य दो संग्रहों में व्यक्तिनिष्ठ और विष्यनिष्ठ दोनों प्रकार के निबन्ध संकलित हैं। आचार्य हज़ारी प्रसाद दिवेदी की निबन्ध कला पर विचार करने से पूर्व आवश्यक है कि उनकी पूर्ववर्ती निबन्ध साहित्य की परम्परा को संक्षिप्त रूप सें देख लिया जाए। निबन्ध साहित्य की विकास यात्रा के, उन में व्यापक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर विद्वानों ने युगानरूप चार युग निश्चित किए हैं – (1) भारतेन्दु युग (2) महावीर प्रसाद द्विवेदी युग (3) शुक्ल गुम और (4) शुक्लोत्तर युग। हजारी प्रसाद द्विवदी जी शुक्लोत्तर युगीन निबन्ध कारों में आते हैं। यहां विस्तृत विषचेना समय सीमा के कारण अपेक्षित वांछित नहीं है फिर भी शुक्ल जी तथा उनसे पूर्व की निबन्ध परम्परा को सरसरी जानना जरूरी हैं मूल्यांकन की अपेक्षा भी।

भारतेन्दु युगः साहित्य की अन्य विधाओं की भांति निबन्ध साहित्य का सूत्रपात भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के युग से माना जाता है। भारतेन्दु के निबन्ध के अनुकुल उर्दू मिश्रित सामान्य व्यवहार की खड़ी बोली और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया। जिसे इस काल खंड के अधिकांश निबन्धकारों ने ग्रहण किया इस युग का हर निबन्धकार किसी न किसी पत्रिका का सम्पादक भी रहा। कविवचन सुधा (भारतेन्दु) आनन्द कार्दम्बिनी (बदरी नारायण चौधरी) ब्राह्मण (प्रताप नरायण मिश्र) आदि प्रमुख पत्रिकाएं प्रकाशित हुई इस काल की अधिकांश निबन्ध पत्र –पत्रिकाओं में सम्पादकीय या अग्रलेख के रूप में प्रकाशित होते रहे। युगानुरूप प्रवृत्तियां इस काल के

निबन्धों में प्रमुख रही। राजनीतिक और सामजिक दृष्टि से जितनी जागरूकता इस युग के निबधकारों में मिलती है, उतनी उसके बाद के निबन्धकारों में नहीं। आलोचकों का मानना है कि विशुद्ध व्यक्ति व्यंजक निबन्धों की रचना भारतेन्दु युग की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। समाज एवं शासन पर कटाक्ष, हास्य एवं व्यंगख्य का पुट, देश भक्ति, समाज सुधार जिन्दादिली, भाषा में लोकोक्तियों गुहावरों की भरमार इस काल के निबन्धों की विशेषताएं हैं।

द्विवेदी युगः भारतेन्दु युग के बाद हिन्दी साहित्य में लम्बे अरसे तक एक प्रकार की स्तब्धता पाई जाती है जिसे तोड़ने का श्रेय बालमुकुन्दगुप्त को है। सन् 1903 में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती–पत्रिका का सम्पादन शुरू करके हिन्दी साहित्य को एक नयी गति दी। इस युग के अन्य प्रमुख निबन्धकारों में बालमुकुन्द "भारत मित्र' के और पं. माधव प्रसाद मिश्र, "'सुदर्शन' पत्रिका के संपादक थे। यद्यपि इस युग को द्विवेदी युग की संज्ञा दी जाती है तथापि साहित्येतिहासकारों का मानना है कि बालमुकुन्द गुप्त, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पं. माधव प्रसाद मिश्र, सरदार पूर्ण सिंह आदि निबन्धकार द्विवेदी जी से सर्वथा मुक्त रहे हैं। युगीन राजनीतिक जागरूकता और गंभीर विषयों को व्यंग्य विनोदपूर्ण शैली में प्रस्तुत करना गुप्त जी की निजी विशेषता रही। वे द्विवेदी जी की भाषा एवं विषय वस्तु संबंधी नीतियों के कट्टर विरोधी थे। पं. माधव प्रसाद मिश्र प्राचीन भारतीय परम्परा के प्रबल, समर्थक थे, किंतु उनके निबन्ध देशभाक्ति और राजनीतिक जागरूकता से ओत–प्रोत थे चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और सरदार पूर्ण सिंह ने भारतेन्दु युगीन व्यक्ति व्यंज़क निबन्धों को एक नयी दिशा दी। परन्तु महावीर प्रसाद द्विवेदी ही इस युग के प्रभावी व्यक्तित्व रहे। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से भाषा–परिष्कार और साहित्य के नियंमन का कार्य शुरू किया। निबन्धों में गंभीर समालोचनात्मक प्रवृत्ति लाने का भी पूरा प्रयास किया। निबन्ध लेखकों को भी सुसंस्कृत ढंग से, शिष्टतापूर्वक, ज्ञानवर्धक और मर्यादित बातें लिखने को प्रेरित किया। जिससे लोग साहित्य को उपयोगी समझकर पढ़ने की ओर प्रवृत हुए। इस युग के निबन्धों में हार्दिकता और भावुकता का लोप हुआ और विचारात्मक और बौद्धिकता प्रधान हो गई।

शुक्ल युग : इस युग में निबन्ध की प्रकृति अजित ज्ञान पुनरावृति और उपदेशात्मक प्रवत्ति से हटकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विषयनिष्ठ और गंभीर विचारात्मक निबन्धों को लेकर हिन्दी साहित्य में आए। इन्होंने विभिन्न साहित्य–समस्याओं के अतिरिक्त मनोविकारों पर भी निबन्ध लिखे। द्विवेदी यगीन नैतिकता को व्यावहारिक रूप देने के साथ–साथ रूढ़िवादी नीतिकता का विरोधी भी किया। बालकृष्ण भट्ट और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी मनोविकारों संबंधी निबन्ध लिखें लेकिन विचारों की दृष्टि से उनमें वह मौलिकता एवं नवीन प्रयास नहीं मिलता

भट्ट जी का मूल स्वर नैतिक था। उनमें शिक्षा और उपदेश की बातें अधिक मिलती है। द्विवेदी जी ने लोभ और क्रोध आदि पर इसलिए लिया ताकि लोग इन अवगुणों से सावधान रहें परन्तु शुक्ल जी ने भी इन्हीं विषयों पर निबन्ध लिखकर असन रहे जाने वाले मनोवेगों का व्यावहारिक दर्शन प्रस्तुत किया और बताया कि इनकी भी प्रेम, दया, श्रद्धा आदि सद्वृत्तियों की तरह समाजिक मंगल के लिए उपयोगिता है। शुक्ल जी ने साहित्यिक समस्याओं से सम्बद्ध निबन्ध भी लिखें। उनके निबन्धों में विषय के विश्लेषण में एक वैज्ञानिक समझ, सर्तकता तथा विषय को सम्प्रेषित करने की दृष्टि कवि सुलभ सुहृदयता के दर्शन होते हैं। शास्त्रीय गद्य शैली को उन्होंने एक नया रूप देकर समृद्ध बनाया है। अतः समीक्षकों के मत में शुक्ल जी अपने आप में एक युग है, एक सीमा रेखा है।

शुक्लोतर युग : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी शुक्लोत्तर युग के निबन्धकार हैं। शुक्ल जी के बाद विषय निष्ठ गंभीर आलोचनानक निबन्ध लेखकों में आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, डॉ. देवराज आदि नाम उल्लेखनीय हैं। परन्तु इनके निबन्धों में वह व्यापक पृष्ठभूमि औ तलस्पर्शी दृष्टि नहीं आ पाई जो शुक्ल जी की मूल विशेषता भी ऐसा समीक्षकों का यह है। शुक्ल जी की, जो उपरोक्त

मूल विशेषता है जिसे अंग्रेजी से पर्सनल या व्यक्ति व्यंजक निबन्ध कहते हैं, उस प्रकार निबन्ध लेखक हिन्दीं में बहुत देर बाद में आए। आलोचकों के मतानसार सन् 1934 ई० में लक्ष्मीकांत ओझा के 'मैंने कहा निबन्ध संग्रह से उक्त धारा का पुनरुद्धार माना जा सकता है। जिसे आगे बढ़ाने में पदुम पुन्नालाल बख्शी, सियाराम शरण गुप्त, बाबू गुलाबराय आदि ने अपना योगदान दिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में इसका पूर्ण परिपाक हुआ हैं। तत्पश्चात् रामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ. रघुबीर सिंह, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, धर्मवीर भारती, कुबेर नाथ राम, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी श्रीलाल शुक्ल आदि अनेक व्यक्ति व्यंजन निबन्धकार इस क्षेत्र में आए।

भाषा–शैली

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उच्च कोटि के आलोचक, उपन्यासकार, कुशल वक्ता एवं प्राचार्य रामचंद्र शुक्लके पश्चात् श्रेष्ठ निबंधकार हैं। भाषा की सहजता, प्रवाह तथा अभिव्यकति के दृष्टिकोण से वे एक आदर्श हैं। वे कहते हैं कि सहज भाषा का अर्थ सहज की महान बना देने वाली भाषा है। द्विवेदी जी कहते हैं कि मैं अन्य भाषाओं से शब्द लेने का बिल्कुल विरोधी नहीं हूँ। उनके निबंधों में उर्दू, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्दों का बहुत प्रयोग हुआ है। वे भाषा में टीमटाम तथा आडंबर का विरोध करते हैं। उनकी भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है। उन्होंने भाव तथा विषय के अनुरूप भाषा का चयनित प्रयोग किया है। उनकी भाषा के दो रूप दिखलाई पड़ते हैं –

1. प्रांजल व्यावहारिक भाषा
2. संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय भाषा

भाषा का प्रथम रूप द्विवेदी जी के सामान्य निबंधों में मिलता है। इस प्रकार की भाषा में और अंग्रेजी के शब्दों का भी समावेश हुआ है। दूसरी शैली, उपन्यासों तथा सैद्धांतिक आलोचना के कम में परिलक्षित होती है। द्विवेदी जी की विषय प्रतिपादन अध्यापकीय है। शास्त्रीय भाषा रचने के दौरान भी प्रवाह खंडित नहीं होता। द्विवेदी जी ने अपनी भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली, तद्भव, देश तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग अत्यन्त कुशलता के साथ किया है। भाषा को गतिशील और प्रवाहपूर्ण बनाने के लिए मुहावरों एवं लोकोक्तियों का खुलकर प्रयोग हुआ है। कहीं–कहीं संस्कृत शब्द की अधिकता के कारण उनकी भाषा क्लिष्ट हो गई है। उनका शब्द्र चयन सार्थक व सटीक है। उनकी भाषा में आलंकारिता, चित्रोपमता तथा सजीवता जैसे गुण मिलते हैं। भाषा को व्यावहारिक, सरस और मधुर बनाने के लिए वे संस्कृत, बंगला, हिन्दी की सूक्तियों एवं उद्धरणों का प्रचर मात्रा में प्रयोग करते हैं। वस्तुतः उनकी भाषा की मूल प्रवृत्ति सस्कृतनिष्ठता है जो उनके अगाध पांडित्य एवं बहुज्ञता का स्वाभाविक परिचय है। उन्होंने अपनी रचनाओं में विचारात्मक, गवेषणात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, व्यास एवं हास्य – व्यंग्य शैलियों का प्रयोग किया है।

'नाखून क्यों बढ़ते हैं' नामक निबंध में द्विवेदी जी ने सरल, सहज एवं प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उनके निबंधों की भाषा–शैली का विश्लेषण करते हुए डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना लिखते हैं–"इस प्रकार आपकी भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं शिष्ट–जनानुमोदित है। वह व्याकरण के अनुशासन से अनुशासित है, उसमें सभी प्रकार के विचारों एवं भावों के वहन करने की अपूर्व क्षमता है, वह जनसाधारण के सर्वथा अनुकूल है, वह सर्वसाधारण की बोलचाल के शब्दों से सुसज्जित है, वह पांडित्यपूर्ण विवेचन के साथ – साथ व्यंग्य –विनोद से भी परिपूर्ण है। उसमें भावुकता एवं कवित्व की भी छटा विद्यमान है तथा वह सरल, सजीव एवं बोधगम्य है। द्विवेदी जी की भाषा शुद्ध, प्रौढ़, परिमार्जित, सरस एवं साहित्यिक खड़ी बोली है। उनकी भाषा उनके व्यक्तित्व का परिचायक है। वे कहीं – कहीं छोटे–छोटे वाक्यों का भी प्रयोग करते हैं, जिनमें खड़ी बोली का सहज एवं स्वाभाविक रूप प्रकट होता है। एक उदाहरण देखिए – "मेरा मन पूछता है – किस ओर ? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर ? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर?' इसी प्रकार जहाँ

भाव – गांभीर्य का प्रतिपादन करना हो तो वे लंबे – लंबे वाक्यों का प्रयोग करते हैं, जैसे – "नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस स्व – निर्धारित, आत्म – बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।'' इस प्रकार वे दोनों प्रकार के वाक्यों को लिखने में सिद्धहस्त हैं।

द्विवेदी जी का शब्द – भंडार अत्यन्त व्यापक है। उनकी भाषा में संस्कृत का पूर्ण वैभव, लोकजीवन की समूची सरसता तथा भावाभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता है। उनकी भाषा का सामान्य स्वाभाविक रूप विषयानुसार परिवर्तन है। उनके निबंधों, अनुसंधान ग्रंथों और आलोचनात्मक कृतियों की भाषा अधिक संस्कृत शब्दों की तत्परता लिए हुए, उर्दू व अंग्रेजी शब्दों का अत्यन्त न्यून मात्रा में प्रयोग करने वाली गंभीर और संयत है। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' नामक निबंध में अत्यधिक तत्सम शब्दों को अपनाया गया है जैसे – 'निर्लज्ज', 'नखदंतावलंबी', अल्पज्ञ', 'ततः किम्', 'कोटि –कोटि', 'केश', "नवीनतम', 'पाशवी वृत्ति', 'चन्द्राकार', 'अनुसंधित्सा', अधोगामिनी', 'उद्भाषित', 'बर्बरता', 'अभ्यासजन्य', 'पशुत्व', 'विपुल', 'महिमामयी', 'निद्रा', 'अन्यत्र', दंडल', 'निर्मित', 'सर्वत्र', 'आत्मतोषण', 'मिथ्या', 'संचयन', 'बृहत्तर', 'दाक्षिणात्य', 'नि.शेष', 'पूर्वसंचित', अनुवर्तिता', 'चरितार्थता', 'उत्स' आदि। संस्कृत के छन्द का भी प्रयोग किया गया है–

''एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत।
निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च।।

आलोच्य निबंध में अंग्रेजी भाषा के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया गया है, यथा– 'इंडिपेडेंस', "सेल डिपेंडन्स' आदि। उन्होंने उर्दू – फारसी के शब्दों को भी खूब अच्छी तरह से अपनाया है, जैसे – 'मुमकिन', अक्सर', 'नाखून', 'कमबख्त', बेहया', 'मजबूत' आदि। उनकी भाषा में स्थानीय रंग भी देखा जा सकता है, जैसे – 'नौसिखिए', 'सेध' आदि। कहीं – कहीं मुहावरों का प्रयोग करके उन्होंने अपनी अभिव्यक्तियों को सुदृढ़ बनाया है। उन्होंने भाषा का आलंकारिक प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में किया है। रूपक, उपमा, मानवीकरण आदि अलंकारों ने उनकी भाषा में उक्ति वैचित्र्य के साथ – साथ अर्थगांभीर्य की भी सृष्टि की है। उनके निबंधों की भाषा – शैली का मूल्यांकन करते हुए डॉ. शिव कुमार शर्मा लिखते हैं –'' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में भाषा और शैली दोनों विषयानुरूप हैं। ग्रामीण एवं व्यावहारिक प्रसंगों में वे बोलचाल की भाषा को अपनाते हैं। आप अपने ललित निबंधों में लालित्यमयी भाषा को प्रयोक्ता हैं। आधुनिक जीवन के फैशन व विकृतियों के चित्रण में वे तीखी हास्य – व्यंग्यात्मक भाषा का सफल प्रयोग करते हैं। भाषा और शैली जैसे कि उनकी वंशवर्तिनी हो। उनके निबंधों में व्यास, समास, धाराप्रवाह, संलाप, निगमन, अनुगमन, विवेचन व विश्लेषण आदि शैली के सभी रूपों को अपनाया है।'

नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध की शैली में जिज्ञासा, कौतूहल तथा रोचकता के तत्व विद्यमान हैं। प्रत्येक शब्द एवं वाक्य में जान की धारा प्रवाहित है। प्रश्नों को उठाकर उनके उत्तर देने की शैली में पाठक से जुड़ाव बढ़ा है। सामान्य से लगने वाले प्रश्न से इतने गंभीर प्रश्न पर ऐतिहासिक संदर्भों में निबंध लिखने की भाषा व शैली में पाठक का जुड़ाव बढ़ा है। सूक्तियों का प्रयोग 'अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधनी है' पूरे दर्शन को समेटे हुए है। युद्ध की विभीषिका को हथियार संग्रह की घातक प्रवत्ति को मानवीय संवेदनाओं के साथ भाषा में उभारा जा सकता है। आलोच्य निबंध की शैली विचारात्मक, चिंतनमूलक, भावात्मक एवं आत्मपरक है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी का जनम स्थान कहां है?
2. हिन्दी में ललित निबंध के जनक किसे माना जाता है?

4.4 'नारखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध का सार

नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित है। इसमें लेखक ने मनुष्य की मनुष्यता का साक्षात्कार कराया है। लेखक के अनुसार नाखूनों का बढ़ाना मनुष्य की पाशविक वृत्ति का प्रतीक है और उन्हें काटना या न बढ़ने देना उसमें निहित मानवता का। आज से कुछ ही लाख वर्ष पहले मनुष्य जब वनमानुष की भाँति जंगली था, उस समय नख ही उसके अस्त्र होते थे। आधुनिक मनुष्य ने अनेक अस्त्र – शस्त्रों का निर्माण कर लिया है। अतः नाखून बढ़ते हैं तो कोई बात नहीं, परंतु उन्हें काटना मानवता की निशानी है। हमें चाहिए कि हम अपने भीतर रह गए पशुता के चिह्नों को त्याग दें तथा उसके स्थान पर मनुष्यता को अपनाएँ। इस पाठ का सार इस प्रकार है –

एक बार लेखक की फत्री ने प्रश्न किया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, छोटी सी बालिका के मुख से ऐसा गंभीर प्रश्न सुनकर लेखक भौंचक्का रह गया। प्रतिक्रिया स्वरूप उसने इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए बताया कि आज से लाखों वर्ष पहले आदि कालीन मानव वनमानुष के समान जंगली था। इस समय उसे अपनी रक्षा के लिए हथियारों की बहुत आवश्यकता होती थी। इसके लिए नाखून उसके सबसे पहले अच्छे हथियार थे। धीरे – धीरे उसने अन्य वस्तुओं का सहारा लेना आरंभ किया होगा। पहले पत्थर के ढले, फिर पेड़ की डाल, फिर हड्डिया और फिर धातु का प्रयोग करके तथा पशु में समानता हैं। मनुष्य में संयम, श्रद्धा, त्याग, तपस्या, दूसरे के सुख–दुख के प्रति संवेदना का भाव है जो पशु में नहीं है। ये भाव ही उसे ऊँचा उठाते हैं। मनुष्य लड़ाई – झगड़े को अपना आदर्श नहीं मानता हैं। वह क्रोधी व अविवेकी को बुरा समझता है। दूसरों के लिए कुछ करने को तत्पर होना मनुष्य मात्र का धर्म हैं। इतना होने पर मनुष्य नाखून बढ़ाता है तो आश्चर्य होता है। अज्ञान सर्वत्र मनुष्य को पछाड़ता है और आदमी उससे लोहा लेने को सदा तैयार रहता है।

लेखक सोचता है कि ऐसी स्थिति में मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा क्योंकि देश के नेता वस्तुओं की कमी के कारण उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं परंतु बुजुर्ग आत्मावलोकन की ओर ध्यान दिलाते हैं। उनका कहना कि प्रेम बड़ी चीज है जो हमारे भीतर है। जितनी गहराई में बैठकर देखा जाएगा, शुभ की वास्तविक चरितार्थता का उतना ही पता चल सकेगा। आगे लेखक ने बताया है कि कुछ समय बाद एक ऐसा समय आएगा जब मनुष्य के नाखून बढ़ने बंद हो जाएँगे तथा प्राणी वैज्ञानिको का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य शरीर का हिस्सा ये नाखून भी झड़ जाएँगे। तब मनुष्य के भीतर की पशुता भी समाप्त ही जाएगी। वह अपने मन के हिंसा रूपी नाखूनों को भी नष्ट कर देगा तथा अत्यंत घातक हथियारों का प्रयाग भी बंद कर देगा। वास्तव में ये नाखून मनुष्य के मन में बढ़ती हुई हिंसा तथा पशुत्व का प्रतीक है। इन्हें निश्चित रूप में नष्ट करना ही होगा। अंत में लेखक स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य के शेवन की सार्थकता केवल आपसी प्रेम, मित्रता, दूसरों के लिए त्याग एवं मानव जाति के कल्याण के लिए अपने आपको समर्पण भाव से समर्पित कर देने में ही है। लेखक कहते हैं कि नाखूनों का बढ़ना अर्थात् हथियारों का संचय करना मनुष्य की उस स्वाभाविक पशुता का परिणाम है जिसके माध्यम से या अपने जीवन को सफल बनाना चाहता है। इन नाखूनों का काटना अर्थात् हथियारों के निर्माण को रोकना उसके उन मानवीय गुणों का परिणाम है जो उसने अपने ऊपर स्वयं लगाए हैं ताकि वह संपूर्ण मनुष्यता को प्राप्त कर सके। उसकी यह प्रवृत्ति उसके जीवन को सार्थक बनाती है। इस प्रकार प्रस्तुत निबंध में लेखक ने मानवीयता पर बल दिया है और महाविनाश से मुक्ति की ओर ध्यान खीचा है।

उन पर विजय प्राप्त करें। इतिहास आगे बढ़ा और आर्य विजयी हुए। इतिहास और आगे बढ़ता गया। परगीते वाली बंदूकों ने, कारतूसों ने, तोपों, ने, बमों ने तथा बमवर्धक वायुयानों ने इतिहास को कहां तक पहुचां दिया। नख–धर मनुष्य अब एटम बम पर विश्वास करके आगे की ओर चल पड़ा, परन्तु वह अपने वह अपने नाखूनों को नहीं छोड़ सका। उसके नाखून अब भी बढ़ रहे है। वह सोचता है कि यह फिर काम करे। उसे यह सोचकर हैरानी होती है कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने पर डांटता है। आज से थोड़े लाख वर्ष

पूर्व यह अपने बच्चों को नाखून काटने (नष्ट करने) पर डाँटता रहा होगा, परंतु प्रकृति उसे फिर भी नाखून बढ़ाने को विवश करती है। मनुष्य को आज कई गुना शक्तिशाली अस्त्र –शस्त्र मिल चुके हैं और अब वह नाखून नहीं चाहता।

मनुष्य को नाखून के प्रति उपेक्षा से ऐसा प्रतीत होता है कि वह अब पाशविकता का त्याग और मानवता का अनुसरण करने की ओर उन्मुख है, परतु आधुनिक मानव को क्रूर कर्मों जैसे हिरोशिमा का हत्याकांड से उपर्युक्त कथन संदिग्ध प्रतीत होता है क्योंकि यह पाशविकता की मानवता को चुनौती हैं। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' से पता चलता है कि नाखूनों को विभिन्न ढंग से काटने एवं सँवारने की एक युग था। उस समय भारतवासियों की नाखून काटने की कला काफी मनोरंजक थी। उन्हें विभिन्न आकृतियाँ देकर काटा जाता था और फिर उन्हें लाल व चिकना बनाया जाता था। प्राणी वैज्ञानिकों के अनुसार मानव – चित्त की भाँति मानव शरीर में भी अभ्यास जन्य सहज प्रवृत्तियाँ हैं। ये प्रवृत्तियाँ अनायास तथा स्वतः काम करती हैं। नाखूनों का बढ़ना उनमें से एक है। नाखूनों का बढ़ा लेना उसके पशुत्त्व का प्रमाण है। उन्हें काटने की प्रवृत्ति मानवता की निशानी है। पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गए हैं, परंतु वह पशुत्व को छोड़ चुका है। इस दृष्टि से अस्त्र – शस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधी है।

लेखक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सोचता है कि आज का मनुष्य किस तरफ बढ़ रहा है। वह घातक हथियारों का निर्माण करके पशुत्व की और बढ़ रहा है या मनुष्यता की ओर। यह उसे समझ नहीं आता। लेखक समझ नहीं पाता कि आज का मनुष्य घातक अस्त्र–शस्त्र और अधिक एकत्रित करने की ओर बढ़ रहा है या उन्हें कम करने की ओर बढ़ रहा है। इस प्रकार लेखक मनुष्य में बढ़ती अत्यधिक अस्त्र–शस्त्र एकत्रित करने की प्रवृत्ति पर निराशा व्यक्त करता है। आज के युग में नाखून पशुता का अवशेष है तथा अस्त्र–शस्त्र पशुता की निशानी है। इसी प्रकार भाषा में भी विभिन्न शब्द विभिन्न रूपों के प्रतीक हैं। लेखक के अनुसार अंग्रेजी भाषा के 'इंडिपेडेंस' शब्द का हिन्दी रूपांतर अब अधीनता है, किंतु हिंदी भाषा में इसके स्थान पर "स्वाधीनता', स्वतंत्रता तथा 'स्वराज' शब्दों का प्रयोग किया गया है। लेखक का मानना है कि हिंदी भाषा में प्रत्येक शब्द के साथ स्व' का प्रयोग हमारी भारतीय परंपरा को अभिव्यक्त कर देता है। भारतीय स्वतंत्र होने पर भी 'स्व' का बंधन अर्थात् अपने आप अपने उपर नियंत्रण करने का बंधन सदैव लगाते रहे हैं। यह 'स्व' का बंधन ही हमारी दीघकालीन परंपरा का परिचायक है जो हमारी संस्कृति को महान बनाए हुए है। यह सच है के आज परिस्थितियाँ बदल गई हैं। उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है, परंतु मूल समस्याएँ अभी नहीं बदली हैं। फराने का 'मोह' सब समय वांछनीय नहीं होता है। उसी प्रकार जैसे बंदरिया मरे हुए बच्चे को अपनी गोदी में चिपकाए रहती है। इसलिए हमें भी नयेपन को अपनाना चाहिए, लेकिन इसके साथ हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि नये की खोज में हम अपना सर्वस्व न खो दें क्योकि संस्कृत के महान कवि कालिदास ने कहा था कि 'सब फराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब नहीं होते। इसलिए दोनों को जाँचकर जो हितकर हो उसे ही स्वीकार करना चाहिए।

लेखक मानता है कि भारत में विभिन्न जातियों की विभिन्न समस्याएँ हैं जिन्हें ऋषि मुनियों ने अनेक प्रकार से सुलझाने की भरसक कोशिश भी की है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि सभी जातियों तथा वर्णों का लक्ष्य एक ही है और सामान्य आदर्श भी एक ही हैं। वह है अपने बंधनों से अपने को बाँधना। मनुष्य किसी बात में पशु से भिन्न है और किसी में एक है।

4.4.1 नाखून क्यों बढ़ते हैं निबंध का उद्देश्य

'नाखून क्यों बढ़ते हैं? श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा रचित एक महत्त्वपूर्ण व चर्चित निबंध है। इस निबंध में उन्होंने मनुष्य की बढ़ती हिंसक प्रवृत्ति व पशुवृत्ति पर चिंता जाहिर करते हुए यह कामना की है कि एक दिन ऐसा अवश्य आएगा कि मनुष्य की यह हिंसक प्रवृत्ति और पशुवृत्ति समाप्त हो जाएगी।

लेखक को पुत्री ने एक बार उससे प्रश्न किया कि आादमी के नाखून क्यों बढते हैं, तो लेखक उसके प्रश्न को सुनकर विचार मग्न हो गया तथा नाखूनों को मनुष्य की हिंसक प्रवृत्ति और पशुवृत्ति का प्रतीक मानकार सोचने लगा– "कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था, वनमानुष जैसा। उसे नाखन की जरूरत थी। उसकी जीवन–रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वन्द्वियों को पछाड़ना पड़ता था, नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था। फिर धीरे – धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा (रामचन्द्र जी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे)।

उसने हड्डियों के भी हथियार बनाए। इन हड्डी के हथियारों में सबसे मजबूत और सबसे ऐतिहासिक था देवताओं के राजा का वज्र, जो दधीचि मुनि की हड्डियों से बना था। मनुष्य और आगे उसने धान के हथियार बनाए। जिनके पास लोहे के अस्त्र और शस्त्र थे, वे विजयी हुए। देवताओं के राजा तक को मनुष्यों के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के राजा के पास लोहे के अस्त्र थे।

मनुष्य के नाखून जो एक समय उसके हथियार थे, कालांतर में उसके नाखूनों रूपी हथियार बंदूकों कारतूसों, तोपों, बमों व बमवर्षक वायुयानों में परिणत हो गए। अतः मनुष्य की यह हिंसक प्रवत्ति जो उसके नाखूनों के बढ़ने से आरंभ हुई, वह वर्तमान युग तक बढ़ती ही गई। यही कारण है कि लेखक हैरान होकर सोचता है कि जहाँ आज मनुष्य यह सोचता है कि बढ़े हुए नाखून हिंसा के प्रतीक हैं, अतः वह अपने बच्चों से उन्हें काटने को कहता है, वहीं प्राचीन काल में जब नाखून ही मनुष्य की सुरक्षा करने वाला एकमात्र हथियार था, तब वह अपने बच्चों को इसलिए डाँटता होगा कि उसने अपने नाखून क्यों काट लिए हैं। लेकिन प्रकृति अब भी मनुष्य को उसके इस प्राकृतिक हथियार से महरूम नहीं कर रहीं है और उसके नाखूनों को बार – बार बढ़ा रही है, अतः मनुष्य की बर्बरता, पशुता और हिंसक प्रवृत्ति भी समाप्त नहीं हो रही है।

लेखक ने नाखुनों के संदर्भ में चुटकी लेते हुए उसे मनुष्य के सौदर्यवर्द्धक उपादान के रूप में देखा है – "कुछ हजार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरू किया था। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' से पता चलता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले का भारतवासी नाखूनों को जम के सँवारता था। उनके काटने की कला काफी मनोरंजक बताई गई है। त्रिकोण, वर्तुलाकार, चन्द्राकार, दन्तुल आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों विलासी नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे। उनको सिक्थक (मोम) और अलक्त्क (आलता) से यत्नपूर्वक रगड़कर लाल और चिकना बनाया जाता था। गौड़ देश के लोग उन दिनों बड़े – बड़े नखों को पसन्द करते थे और दक्षिणात्य लोग छोटे नखों को। अपनी – अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी! लेकिन समस्त अधोगामिनी वृत्तियों को और नीचे खींचने वाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता।

लेखक नाखूनों के संदर्भ में इस बात पर भी विचार करता है कि मानव शरीर में बहुत सी अभ्यासजन्य सहज वृत्तियाँ रह जाती हैं, जो अनजान में ही अपना काम किया करती हैं। नाखूनों का बढ़ना भी उन्हीं में से एक है–"मानव शरीर का अध्ययन करने वाले प्राणि–विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव चित्त की भाँति मानव शरीर में भी बहुत सी अभ्यासजन्य सहज वृत्तियाँ रह गई हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं।

लेखक मनुष्य की हिंसक प्रवृत्ति को रोकने में उसके 'स्वयं' के बंधन को बहुत कारगर मानता है तथा भारतीय संस्कृति की इस बात के लिए प्रशंसा भी करता है कि भारतीय संस्कृति में अनजाने में ही 'स्व' का बंधन रहा है। यही कारण है कि विश्व की अन्य संस्कृतियों की तुलना में भारतीय संस्कृति अपेक्षाकत अहिंसक है। वह कहता है –"15 अगस्त को जब अंग्रेजी भाषा के पत्र 'इण्डिपेण्डेनस' की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा को पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे। 'इण्डिपेण्डेन्स' का अर्थ है अनधीनता या किसी की अधीनता का अभाव,

पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है अपने ही अधीन रहना। अंग्रेजी में कहना हो, तो 'सेल्फण्डपेण्डेन्स' कह सकते हैं। मैं कभी – कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अंग्रेजी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष 'इण्डिपेण्डेन्स' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका? उसने अपनी आजादी के जितने भी नामकरण किए –स्वतन्त्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता – उन सबमें 'स्व' का बन्धन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परम्परा ही अनजान, हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है? मुझे प्राणि – विज्ञानी की बात फिर याद आती है – सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है।''

लेखक मनुष्य की वृत्तियों सुधार हेतु इस बात पर बल देता है कि वृत्तियों में सुधार हेतु मनुष्य को सदैव पुरानी परंपराओं और परिपाटियों से लिपटे रहना उचित नहीं है, उसमे अपेक्षित सुधार तथा नवीनता का समावेश आवश्यक है। हालाँकि वह नए के फेर में पड़कर अपने पुराने को खो देने को भी स्वीकार नहीं करता– ''परन्तु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसन्धित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब नहीं होते। भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं, और मृढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं। सो, हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसञ्चित भण्डार में वह हितकर वस्तु निकल आए, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है।'

लेखक मनुष्य की हिंसक प्रवृत्ति को दूर करने के लिए पशु से उसकी तुलना करते हुए उसकी श्रेष्ठता भी दर्शाता है। वह कहता है – ''मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है! आहार – निद्रा आदि पशु – सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख – दुःख के प्रति समवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्भावित बन्धन हैं। इसीलिए मनुष्य झगड़े – टण्टे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़ – दौड़ने वाले अविवेकी को बुरा समझता है एवं वचन, मन एवं शरीर से किए गए असत्याचरण को गलत आचरण मानता है। यह किसी भी जाति या वर्णे या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्यमात्र का धर्म है।''

लेखक मनुष्य को मानवता का पाठ पढ़ाने वाले गौतम बुद्ध के संदेश का भी उल्लेख करता है, जिसने कहा था– ''मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके सुख – दुःख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्मनिर्मित बंधन ही मनुष्य बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है।'' इसी प्रकार बाहर लेखक महात्मा गाँधी के अहिंसा मूलक संदेश का भी उल्लेख करना नहीं भूलता, जिन्होंने कहा था– ''बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कट सहो आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्म – तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा – प्रेम की बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बन्धन मनुष्य का स्वभाव है।''

अंत में लेखक पुनः नाखूनों को हिंसक प्रवृत्ति का प्रतीक मानते हुए इसके बढ़ने देने को मनुष्य की बर्बरता व पशुपन की निशानी कहता है तथा छोटे बच्चों को यह बता देना आवश्यक समझता है कि –"नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है। बृहत्तर जीवन में अस्त्र – शस्त्रों को बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी है ओर उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है। घृणा है, जो अनायास – बिना सिखाए आ जाती है, पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत मनुष्य रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है। बच्चे यह जानें तो अच्छा हो में जो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं।' साथ ही यह आशा भी व्यक्त करता है कि बेशक नाखून बढ़ते रहें, परन्तु यदि मनुष्य उन्हें समय पर काटता रहे तो निश्चर ही वह अपनी हिंसक प्रवृत्ति पर नियंत्रण रख सकता है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध में यह प्रश्न कौन करता है?
2. 'नाखून बढ़ना' किसकी निशानी है?

4.5 सारांश

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म 1964 को बलिया उत्तर प्रदेश में हुआ। इनका परिवार पंडित होने के कारण संस्कृत में निपुण था। इनके पिताजी पंडित अनमोल द्विवेदी एक संस्कृत के विद्वान थे। इनका बचपन में नाम वैद्यनाथ द्विवेदी रखा गया था। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध के माध्यम से लेखक ने मनुष्य में पाशविक वृत्ति के बढ़ने और मनुष्य को इसे घटाने के प्रयत्न को व्यक्त किया है।

4.6 कठिन शब्दावली

मुफलिस – गरीब, कंगाल, निर्धन

स्फुरण – अंकुरण, कंपन

अक्खड़ – कटुभवि, स्पष्टवादी

4.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. बलिया, उत्तर प्रदेश
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी

अभ्यास प्रश्न–2

1. लेखक की पुत्री ने
2. पशुता की

4.8 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ० आरती अग्रवाल, हिन्दी निबंध साहित्य का लालित्य विधान, संजय प्रकाशन, दिल्ली।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।

4.9 सात्रिक प्रश्न

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन एवं साहित्यिक परिचय पर प्रकाश डालिए।
2. 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध के आधार पर हजारी प्रसाद द्विवेदी की निबंध कला पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–5
प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य

संरचना

5.1 भूमिका

5.2 उद्देश्य

5.3 प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य

5.3.1 जीवन परिचय

5.3.2 साहित्यिक परिचिय

स्वयं आकलन प्रश्न–1

5.4 बात' निबंध का सार

5.5.1 'बात' निबंध का उद्देश्य

स्वयं आकलन प्रश्न–2

5.5 सारांश

5.6 कठिन शब्दावली

5.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

5.8 संदर्भित पुस्तकें

5.9 सात्रिक प्रश्न

5.1 भूमिका

इकाई चार में हमने हजारी प्रसाद द्विवेदी के जीवन परिचय और उनके द्वारा रचित निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते है' का अध्ययन किया। (इकाई पांच में हम प्रतापनारायण मिश्र के जीवन परिचय एवं उनके द्वारा रचित निबंध 'बात' के सार एवं उद्देश्य का भी विस्तृत अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इकाई पांच का अध्ययन करने के पश्चात हम् यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. प्रतापनारायण मिश्र का जीवन परिचिय क्या है?
2. प्रतापनारायण मिश्र का साहित्यिक परिचय क्या है?
3. 'बात' निबंध का सार क्या है ?
4. 'बात' निबंध का उद्देश्य क्या है?

5.3 प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य

प्रतापनारायण मिश्र (24 सितंबर, 1856–6 जुलाई, 1894) भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख लेखक, कवि और पत्रकार थे। वह भारतेन्दु निर्मित एवं प्रेरित हिंदी लेखकों की सेना के महारथी, उनके आदर्शों के अनुगामी और आधुनिक हिंदी भाषा तथा साहित्य के निर्माणक्रम में उनके सहयोगी थे। भारतेन्दु पर उनकी अनन्य श्रद्धा थी, वह अपने आप को उनका शिष्य कहते तथा देवता की भांति उनका स्मरण करते थे। भारतेन्दु जैसी रचनाशैली, विषयवस्तु और भाषागत विशेषताओं के कारण मिश्र जी "प्रति– भारतेंदु और "द्वितीय हरिश्चंद्र'' कहे जाने लगे थे।

5.3.1 जीवन परिचय

मिश्र जी उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के अंतर्गत बेजे गाँव बेथर के निवासी संकठा प्रसाद मिश्र के पुत्र थे। बड़े होने पर वह पिता के साथ कानपुर में रहने लगे और अक्षरारम्भ के पश्चात् उनसे ही ज्योतिष पढ़ने लगे। किन्तु उधर रुचि न होने से पिता ने उन्हें अंग्रेजी स्कूल में भर्ती करा दिया। तब से कई स्कूलों का चक्कर लगाने पर भी वह पिता की लालसा के विपरीत पढ़ाई– लिखाई से विरत ही रहे और पिता की मृत्यु के पश्चात् 18–19 वर्ष की अवस्था में उन्होंने स्कूली शिक्षा से अपना पिंड छुड़ा लिया।

इस प्रकार मिश्रजी की शिक्षा अधूरी ही रह गई। किंतु उन्होंने प्रतिभा और स्वाध्याय के बल से अपनी योग्यता पर्याप्त बढ़ा ली थी। वह हिंदी, उर्दू और बंगला तो अच्छी जानते ही थे, फारसी, अंग्रेजी और संस्कृत में भी उनकी अच्छी गति थी।

मिश्र जी छात्रावस्था से ही "कविवचनसुधा'' के गद्य – पद्य मय लेखों का नियमित पाठ करते थे, जिससे हिंदी के प्रति उनका अनुराग उत्पन्न हुआ। लावनी गायकों की टोली में आशु रचना करने तथा ललितजी की रामलीला में अभिनय करते हुए उनसे काव्यरचना की शिक्षा ग्रहण करने से वह स्वयं मौलिक रचना का अभ्यास करने लगे। इसी बीच वह भारतेंदु के संपर्क में आए। उनका आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन पाकर वह हिंदी गद्य तथा पद्य रचना करने लगे। 1882 के आसपास "प्रेमपुष्पावली'' प्रकाशित हुई और भारतेन्दु जी ने उसकी प्रशंसा की तो उनका उत्साह बहुत बढ़ गया।

15 मार्च 1883 को, होली के दिन अपने कई मित्रों के सहयोग से मिश्रजी ने "ब्राह्मण" नामक मासिक पत्र निकाला। यह अपने रूप – रंग में ही नहीं, विषय और भाषाशैली की दृष्टि से भी भारतेंदु युग का विलक्षण पत्र था। सजीवता, सादगी, बाँकपन और फक्कड़पन के कारण भारतेंदुकालीन साहित्यकारों में जो स्थान मिश्रजी का था, वही तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता में इस पत्र का था, कितु यह कभी नियत समय पर नहीं निकलता था। दो–तीन बार तो इसके बंद होने तक की नौबत आ गई थी। इसका कारण मिश्रजी का व्याधिमंदिर शरीर और अर्थाभाव था। रामदीन सिंह आदि की सहायता से यह येनकेन प्रकारेण सम्पादक के जीवनकाल तक निकलता रहा। उनकी मृत्यु के बाद भी रामदीन सिंह के संपादकत्व में कई वर्षों तक निकला, परन्तु पहले जैसा आकर्षण उसमें न रह।

1880 में मिश्र जी 25 रू. मासिक पर ''हिंदोस्थान'' के सहायक संपादक होकर कालाकाँकर आए। उन दिनों पं. मदनमोहन मालवीय उसके संपादक थे। यहाँ बालमुकुंद गुप्त ने मिश्रजी से हिंदी सीखी। मालवीय जी के हटने पर मिश्रजी अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण वहा न टिक सके। कालाकॉकर से लौटने के बाद वह प्रायः रुग्ण रहने लगे। फिर भी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक कार्यों में पूर्ववत रुचि लेते रहे और "ब्राह्मण'' के लिए लेख आदि प्रस्तुत करते रहे। 1891 में उन्होंने कानपुर में ''रसिक समाज'' की स्थापना की। कांग्रेस के कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारतधर्ममंडल, धर्मसभा, गोरक्षिणी सभा और अन्य सभा समितियों के सक्रिय कार्यकर्ता और सहायक बने रहे। कानपुर की कई नाट्य सभाओं और गोरक्षिणीं समितियों की स्थापना उन्हीं के प्रयत्नों से हई थी।

मिश्रजी जितने परिहासप्रिय और जिंदादिल व्यक्ति थे उतने ही अनियमित, अनियंत्रित, लापरवाह और काहिल थे। रोग के कारण उनका शरीर युवावस्था में ही जर्जर हो गया था। तो भी स्वास्थ्यरक्षा के नियमों का वह सदा उल्लंधन करते रहे। इससे उनका स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता गया। 1892 के अंत में वह गभीर रूप से बीमार पड़े और लगातार डेढ़ वर्षों तक बीमार ही रहे। अंत सें 38 वर्ष की आयु में 6 जुलाई 1894 को दस बजे रात में भारतेंदु मंडल के इस नक्षत्र का अवसान हो गया।

5.3.2 साहित्यक परिचय

प्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु के विचारों और आदर्शों के महान प्रचारक और व्याख्याता थे। वह प्रेम को परमधर्म मानते थे। हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान उनका प्रसिद्ध नारा था।

समाजसुधार को दृष्टि में रखकर उन्होंने सैकड़ों लेख लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट की तरह वह आधुनिक हिंदी निबंधों को परम्परा को पुष्ट कर हिंदी साहित्य के सभी अंगों की पूर्णता के लिये रचनारत रहे। एक सफल व्यंग्यकार और हास्यपूर्ण गद्य – पद्य रचनाकार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। मिश्र जी की मुख्य कृतियाँ निम्नांकित हैः–

(क) नाटकः गो संकट, भारत दुर्दशा, कलिकौतुक, कलिप्रभाव, हठी हम्मीर जुआरी – खुआरी (प्रहसन)। संगीत शाकुंतल (कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुतंलम्' का अनुवाद)।

(ख) निबंध संग्रह निबंध नवनीत, प्रताप पीयूष, प्रताप समीक्षा।

(ग) अनूदित गद्य कृतियाँ; राजसिंह, अमरसिंह, इन्दिरा, कथामाला शिशु विज्ञान, राधारानी, युगलांगुरीय, सेनवंश का इतिहास, सूबे बंगाल का भूगोल, वर्णपरिचय, चरिताष्टक, पंचामृत, नीतिरत्नमाला, बात

(घ) कविता प्रेम पुष्पावली मन की लहर, कानपुर महाम्य, ब्रेडला स्वागत, दंगल खंड, तृप्यन्ता, लोकोक्तिशतक, दीवो बरहमन (उर्दू)।

मिश्रजी के निबंधों में विषय की पर्याप्त विविधता है। देव–प्रेम, समाज – सुधार एवं साधारण मनोरंजन आदि मिश्रजी के निबंधों के मुख्य विषय थे। उन्होंने 'ब्राह्मण' मासिक पत्र में हर प्रकार के विषय पर निबंध लिखे। जैसे– घूरे के लत्ता बीने – कनातन के डौल बांधे, समझदार की मीत है, आप, बात, मनोयोग, बृद्ध, भौ, मुच्छ, ह, ट, द आदि।

मिश्रजी 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के कट्टर समर्थक थे, अतः उनकी रचनाओं में इनके प्रति विशेष मोह प्रकट हुआ है।

भाषा

खड़ी बोली के रूप में प्रचलित जनभाषा का प्रयोग मिश्रजी ने अपने साहित्य में किया। प्रचलित मुहावरों, कहावतों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा की दृष्टि से मिश्रजी ने भारतेंदु का अनुसरण किया और जन साधारण की भाषा को अपनाया। भारतेंदु जी के समान ही मिश्रजी भाषा की कृत्रिमता से दूर रहे। उनकी भाषा स्वाभाविक है। उसमें पंडिताऊपन और पूर्वीपन अधिक है तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग स्वच्छंदता पूर्वक हुआ है। संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, आदि के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है। भाषा विषय के अनुकूल हैं। गंभीर विषयों पर लिखते समय भाषा और गंभीर हो गई है। कहावतों और महावरों के प्रयोग में मिश्री बड़े कुशल थे। मुहावरों का जितना सुंदर प्रयोग उन्होंने किया है, वैसी बहुत कम लेखकों ने किया है। कहीं – कहीं तो उन्होंने मुहावरों की झड़ी –सी लगा दी है।

शैली

मिश्रजी की शैली वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा हास्य – व्यंग्यात्मक है।

विचारात्मक शैली – साहित्यिक और विचारात्मक निबंधों में मिश्रजी ने इस शैली को अपनाया है। कहीं –कहीं इस शैली में हास्य और व्यंग्य का पुट भी मिलता है। इस शैली की भाषा संयत ओर गंभीर है। 'मनोयोग' शीर्षक निबंध का एक अंश देखिए–

इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीर रूपी नगर का राजा है। और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छ रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है।

व्यंग्यात्मक शैली – इस शैली में मिश्रजी ने अपने हास्य – व्यंग्यपूर्ण निबंध लिखे हैं। यह शैली मिश्रजी की प्रतिनिधि शैली है, जो सर्वथा उनके अनुकूल है। वे हास्य – विनोद प्रिय व्यक्ति थे। अतः प्रत्येक विषय का प्रतिपादन हास्य और विनोदपूर्ण ढंग से करते थे। हास्य और विनोद के साथ – साथ इस शैली में व्यंग्य के दर्शन होते हैं। विषय के अनुसार व्यंग्य कहीं – कहीं बड़ा तीखा और मार्मिक हो गया है। इस शैली में भाषा सरल, सरस और प्रवाहमयी है। उसमें उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग के कारण यह शैली अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है। एक उदाहरण देखिए –

दो – एक बार धोखा खाके धोखेबाजों की हिकमत सीख लो और कुछ अपनी ओर से झपकी – फुंदनी जोड़ कर उसी की जूती उसी का सर कर दिखाओ तो बड़े भारी अनुभवशाली वरंच 'गुरु गुड़ ही रहा और चेला शक्कर हो गया' का जीवित उदाहरण कहलाओगे।

समालोचना

मिश्रजी भारतेंदु मंडल के प्रमुख लेखकों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध रूपों में सेवा की। वे कवि होने के साथ–साथ उच्चकोटि के मौलिक निबंध लेखक और नाटककार थे। हिंदी गद्य के विकास में मिश्रजी का बड़ा योगदान रहा है। आचार्य शुक्ल ने पं. बालकृष्ण भट्ट के साथ मिश्रजी को भी महत्व देते हुए अपने हिंदी – साहित्य के इतिहास में लिखा है –

पं. प्रतापनारायण मिश्र और पं. बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य साहित्य में वही काम किया जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया।

निबंध कला

प्रतापनरायण मिश्र भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंधकारों में से एक हैं। उन्होंने 'ब्राह्मण' पत्र का अनेक वर्षों तक संपादन किया। उनके निबंध संकलनों में निबंध नवीन, प्रताप पीयुष और प्रताप नारायण ग्रंथावली महत्वपूर्ण हैं। वे मूलतः निबंधकार होने के साथ ही एक पत्रकार भी थे। इसी कारण उन्होंने अपने निबंधों के माध्यम से अपने आपको सामाजिक जागरण से भी जोड़ा। उनके व्यक्तित्व की छाप उनके निबंधों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उन्होंने साहित्य निर्माण, समाज सेवा और देशहित को अपने निबंधों का लक्ष्य बनाया। उन्होने जीवन में जुड़े हुए सामान्य विषयों पर भी निबंध की रचना की। उनमें देश और जाति के प्रति प्रेम की भावना निहित थी। इसीलिए उन्होंने अपने राजनीतिक निबंधों में अंग्रेज सरकार की नीतियों की आलोचना एवं भर्त्सना की है। उनके निबंधों में कोरी भावुकता नहीं है और न ही कल्पना की उड़ान है वे अनुभूति की गहराई तथा आत्मीयता के साथ लिखते हैं।

मिश्र जी के विचारात्मक निबंधों में 'नासिक', "ईश्वर की मर्ति, भावात्मक निबंधों में 'लोक लज्जा' तथा वर्णनात्मक निबंधों में 'धरती माता' जैसे निबंध उल्लेखनीय है। उन्होंने भावात्मक शैली कुछ में अनेक निबंध लिखे। इस प्रकार के निबंधों में भावों का आवेग कुछ अधिक ही दिखाई देता है। जैसे – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के देहावसान पर लिखा गया उनका 'रक्ताच' निबंध। इसमें भावात्मकेता के बिन्दु देखे जा सकते हैं–

''हाय! हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। आँसु रूकते ही नहीं। हाय हाय सुनने से पहले हो हमारा निर्लज्ज शरीर क्यों न छूट गया। हाय, पापी प्राण तुम क्यों न निकल गए। हाय, इस अधम जीवन का अंत क्यों न हो गया। हाय आशा की जड़ कट गयी। बस, अब क्या है..

भारतेन्दु युग के सभी निबंधकारों के समान मिश्र जी के निबंध हास्य एवं व्यंग्य से भरे हुए है। जैसे "धोखा', 'घात', 'जवानी की सैर' और 'आप' आदि। आत्मपरकता के साथ वे उद्देश्यपूर्ण भी हैं। मनोरंजन के साथ –साथ चिंतन तथा जन जागरण की भावना भी उनके निबंधों में विस्तृत रूप से दिखाई देती है। उनके निबंधों में व्यंग्य का पुट भी देखा जा सकता है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है – घर की मेहरिया कहा नही मानती, चले हैं

दुनिया भर को उपदेश देने, घर में एक गाय नहीं बाँधी जाती, गौ रक्षिणी सभा स्थापित करेंगे, तन पर एक सूती देशी कपड़े का वस्त्र नहीं हैं, बने हैं देश हितैषी, साढ़े तीन हाथ का अपना शरीर है, उसकी उन्नति नहीं कर सकते, देशोन्नति पर मरे जाते हैं – कहाँ तक कहिए, हमारे नौसिखिए भाइयों को 'मालि खूलिया' का आजार हो गया। करते – करते कुछ भी नहीं है, बक – बक नाधे हैं।'

प्रताप नारायण मिश्र अपनी 'ब्राह्मण' पत्रिका के माध्यम से अपने विचारों तक जनसाधारण तक पहँचायाः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार – "प्रताप नारायण मिश्र जी में विनोदप्रियता विशेष थी, इसी से उनकी वाणी में व्यंग्यपूर्ण वक्रता की मात्रा प्रायः रहती है, इसके साथ ही वे पूरबीन की परवाह न करके अपने 'बँसवारे' की ग्राम्य कहावतें और शब्द भी कभी बेधड़क रख दिया करते थे, कैसा भी विषय हो उसमें विनोद और मनोरंजन की सामग्री ढूँढ लेते हैं।' 'दाँत', 'भौं', 'मृच्छ', 'खुशामछ', 'आप', 'धोखा', 'नारी', 'बात', 'समझदार की मौत है, 'मनोयोग' आदि अनेक निबंधों में उन्होंने मौज में सार्थक बातें कहीं हैं। उनके निबंधों में गंभीरता, चुलबुलापन, हास – परिहास, विचारों की परिपक्वता आदि वस्तुएँ मिलती हैं।

मिश्र जी के निबंधों की भाषा विषयानुकूल एवं अत्यंत सरल है। वह लोक प्रचलित शब्दावली व मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा के संदर्भ में पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔद्य' जी ने एक स्थान पर लिखा है – "अहा! भाषा हो तो ऐसी हो, क्या प्रवाह है? क्या लोच! कैसी फड़कती और चलती भाषा है। दुःख है यह भाषा पंडित जी के साथ चली गई, फिर ऐसी भाषा लिखने वाला कोई उत्पन न हुआ। मुहावरेदार भाषा लिखने में जैसे भाव – विकास होता है, वैसा अन्य भाषा लिखने में नहीं। यदि होता भी है तो उतना प्रभावजनक नहीं होता।''

मिश्र जी की निबंध शैली का विकास 'धोखा', 'मनोयोग', 'पंच परमेश्वर', जैसी रचनाओं देखा जा सकता है। वे 'धोखा' निबंध में कहते हैं कि हम नहीं जानते कि धोखे को लोग बुरा क्यों कहते हैं। कितनी आकर्षक शैली में वे कहते हैं, "धोखा खाने वाला मुर्ख और धोखा देने वाला ठग क्यों कहलाता है। जब सब कुछ धोखा ही धोखा है। और धोखे में अलग रहना ईश्वर की सामर्थ्य से भी दूर हैं तथा धोखे ही के कारण संसार का चर्खा पिन–पिन्न चला आता है नहीं तो ढिचर – ढिचर होने लगता बस रह ही न जाए.. साधारणतः जो धोखा खाता है वह अपना कुछ न कुछ गंवा बैठता है और धोखा देता है उसकी एक न एक दिन कलई खुले बिना नहीं रहती है और हानि सहना व प्रतिष्ठा खोना दोनों में हो ही जाया करती है।''

प्रताप नारायण मिश्र जी ने कहीं–कहीं पर विवेचनात्मक शैली को भी भावात्मक बना दिया है। उन्होंने सामाजिक बुराइयों पर भी करारा व्यंग्य कसा है। उन्होंने अपनी शैली में मधुरता, व्यंग्य तथा विवेचन तीनों का संमावेश किया है। वे मानते हैं कि खुशामद वह चीज है जो पत्थर को भी मोम बना देती है। उनकी भाषा स्वच्छ और सुसंस्कृत है, आकर्षक और लोकप्रिय है। उनकी शैली की विशेषताओं के संदर्भ में श्री जयनाथ नलिन जी लिखते हैं – "आत्मीयता, आकार – संकोच, भाषा का चटपटापन, उछलता उमंग भरा व्यक्तित्व, जबान का फक्कड़पन और तेज, उक्ति चमत्कार और व्यंग्य की बौछार आदि विशेषताएँ मिश्र जी को शक्तिशाली निबंधकार प्रमाणित करती है।''

मिश्र जी मनमौजी और मस्त निबंधकार थे। उनकी सी मस्ती तथा उल्लास भारतेन्दु युग के किसी श्री अन्य लेखक में नहीं मिलता। वे किसी भी प्रकार के विधि–निबंधों को स्वीकार न कर मन की तरंग के प्रवाह में बहते हुए स्वच्छन्द रूप से लिखते थे। इसी कारण उनकी भाषा और शैली में पूर्ण स्वाभाविकता, सजीवता और सरसता रहती थी। उन्होंने गंभीर विषयों का बहुत ही कम स्पर्श किया है। वे अपनी सरल ग्रामीणता को यथावत् बनाए रख बेतकल्लुफी के साथ अपने पाठकों के साथ बातें करते थे। जैसे – उनका यह निबंध कि 'तो भला बतलाइए तो आप क्या है?' वे कहावते, मुहावरों, श्लेप तथा अनुप्रास के चमत्कार के द्वारा अपनी बात में एक ऐसा सहज

और प्रबल आकर्षण उत्पन्न कर देते हैं कि पाठक उनके साथ अपनापन अनुभव करने लगता है। वस्तुतः वे व्यक्तिनिष्ठ शैली के निबंधकार थे। जो विषय मन में आया, उठा लिया। निबंध का विषय उनकी विचारधारा को नियंत्रित न कर स्वयं ही विचारधारा से नियंत्रित रहता है। आचार्य शुक्ल ने उनकी स्वच्छन्द शैली पर ग्रामीणता का दोष लगाया है। वस्तुतः उनकी सहजता तथा अकृत्रिमता ही कुछ लोगों को ग्रामीण प्रतीत हुई है। मिश्र जी ने अपने युग की प्रवृत्ति के अनुसार साधारण तथा गंभीर विषयों को अपनाया है, लेकिन बहुलता साधारण विषयों की ही रही है।

मिश्र जी की भाषा में कहावतों की भरमार देरवी जा सकती है। हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और, जैसे प्रयोग भी मिलते हैं। 'छाती ठोकना', 'आपे से बाहर होना', 'कलई खोलना' आदि अनेक मुहावरे देखे जा सकते हैं। उनकी भाषा में उर्दू और संस्कृत के शब्दों का प्रयोग हुआ है जैसे – पोषाक, हुनर, आर्टिकल, कमीशन, एडीटर आदि।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि प्रताप नारायण मिश्र भारतेन्दु युग के श्रेष्ठ निबंधकार हैं। उनका निबंधकार के रूप में उभरा व्यक्तित्व उस युग के अन्य निबंधकारों से एक अलग ही पहचान रखता है।

निबंध कला

प्रताप नारायण मिश्र भारतेन्दु मंडल के प्रमुख लेखक, कवि, पत्रकार और निबंधकार थे। समाज सुधार को दृष्टि में रखकर उन्होंने सैंकड़ों लेख लिखे है। बालकृष्ण भट्ट की तरह वह आधुनिक निबंधों की परंपरा को पुष्ट कर हिन्दी साहित्य के सभी अंगों की पूर्णता के लिए रचनारत रहे। एक सफल व्यंग्यकार और हास्यपूर्ण गद्य – पद्य रचनाकार के रूप में हिन्दी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। उनके निबंध संग्रह है – 'निबंध नवनीत', 'प्रताप पीयूष' व प्रताप समीक्षा। इन निबंध संग्रहों में निम्नलिखित निंबंध संग्रहीत है – 'बालक' वृद्ध', 'नारी', 'धोखा', 'आप', 'बात', 'खुशामद', 'भौं', 'मूँछ', 'मनोयोग', 'परीक्षा', 'धूरे की लता बीने', "कचातन का डौल बाँध', 'अपव्यय', 'सोने का डंडा', 'जुआ', 'टेड़ी जान शंका सब काछू', 'ह', 'द', "नास्तिक' आदि।

खड़ी बोली के रूप में प्रचलित जनभाषा का प्रयोग मिश्र जी ने अपने निबंधों में किया। प्रचलित मुहावरों, कहावतों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग के निबंधों में हुआ है। भाषा की दृष्टि से मिश्र जी ने भारतेन्दु जी का अनुसरण किया तथा जब साधारण की भाषा को अपनाया। उनके समान ही मिश्र जी भाषा की कृत्रिमता से दूर रहे। मिश्र जी की भाषा स्वाभाविक है। उसमें पंडिताऊपन तथा पृथ्वीपन अधिक है तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग स्वछंदपूर्वक हुआ है। संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी आदि के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है। भाषा विषय के अनुकूल है। गंभीर विषयों पर लिखते समय भाषा और गंभीर हो गई हैं। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग में मिश्र जी बड़े कुशल थे। मुहावरों का जितना सुंदर प्रयोग उन्होंने किया है, वैसा बहत कम लेखकों ने किया है। कहीं – कहीं तो उन्होंने मुहावरों की झड़ी – सी लगा दी है। 'बात' निबंध में लेखक ने निम्नलिखित मुहावरों का प्रयोग किया है – 'गात माँहि बात करामात है', 'बातहिं हाथी पाइए बातहिं हारथी पाँव', 'बात– बात में बात', 'मर्द की जवान', 'बात का बतंगड बनाना' आदि। तत्सम शब्दों की तो अत्यधिकता है जैसे – 'शुर्क, 'सारिका', 'उच्चरित', 'रंजिरा', 'स्पथी', 'उत्तमता', 'निर्गत', 'सुवक्ता', 'देशोद्वार', 'तिय', 'तनय', 'धाम', 'धन', 'धरनी', 'सम', 'बरनी', 'सुत', 'स्वल्प' आदि। होली, बाइबिल, वर्ड, ऑफ, गॉड आदि अंग्रेजी भाषा के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। पाठ में 'कापुरुष', 'गापाणखण्ड' , 'सुपथ', 'यथासामर्थ्य', 'अपाणिपादरो।', 'कुमार्गी' आदि समास भी आए हैं। कुछ संधि से युक्त, शब्द भी हैं जैसे – 'योगाभ्यास', 'कवीश्वर', "स्वार्थन्धता', 'युद्धोत्साही', विदग्धालाप', 'परमेश्वर', 'निरवयव', 'निराकार', 'यद्यपि' आदि। मिश्र जी की भाषा में अव्यवस्था, ग्रामीणता तथा व्याकरण की भूलें आ जाना स्वाभाविक है। उन्होंने शब्द शुद्धि की ओर ध्यान नहीं दिया। विषम चिह्नों का प्रयोग या तो हुआ ही नहीं है, यदि कहीं हुआ भी है तो अशुद्ध है। 'खुशामछ', 'लपज', 'निहायत', 'खामहखाह', 'करामात', 'कुरान शरीफ', कलामुल्लाह' आदि उर्दू–फारसी के शब्द मिलते हैं।

मिश्र जी के निबंधों की शैली वर्णनात्मक, विचारात्मक और हास्य – व्यंग्यात्मक है। साहित्यक और विचारात्मक निबंधों में मिश्र जी ने विचारात्मक शैली को अपनाया है। कहीं – कहीं इस शैली में हास्य और व्यंग्य का पुट भी मिलता है। इस शैली की भाषा संयत तथा गंभीर है। मनोयोग' निबंध का एक अंश देखिए– ''इसी से लोगों ने कहा कि मन शरीर रूपी नगर का राजा है और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छ रहे तो बहुधा कृत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है।' व्यंग्यात्मक शैली में मिश्र जी ने अपने हास्य–व्यंग्यपूर्ण निबंध लिखे हैं। यह शैली मिश्र जी की प्रदर्शनात्मक शैली है जो उन पर पूरी तरह से जँचती है। वे हास्य – विनोद प्रिय व्यक्ति थे। इसलिए प्रत्येक विषय को हास्य तथा विनोदपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करते थे। हास्य और विनोद के साथ –साथ इस शैली में व्यंग्य के दर्शन होते हैं। विषय के अनुसार कहीं–कहीं व्यंग्य बहुत तीक्ष्ण एवं मार्मिक हो गया है। इस शैली की भाषा सरल, सारगर्भित तथा प्रवाहमयी है। इसमें उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया गया है। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग के कारण यह शैली अधिक प्रभावशाली हो गई है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"दो–एक बार धोखा खाके धोखेबाजों की हिकमत सीख लो और कुछ अपनी ओर से झपकी – फुंदनी जोड़कर उसी की जूती उसी का सर कर दिखाओ तो बड़े भारी अनुभवशाली वरंच 'गुर गुड़ ही रहा और चेला शक्कर हो गया' का जीवित उदाहरण कहलाओगे। बात निबंध में हास्य – व्यंग्य प्रधान शैली का प्रयोग हुआ है। इस निबंध में विनोदपूर्ण शैली का एक उदाहरण देखिए –"इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है और छिपती है, बात अड़ती है, बात जमती है, बात उखड़ती है। हमारे तुम्हारे भी सभी काम बात पर ही निर्भर है। मिश्र जी के निबंधों में मुहावरों का तो अत्यधिक प्रयोग किया गया है। कहीं –कहीं तो वे एक वाक्य में ही मुहावरों की झड़ी लगा देते हैं। मुहावरेदार भाषा मात्र बात पर आधारित मुहावरों की झड़ी अवलोकनीय है – "डाकखाने अथवा तारघर के सारे से बात की बात में चाहे जहाँ की की झाते हो, जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, यात आ पड़ती हो, बात जाती रहती है, बात जमती है, बात उखड़ती है, बात खुलती है, बात छिपती है, बात चलती है, बात उड़ती है।''

हिन्दी निबंधकार के निबंध में उद्धृत उद्धरण उनकी निबंध संबंधी विशेषताओं पर प्रकाश डालता– "भाषा में स्खलन, शैली में घरूपन, और ग्रामीणता, चंचलता और उछल – कूद मिश्र जी की विशेषता है। भाषा संबंधी दोष जहां–तहां लापरवाही से बिखरे पड़े हैं। कहीं – कहीं वाक्य का विलक्षण और दुर्बोध रूप भी मिलता है। उर्दू के एक – दो शब्द भी परदेशी की तरह डरे – डरे से दिख पड़ते हैं। तेग अदा कमाने, अब, निहायत आदि माँ में मिल जाएँगी। पर केवल इन्हीं तक में दूसरे में कुछ नहीं, फिर क्यों इनकी निंदा की जाए ? का अर्थ टेढ़ी खीर है। विराम चिह्न तब प्रयुक्त ही अधिक नहीं होते थे। इन्होंने उनका जैसे बहिष्कार ही कर रखा हो। इनके अभाव में वाक्य कभी – कभी इतना लंबा हो जाता है कि समझने में उसे बार – बार पढ़ना पड़ता है।

प्रताप नारायण मिश्र भारतेन्दु मंडल के प्रमुख लेखकों में से एक है। उन्होंने हिन्दी साहित्य में बहुत बड़ा योगदान दिया है। वे कवि होने के साथ – साथ उच्च कोटि के मौलिक निबंधकार तथा नाटककार थे। हिन्दी गद्य के विकास में मिश्र जी का बड़ा योगदान रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बालकृष्ण भट्ट के साथ मिश्र जी को भी महत्व देते हुए अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है – पं. प्रताप नारायण मिश्र और पं. बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी गद्य में वही काम किया जो उन्होंने गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया।''

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. 'हिन्दी का एडीमन' किसे कहा जाता है?
2. प्रतापनारायण मिश्र का जन्म कब हुआ?

5.4 बात' निबंध का सार

'बात' निबंध प्रताप नारायण मिश्र जी की हास्य –व्यंग्य, शैली, जो इनकी प्रतिनिधि शैली कही जाती है, के अंतर्गत आने वाले प्रसिद्ध निबंधों में से एक है। इसमें लेखक ने बात के संबंध में सभी ज्ञातव्य बातों का सहज समावेश किया है। लेखक की स्वच्छंद कल्पना तथा शैली की रोचकता का समन्वित आकर्षक इस लेख की विशेषता है। पाठ में लेखक बात की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए बताता है कि जिस प्रकार का व्यक्ति होता है वह उसी प्रकार की बात करता है। लेखक का कहना कि हम लोग उसी विषय पर बात लिखते अथवा करते हैं जो हृदय की भावनाओं को वाणी के माध्यम से प्रकाशित करती है। हमारे मन की जो स्थिति है और जो भावनाएँ हमारे हृदय में प्रतिपल उठती हैं उन्हें यदि हम मुख से, वाणी के माध्यम से दूसरे को अवगत कराएँ तो वह 'बात' कहलाती है। हम अपने हृदयस्थ भावों की अभिव्यक्ति बात के माध्यम से करते हैं।

लेखक हमें इस तथ्य से अवगत कराते हुए कहते है कि एक व्यक्ति का जैसा स्वभाव होगा अथवा जो जिस प्रकार का कार्य करेगा वह स्वाभाविक रूप से उसी प्रकार के वातावरण में उसी कार्य के अनुसार बद्धि वाला हो जाएगा। यदि हम वैद्यराज को लें तो अपने स्वभाव के अनुसार और कार्य के अनुरूप किसी रोग जैसे – पित्त, कफ, वायु और उससे संबंधित विषयों पर बात करेगा। इसी प्रकार यदि कोई भूगोल का वेत्ता होगा तो वह अपने स्वभावानुसार किसी देश की जलवायु अथवा प्राकृतिक विषयों पर बात करेगा। लेकिन लेखक कहते हैं कि दोनों विषयों में बात करने का हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। हम लोग उसी विषय पर बात करते हैं जो हृदय की भावनाओं को वाणी के माध्यम से प्रकाशित करती है। हमारे मन की जो स्थिति है, हमारे हृदय में प्रतिफल जो भावनाएँ उठती हैं उसे यदि हम मुख से, वाणी के माध्यम से दूसरों को अवगत कराएँ तो वह 'बात' कहलाती है। लेखक बात की महत्ता न का बखान करते हुए कहते हैं कि बात का प्रभाव मनुष्य तक ही सीमित नहीं, ईश्वर तक इसके प्रभाव से बच नहीं पाए। यद्यपि ईश्वर के विषय में यह कहा जाता है कि उसकी न वाणी है, न हाथ है, पाँव है, बल्कि वह तो निराकार, निर्गुण और निरंजन है तथापि उसे बिना वाणी का वक्ता कहा गया है। जब निराकार ब्ह्म पर भी बात का प्रभाव पड़ता है तो फिर हम शरीरधारी मनुष्यों का कहना ही क्या? हम सभी के शरीर में बात (भाषण शक्ति या वायु) का ही चमत्कार है। अनेक शास्त्र, पराण, इतिहास, काव्य, कोश आदि जितना भी साहित्य है वह सब बात का विस्तार है। इन विभिन्न प्रकार के ग्रंथों में एक से बढ़कर एक बातें पाई जाती हैं। उनमें एक–एक बात ऐसी अमूल्य है कि जो हमारे मन, बद्धि तथा चित्त को अपूर्व आनंदमयी दशा की ओर अग्रसर करती है। इन ग्रंथों की बातें हो लोक तथा परलोक की सभी बातें का ज्ञान कराती हैं। लेखक बताते हैं कि बात का कोई रंग या रूप नहीं होता। कोई कह नहीं सकता कि अमुक बात ऐसी है, परंतु यदि बुद्धि से विचार करके देखा जाए तो हम पाएँगे कि जिस प्रकार ईश्वर के अनेक रूप होते हैं, ठीक उसी प्रकार बात के भी अनेक रूप होते हैं। जैसे – बड़ी बात, छोटी बात, सीधी बात, टेढ़ी बात, मीठी बात, कड़वी बात भली बात, सुहाती बात, लगती बात आदि ये सब बात के ही रूप हैं।

लेखक कहते हैं कि वास्तव में बात का महत्व इतना अधिक है कि उसका वर्णन करना कठिन हो जाता है। यदि बात की महत्ता को लेखनीबद्ध करते हैं तो एक ग्रंथ बन सकता है। संसार में मानव को सभी योनियों में श्रेष्ठ माना जाता है। इसका प्रमुख कारण भी बात है। मानव ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो बात करने में चतुर है। इसी कारण से वह सभी प्राणियों में शिरोमणि बना हुआ है। मानव की भाषा में तोता, मैना आदि पक्षी थोड़ी समझने योग्य बातों का उच्चारण कर लेते हैं जिसके कारण आकाश में घूमने वाले अन्य पक्षियों की तुलना में श्रेष्ठ माने जाते हैं और इसलिए उनका जनसामान्य में उनका आदर होता है। इतना सब कुछ होते हुए भी इस संसार में ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो बात की महत्ता को स्वीकार नहीं करेगा। बात के महत्व के कारण ही लोग भगवान का संबंध उससे जोड़ते हैं। यद्यपि लोग ईश्वर को बिना आकार (शरीर) वाला मानते हैं, परंतु लोग उसे फिर भी श्रेष्ठ उपदेशवक्तां कहकर उसकी सर्वोच्च सत्ता को स्वीकारते हैं। ऐसा माना जाता है कि वेद ईश्वर की बोली हुई चीज है, ईश्वर के ही वक्तव्य हैं। कुरान शरीफ अल्लाह का ही वचन है, पवित्र बाइबिल भी ईश्वर के शब्द हैं।

वचन, कलाम, बात – सबके पर्यायवाची एक हैं। लेखक बात की महत्ता का वर्णन करते हए कहते हैं कि यदि यह कहा जाए कि ईश्वर तो निराकार होने के कारण सम्भाषण नहीं कर सकते तो वह मनष्य से भी निम्न श्रेणी में आ जाता है क्योंकि मनुष्य तो सम्भाषण करने में समर्थ है। अतः बात ही मनुष्य को ईश्वर से श्रेष्ठ बनाती है। इसीलिए शायद समस्त धर्मावलंबी ईश्वर का संबंध भाषण शक्ति से जोड़ते हैं, चाहे वे उसके साकार रूप के समर्थ हों या निराकार रूप के।

मिश्र जी बात के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि बात का प्रभाव ही व्यापक होता है। बात (वाणी) के द्वारा ही हम किसी के प्रेम, दुश्मनी, सुख – दुःख, श्रद्धा, घृणा, उत्साह, अनुत्साह आदि की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। वाणी के द्वारा ही हम किसी के अच्छे व बुरे भावों को समझ सकते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई तरीका नहीं है। घर से काफी देर बैठे लोगों के सुख–दुख के समाचार मुँह और लेखनी से निकली हुई बात ही बता सकते हैं। बात के द्वारा ही कोई भी भाव यो विचार सहजता और सरलता से विदित हो सकता है। हम डाकघर या तारघर के सहारे दर की बात जान सकते है। निश्चय ही हमारे बात करने के ढंग से हमारा कार्य प्रभावित होता है। बात के प्रभावशाली होने पर कवि अथवा चारण – भाट, राजाओं से पुरस्कार के रूप मे हाथी तक प्राप्त कर लेते थे. परंतु कटु बात कहने से राजाओं द्वारा लोगों को हाथी के पाँवों के नीचे कुचल दिया जाता था। यह बात भी सिद्ध है कि बात (वायु प्रकोप) से 'हाथी गाँव' नामक रोग भी हो जाता है। किसी भी व्यक्त की बात (वाणी) से प्रभावित होकर बड़े – बड़े कंजूस भी उदार हृदय वाले बन जाते हैं तथा मेहनत से कमाई हुई अपनी सम्पत्ति को परोपकार के लिए अर्पित कर देते हैं। इसके ठीक विपरीत कटु वाणी के प्रभाव से उदार हृदय वाला व्यक्ति भी अपने साथनों को समेट लेता है। युद्ध के मैदान में चारण और भाटों की ओजपूर्ण वाणी को सुनकर कायरों में भी वीरता का संचार हो जाता है। यदि कोई बात अच्छी भी लग जाए तो युद्ध चाहने वाला व्यक्ति भी शांतिप्रिय बन जाता है। बात के प्रभाव से बरे रास्ते पर चलने वाला व्यक्ति अच्छे मार्ग पर चलने लगता है और बात की शक्ति के द्वारा अच्छे मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति भी दुष्टों जैसा व्यवहार करने लगता है।

लेखक का कहना है कि बात के असली तत्व को समझना हर व्यक्त का काम नहीं है। विद्वानों की बात का अभिप्राय समझ पाना प्रत्येक व्यक्ति के लिए सरल कार्य नहीं है। साथ ही साथ दूसरों को प्रभावित कर सकने वाली बात भी गढ़कर कह देना साधारण मनुष्यों का काम नहीं है। संसार में बड़े–बड़े ज्ञानियों और कवियों का जीवन बात के अभिप्राय को समझने तथा समझाने में ही व्यतीत हो जाता है। सुहृदयगुणों की बातों में जिस आनंद की प्राप्ति होती है, उसके सामने संसार के सारे सुख फीके पड़ जाते हैं। बालकों की तोतली बोली में, सुंदरियों की प्यारी–प्यारी और मीठी–मीठी बातों में, कवियों की रसीली बातों में और सुंदर वक्ताओं की प्रभावशाली सशक्त बातों में जो आकर्षण होता है, वह सभी के चित को मंत्रमुण्ध कर देता है। जो इनमें प्रभावित नहीं होते वे पशु ही क्यों पत्थर की शिला की भाँति शुष्क तथा कठोर होते हैं। कुते और बिल्ली को कोई खास समझ नहीं होती, लेकिन उन्हें पुचकारने से तथा मीठे शब्द बोलने से वे प्रेम प्रदर्शित करने लग जाते हैं। फिर वह मनुष्य ही कैसा है जिसके मन पर दूसरों की बातों का प्रभाव न हो।

लेखक मिश्र जी कहते हैं कि आजकल के भारत के अनेक कुपुत्रों ने यह तरीका अपनाया हुआ है कि आदमी की जुबान तथा गाड़ी का पहिया तो चलते ही रहते हैं। जिस प्रकार गाड़ी का पहिया स्थिर नहीं रहता, ठीक उसी प्रकार जुबान का स्थिर रहना या बात का पक्का होना आवश्यक नहीं है। यह कथन उन्हीं स्वार्थी लोगों का है जिनके लिए जाति, देश तथा संबंधों का कोई महत्त्व नहीं होता। ऐसे लोगों की जो बात है कल ही वह स्वार्थवश मालिक के मन के अनुसार बदलने में तनिक भी देर नहीं लगाते। मिश्र जी आगे बताते हैं कि किसी महान उद्देश्य की साधना या समय आने पर बात के रंग–ढंग या कहने का तरीका बदल लेने में किसी नियम का उल्लंघन नहीं है। यदि बात बदल लेने से है तो कोई नियम विरुद्ध कार्य नहीं है। हमें स्वार्थ या पापी पेट को भरने के लिए कभी भी बात नहीं मानव जाति की भलाई होती है, देश का कल्याण होता है या प्रेम – प्रसंग में प्रेमी –प्रेमिका का हित छिपा बदलनी चाहिए।

5.4.1 बात निबंध का उदेश्य

यदि हम वैद्य होते तो कफ और पित के सहवर्ती बात की व्याख्या करते तथा भूगोलवेता होते तो किसी देश के जल बात का वर्णन करते। किंतु इन दोनों विषयों में हम एक बात कहने का भी प्रयोजन नहीं है। इससे केवल उसी बात के ऊपर दो चार बात लिखते है जो हमार सम्भाषण के समय मुख से निकल–निकल के परस्पर हृदयस्थ भाव प्रकाशित करती रहती है। सच पूछिए तो इस बात की भी क्या बात है जिसके प्रभाव से मानव जाति समस्त जीवधारियों की शिरोमणि (अशरफुल मखलूकात) कहलाती है। शुकसारिकादि पक्षी केवल थोड़ी सी समझने योग्य बातें उच्चारित कर सकते हैं इसी से अन्य नभचारियों की अपेक्षा आद्रित समझे जाते हैं। फिर कौन मान लेगा कि बात की बड़ी बात है। हाँ, बात की बात इतनी बड़ी है कि परमात्मा को सब लोग निराकार कहते हैं तो भी इसका संबंध उसके साथ लगाए रहते हैं। वेद ईश्वर का वचन है, कुरआनशरीफ कलामुल्लाह है, होली बाइबिल वर्ड आफ गाड है यह वचन, कलाम और वर्ड बात ही के पर्याय हैं सो प्रत्यक्ष में मुख के बिना स्थिति नहीं कर सकती। पर बात की महिमा के अनुरोध से सभी धर्मावलंबियों ने 'बिन बानी वक्त बड़ योगी' वाली बात मान रखी है। यदि कोई न माने तो लाखों बातें बना के मनाने पर कटिबद्ध रहते हैं।

यहाँ तक कि प्रेम सिद्धांती लोग निरवयव नाम से मुँह बिचकावेंगे। 'अपाणिपादो जवनो गृहीता इत्यादि पर हठ करने वाले को यह कहके बात में उड़ावेंगे कि "हम लँगडे लूले ईश्वर को नहीं मान सकते। हमारा प्यारा तो कोटि काम सुंदर श्याम बरण विशिष्ट है। 'निराकार शब्द का अर्थ श्री शालिग्राम शिला है जो उसकी स्यामता को द्योतन करती है अथवा योगाभ्यास का आरंभ करने वाले को आँखें मूँदने पर जो कुछ पहिले दिखाई देता है वह निराकार अर्थात् बिलकुल काला रंग है। सिद्धांत यह कि रंग रूप रहित को सब रंग रंजित एवं अनेक रूप सहित ठहरावेंगे किंतु कानों अथवा प्रानों वा दोनों को प्रेम रस से सिंचित करने वाली उसकी मधुर मनोहर बातों के मजे से अपने को वंचित न रहने देंगे।

जब परमेश्वर तक बात का प्रभाव पहुँचा हआ है तो हमारी कौन बात रही शीर्ष पर रोगों के तो "गात माहिं बात जाएँ करामात है।' नाना शास्त्र, फराण, इतिहास, काव्य, कोश इत्यादि सब बात ही जाएं हैं जिनके मध्य एक – एक ऐसी पाई जाती है जो मन, बुद्धि, चित को अपूर्व दशा में ले जाने वाली अथच लोक परलोक में सब बात बनाने वाली है। यद्यपि बाल का कोई रूप नहीं बतला सकता कि कैसी है पर बुद्धि दौड़ाइए तो ईश्वर की भाँति इसके भी अगणित ही रूप पाइएगा।

बड़ी बात, छोटी बात, सीधी बात, टेढ़ी बात, खरी बात, खोटी बात, मीठी बात, कड़वी बात, भली बात, बुरी बात, सुहाली बात, लगती बात इत्यादि सब बात ही तो है ? बात के काम भी इसी भाँति अनेक देखने में आते हैं। प्रीति बैर, सुख दुःख श्रद्धा घृणा, उत्साह अनुत्साहादि जितनी उत्तमता और सहजतया बाल के द्वारा विदित हो सकते हैं दूसरी रीति से वैसी सुविधा ही नहीं। घर बैठे लाखों कोस का समाचार मुख और लेखनी से निर्गत बात ही बतला सकती है। डाकखाने अथवा तारघर के सारे से बात की बात में चाहे जहां की जो बात हो जान सकते हैं। अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात उखड़ती है।

हमारे तम्हारे भी सभी काम बात पर निर्भर करते है – ''बातहि हाथी पाइए, बात्तहि हाथी पाँव।'' बात ही से पराए अपने और अपने पनाए हो जाते हैं। मक्खीचूस उदार तथा उदार स्वल्पव्ययी, काफरुष युद्घोत्साही एवं युद्धप्रिय शांतिशील, कुमार्गी सुपथगामी अथच सुपंथी कुराही इत्यादि बन जाते है। बात का तत्व समझना हर एक का काम नहीं है और दूसरों की समझ पर आधिपत्य जमाने योग्य बात बढ़ सकता भी ऐसों वैसों का साध्य नहीं है। बड़े – बड़े विज्ञवरों तथा महा–महा कवीश्वरों के जीवन बात ही के समझने समझाने में व्यतीत हो जाते हैं। सहृदयगण की बात के आनंद के आगे सारे संसार तुच्छ जंचता है। बालकों की तोतली बातें, सुंदरियों की मीठी–

मीठी, प्यारी–प्यारी बातें, सत्कवियों की रसीली बातें, सुवक्ताओं की प्रभावशाली बातें जिसके जी को और का और न कर दें उसे पशु नहीं पाषाण खण्ड कहना चाहिए। क्योंकि कुते, बिल्ली आदि को विशेष समझ नहीं होती तो भी पुचकार के 'तू तू' 'पूसौ, पूसी' इत्यादि बातें के दो तो भावार्थ समझ के यथा सामर्थ्य स्नेह प्रदर्शन करने लगते हैं। फिर वह मनुष्य कैसा जिसके चित्त पर दूसरे हृदयवान की बात का असर न हो।

बात वह अदणीय है कि भलेमानस बात और बाप को एक समझते हैं। हाथी के दांत की भांति उनके मुख से एक बार कई बात निकल आने पर फिर कदापि नहीं पलट सकती। हमारे परम पूजनीय आर्यगण अपनी बात का इतना पक्ष करते थे कि "तन तिय तनय धाम धन धरनी। सत्यसंध कहुँ तून सम बरनी।'' अथच "प्रानन ते सुत अधिक है सुत ते अधिक परान। ते दूनी दसरथ तजे वचन न दीन्हीं जान।'' इत्यादि उनकी अक्षसंवद्धा कीर्ति सदा संसार पटि्टका पर सोने के अक्षरों से लिखी रहेगी। पर आजकल के बहुतेरे भारत कुपुत्रों ने यह ढंग पकड़ रखा है कि 'मर्द की जवान (बात का उदय स्थान) और गाड़ी का पहिया चलता ही फिरता रहता है।

आज और बात है कल ही स्वार्थाधता के बंश हजूरों की मरजी के मुवाफिक दूसरी बातें हो जाने में तनिक भी विलंब की संभावना नहीं है। यद्यपि कभी – कभी अवसर पड़ने पर बात के अंश का कुछ रंग ढंग परिवर्तित कर लेना नीति विरुद्ध नहीं है, पर कब? जात्योपकार, देशोद्धार, प्रेम प्रचार आदि के समय, न कि पापी पेट के लिए। एक हम लोग हैं जिन्हें आर्यकुलरत्नों के अनुगमन की सामर्थ्य नहीं है। किंतु हिंदुस्तानियों के नाम पर कलंक लगाने वालों के भी सहभागी बनने में घिन लगती है।

इससे यह रीति अंगीकार कर रखी है कि चाहे कोई बड़ा बतकहा अर्थात् बातूनी कहै चाहे यह समझे कि बात कहने का भी शडर नहीं है किंतु अपनी मति अनुसार ऐसी बातें बनाते रहना चाहिए जिनमें कोई न कोई, किसी न किसी के वास्तविक हित की बात निकलती रहे। पर खेद है कि हमारी बातें सुनने वाले उँगलियों ही पर गिनने भर को हैं। इससे ''बात बात में वात'' निकालने का उत्साह नहीं होता। अपने जी को श्क्या बने बात जहाँ बात बनाए न बने इत्यादि विदग्धालापों की लेखनी से निकली हुई बातें सुना के कुछ फुसला लेते हैं और बिन बात की बात को बात का बतंगड़ समझ के बहत बात बढ़ाने से हाथ समेट लेना ही समझते हैं कि अच्छी बात है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'बात' निबंध के लेखक कौन हैं?
2. मिश्र जी भारत के कुपुत्रों द्वारा किस तरीके को अपनाने की बात करते हैं?

5.5 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु के व्यक्तित्व् से अत्यधिक प्रभावित थे और उन्हें अपना गुरू मानते थे। उनकी जैसी व्यावहारिक भाषा – शैली अपनाकर मिश्र जी ने अनेक मौलिक एवं अद्भुत रचनाएं लिखी है तथा ब्राह्मण और हिन्दुस्तान नामक पत्रिकाओं का भी संपादन किया। मिश्र जी ने साहित्यिक जीवन का प्रारंभ ख्याल और लावनियों से किया था।

5.6 कठिन शब्दावली

यदां–कदा – जब –जब, जब कभी

अभिव्यजना – अभिव्यक्ति

पृष्ठभूमि – प्राक्कथन्

5.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. प्रतापनारायण मिश्र
2. सन् 1856

अभ्यास प्रश्न–2

1. प्रतापनारायण मिश्र
2. आदमी की जुबान तथा गाड़ी के पहिए चलते रहते हैं।

5.8 संदर्भित पुस्तकें

1. प्रतापनारायण मिश्र, बात, संजय प्रकाशन, दिल्ली।
2. बच्चन सिंह, साहित्यिक निबंध, आधुनिक दृष्टिकोण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

5.9 सात्रिक प्रश्न

1. प्रतापनारायण मिश्र के जीवन एवं साहित्य पर प्रकाश डालिए।
2. बात निबंध का प्रतिपाद्य एवं उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–6
रामविलास शर्मा जीवन और साहित्य

संरचना

6.1 भूमिका
6.2 उद्देश्य
6.3 रामविलास शर्मा जीवन और साहित्य
6.3.1 जीवन परिचय
6.3.2 साहित्यिक परिचय
स्वयं आकलन प्रश्न–1
6.4 'छायावाद और रहस्यवाद' निबंध का मूल स्वरूप
स्वयं आकलन प्रश्न–2
6.5 सारांश
6.6 कठिन शब्दावली
6.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
6.8 संदर्भित पुस्तकें
6.9 सात्रिक प्रश्न

6.1 भूमिका

इकाई पांच में हमने प्रतापनारायण मिश्र के जीवन परिचय और उनके द्वारा रचित निबंध 'बात' का अध्ययन किया। इकाई छः में हम रामविलास शर्मा के जीवन और साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। रामविलास शर्मा द्वारा रचित निबंध 'छायावाद और रहस्यवाद' के सार एवं उद्देश्य का भी अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इकाई छः का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. रामविलास शर्मा का जन्म कब और कहां हुआ?
2. रामविलास शर्मा का साहित्यिक परिचिय क्या है ?
3. रामविलास शर्मा की भाषा शैली किस प्रकार की है?
4. 'छायावाद और रहस्यवाद' निबंध का सार क्या है?

6.3 रामविलास शर्मा जीवन और साहित्य

6.3.1 जीवन परिचय

प्रखर आलोचक, चिंतक, निबंधकार और आरभ में उदीयमान कवि रहे रामविलास शर्मा का जन्म 10 अक्टूबर 1912 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के ऊंचगांव सानी में हुआ। अंग्रेजी साहित्य में उच्च्य शिक्षा के साथ वह बतौर प्राध्यापक कार्यरत रहे और 1974 में कन्हैयालाल माणिक मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा के निदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए। प्राध्यापन के पेशे के पहले से और इसके समानांतर और फिर सेवानिवृत्ति के बाद उनकी साहित्यिक यात्रा अपनी पूरी प्रखरता से जारी रही। 'तार सप्तक' में संभावनाशील कवि के रूप में शामिल किए गए रामविलास शर्मा ने अपनी कविता–अभिरचि और कविता–यात्रा की संभावना के संकेत आरंभ में ही दे दिए

थे जब 'तार सप्तक' के वक्तव्य में यह कहा था – "कविता लिखने की ओर मेरी रुचि बराबर रही है लेकिन लिखा है मैंने कम। जो व्यक्ति एक विकासोन्मुख साहित्य की आवश्यकताओं को चिन्हित कर उनके अनुरूप गद्य लिखे, वह कवि हो भी कैसे सकता है ? मेरे बहत से लेख साहित्य के शाश्वत सत्य, वाद – विवादों से पूर्ण हैं। कविता में शाश्वत सत्य की मैंने खोज की हो, यह भी दिल पर हाथ रखकर नहीं कह सकता।.. पता नहीं कविता पढ़कर अपरिचित मित्र मेरे बारे में किस तरह की कल्पना करेंगे। में इस बात का आश्वासन देना चाहता हूँ: जैसे वे मेरी कविताओं के बारे में सीरियस नहीं हैं, वेसे में भी नहीं हूँ।.. आशा है यह प्रकाशन अंतिम होगा। उनके दो कविता –संग्रह 'रूपतरंग' (1956) और 'सदियों के सोए जाग उठे' (1988) प्रकाशित हैं। रूपतरंग को 1990 में 'रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि' के रूप में प्रकाशित किया गया जिसके पहले भाग में उनकी कविताएँ और दूसरे भाग में उनके द्वारा अनुदित बल्गारिया के विद्रोही कवि निकोला वत्सारोव की कविताएँ हैं। तीसरे भाग में 'प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि' शीर्षक के अंतर्गत निबंध रखे गए हैं। 1988 में प्रकाशित 'सदियों के सोए जाग उठे' काव्य –संग्रह में 1945–47 में उनके द्वारा रचित राजनीतिक कविताओं का संकलन किया गया। उनकी कविता – यात्रा संक्षिप्त रही लेकिन उनका काव्य – अनुभव भावस्रोत के रूप में आलोचक के साथ हमेशा खड़ा रहा। उन्होंने स्वयं कहा– 'मेरे समस्त विवेचनात्मक गद्य के भावस्रोत यहीं हैं। जो लोग पूछते हैं, कविता लिखना क्यों छोड़ दिया, उन्हें मैं कह सकता हँ, अपनी कविता की व्याख्या ही तो करता रहा हूँ।' आलोचना के क्षेत्र में उनकी अद्वितीय उपस्थिति रही है जहाँ उनकी पचास से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनमें प्रगति और परंपरा (1949), साहित्य और संस्कृति (1949), प्रेमचंद और उनका युग (1952), प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ (1954), आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना (1955), विराम चिह्न (1957), आस्था और सौंदर्य (1961), भाषा और समाज (1961), निराला की साहित्य साधना (तीन खंड 1969, 72, 76), भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा (1975), महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण (1977), नई कविता और अस्तित्ववाद (1978), परंपरा का मूल्यांकन (1981), भाषा, युगबोध और कविता (1981), कथा विवेचना और गद्यशिल्प (1982), मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य (1984), भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ (1985), भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी (तीन खंडों 1979–81), भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद (दो खंडों में 1982), स्वाधीनता संग्राम : बदलते परिप्रेक्षय (1992), मार्क्स, त्रोत्स्की और एशियाई समाज (1986), मार्क्स और पिछड़े हुए समाज (1986), भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद (1992), पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद (1994), भारतीय नवजागरण और यूरोप (1996), इतिहास दर्शन (1995), भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश (दो खंडों में 1999) आदि प्रमुख हैं। अपनी धरती अपने लोग तीन खंड़ों में प्रकाशित उनका आत्मजीवन है। 'चार दिन' उनका एकमात्र उपन्यास है। इसके अतिरिक्त उनके साक्षात्कार 'मेरे साक्षात्कार' शीर्षक से और पत्र – संवाद 'मित्र –संवाद (केदारनाथ अग्रवाल से पत्र–व्यवहार) और 'अत्र कुशल तत्रास्तु' (अमृतलाल नागर से पत्र – व्यवहार) शीर्षक से प्रकाशित हैं। वह साहित्य अकादमी पुरस्कार, श्लाका सम्मान, भारत–भारती पुरस्कार, व्यास सम्मान, शताब्दी सम्मान आदि से नवाजे गए।

6.3.2 साहित्यिक परिचय

ग्रामीण पृष्ठभूमि, तुलसी आदि भक्त कवियों से साहित्य का संस्कार, राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रवादी विचारधारा, मार्क्सवाद और समाजवाद उनके निबंधों में दृष्टिगोचर होती हैं। वैसे जातीय शब्द से उनका अर्थ प्रथा से नहीं, बल्कि राष्ट्रीयता से है। उनके निबंधों में वैचारिकता का पुट भी अवलोकनीय हैं। विचारों का गंभीर और सुव्यवस्थित रूप भी डॉ. शर्मा के निबंधों में दिखाई देता है। 'जातीय भाषा के रूप में हिन्दी का प्रसार' उनका श्रेष्ठ निबंध है जिसमें हिन्दी उर्दू की एकता पर बल देते हुए इनकी रक्षा पर बल दिया है। उनका कहना है –""जिस दिन यह विशाल हिन्दी प्रदेश एक होकर एक नए स्वाधीन जनजीवन का निर्माण करेगा, उस दिन इसकी संस्कृति एशिया का मुख उज्ज्वल करेगी। किसानों और मजदूरों की एकता तो जनता की धूरी है, वह उन्हें

निकट लाएगी। हिन्दी और उर्दू के लेखकों को इस जनता के हितों को ध्यान में रखकर अपनी जातीय परंपरा के अनुसार लोकप्रिय भाषा और जनवादी साहित्य के विकास में आगे बढ़ना चाहिए।' डॉ. शर्मा के निबंधों में कवि की भावुकता, लालित्य, कल्पना की उड़ान नहीं मिलती बल्कि उनमें उनका आलोचक और गंभीर चिंतक, बहुपि विद्वान और तर्कशील व्यक्तित्व ही अधिक झाँकता है। उन्होंने अपने निबंधों में भाषा, दर्शन, इतिहास, राजनीति आदि का भी गहरा अध्ययन किया है। डॉ. शिवकुमार शर्मा का कहना है –"प्रगतिवादी निबंधकारों में डॉ. रामविलास शर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। वैचारिक दृष्टि से आप प्रगतिवादी हैं किन्तु इन्होंने भाषा, साहित्य, संस्कृति, समाज एवं जीवन आदि से संबंध विषयों पर नानाविध निबंधों की रचना की है। इनके प्रकाशित ग्रंथ हैं–प्रगति और परंपरा, संस्कृति और साहित्य, भाषा साहित्य और संस्कृति, आास्था और सौंदर्य, विराम चिह्न, मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य परंपरा का मूल्यांकन, मानव सभ्यता का विकास, भाषा युग बोध और कविता तथा विवेचना और गद्य शिल्प, भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद तथा मार्क्स और पिछड़े हुए। लेखक के निजी कथानुसार –विरामचिह्न इनका सर्वश्रेष्ठ निबंध संग्रह है। इनकी निबंध शैली में स्वच्छता, प्रखरता तथा वैचारिक सम्पन्नता है। इन्होंने अधिकतर विवरण पद्धति और समाज तर्कशैली का प्रयोग किया है। शब्द चयन की दृष्टि से ये व्यावहारिक शब्दावली को अपनाते हैं जिससे सदा प्रवाह बना रहता है।''

डॉ. शर्मा ने अपने निबंधों में जन (आम) भाषा का अधिक प्रयोग किया है। भाषा पर हर व्यक्ति का अधिकार है। इसलिए वे अपने निबंधों में आम भाषा का अधिक से अधिक प्रयोग करते थे। उनके मतानुसार आम व्यक्ति साधारण भाषा के द्वारा ही अपनी भावनाओं एवं विचारों को व्यक्त करता है। उन्होंने उर्दू –मिश्रित हिन्दी का प्रयोग किया है तथा इसमें कहीं भी जटिलता, क्लिष्टता या दुर्बोधता दृष्टिगोचर नहीं होती। डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त का कहना है–"रामविलास जी की भाषा सीधी और सहज है। वह जटिल से जटिल बात को सुलझाकर कहते हैं। अतः उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है, पर न तो इनके प्रति आग्रह है और न इनसे परहेज अधिकतर शब्दावली ऐसी है जो शिक्षित लोगों में प्रचलित है और समझने में पाठकों को अधिक कठिनाई नहीं होती। यथा अवसर वह दूसरी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। ऐसा करते समय वह इस बात का ध्यान रखते हैं कि इनके प्रयोग से हिन्दी की स्वाभाविक प्रकृति को किसी प्रकार की ठेस न पहुँचे। वास्तव में शर्मा जी की भाषा इतनी सहज–सरल और सुबोध है कि पाठकों को उसमें प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है।

डॉ. शर्मा की भाषा इतनी सरल और सहज है कि पाठको को अनायास ही समझ में आ जाती है। पाठकों को भाषाशैली समझने के लिए उसमें प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। डॉ. राजेश्वर अर्नल शर्मा जी की भाषा पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए लिखते हैं– वे बात तो बहुत लंबे वाक्यों या जटिल शब्दावली में नहीं करते। यदि वाक्य लबे होते भी हैं, तो जटिल तो वे कदापि नहीं होते। उनकी भाषा अधिकतर ऐसी हैं जो पाठकों को अनायास समझ में आती है। वैसे उनके निबंध लेखन पर उनका आलोचक रूप हमेशा हावी रहता है। इसलिए वे अपनी बात को परे बल और प्रमाण के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी भाषा वाद–विवाद की भाषा की तरह है। उन्होंने अपने निबंधों में अभिधा शब्द–शक्ति; इंद्रिय भाव व शाब्दिक बिम्बों; प्रसाद एवं माधुर्य गुणों का खुलकर प्रयोग किया है। शैली के अंतर्गत विश्लेषणात्मक विचारात्मक, वर्णनात्मक, विवेचनात्मक शैलियों का प्रयोग किया है।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि डॉ. रामविलास शर्मा महत्वपूर्ण विचारक और आलोचक निबंधों की रचना की है। प्रायः उनके निबंधों में विचार तथा भाषा के स्तर पर एक रचनाकार की के साथ – साथ डॉ. शर्मा जी एक सफल निबंधकार हैं। उन्होंने विचार प्रधान एवं व्यक्ति व्यंजक जीवंतता और सहृदयता मिलती है। स्पष्ट कथन, विचारों की गंभीरता तथा भाषा की सहजता उनकी निबंध–शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। राष्ट्र–प्रेम, व्यंग्यात्मकता, गंभीर चिंतन, राष्ट्रवादी विचारधारा, मार्क्सवाद और समाजवाद, आमजन की भाषा आदि विशेषताएँ उनके निबंधों में दृष्टिगोचर होती हैं। उन्होंने अपने उग्र और उत्तेजनापूर्ण निबंधों में हिन्दी समीक्षा को एक गति प्रदान की है।

भाषा शैली

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध आलोचक, निबंधकार, विचारक एवम् कवि हैं। 'छायावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उनका प्रमुख निबंध है जो संस्कृति और साहित्य' निबंध संग्रह से लिया गया है। प्रायः उनके सभी निबंधों में विचार और भाषा के स्तर पर एक रचनाकार की जीवंतता और सह्रदयता मिलती है। स्पष्ट वाचन विचारों की गंभीरता तथा भाषा की सहजता उनकी निबंध – शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। वे आचार्य आलोचक के रूप में स्थापित होते हैं जो भाषा, साहित्य एवम् समाज को एक रामचन्द्र शुक्ल के बाद एक ऐसे साथ रखकर मूल्यांकन करते हैं।

प्रस्तुत निबंध की भाषा साहित्यिक खड़ी बोली हिन्दी है। उन्होंने सर्वथा आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा इतनी सहज, सरल और स्वाभाविक है कि इसमें कहीं भी क्लिष्ट्ता, दर्बोधता, जटिलता या दुरूहता दृष्टिगोचर नहीं होती। उन्होंने उर्दू –मिश्रित हिन्दी का प्रयोग किया है तथा उर्दू के प्रति भी उन्होंने गहरी आत्मीयता और लगाय प्रदर्शित किया है। डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त ने डॉ. शर्मा के निबंधों की भाषा – शैली पर टिप्पणी करते हुए लिखा है – "डॉ. शर्मा के निबंध विचार प्रधान निबंध हैं। उनमें विचारों की प्रधानता तो है, पर विचारों का उलझाव नहीं है। वह अपनी बात को सुलझे हुए रूप में कहते हैं। अतः उनके निबंधों में न तो जटिल नुमाह शब्दावली है ओर न बहुत लम्बे वाक्य। प्रायः छोटे सरल या संयुक्त वाक्यों का प्रयोग हुआ है। विषय के आग्रह के कारण गंभीर और जटिल विचारों के कारण जहां वाक्य लम्बे भी हो गाए हैं वहां भी बात को समझने में कठिनाई नहीं होती। वाक्य छोटे –छोटे, संक्षिप्त, चुटीले तथा प्रभावी है तथा प्रसंगानुकूल वाक्य भी बड़े – बड़े हैं। उनके शब्द चयन में तो तत्सम शब्दों के प्रति लगाव या आत्सीयता है। और न उनसे अलगाव बल्कि वे ऐसे शब्दों का प्रयोग करते है जिनको लोग सहज प्रकार से समझ सकें। दूसरी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करने में वे न तो परहेज करते हैं आर न झिझकत है। बल्कि इतना जरूर ध्यान रखते हैं कि उससे मूल भाषा हिन्दी की स्वाभाविक प्रकृति विकृत न हो।"

आलोच्य निबंध में डॉ. शर्मा ने तत्सम व तद्भव शब्द का प्रयाग बहुतायत मात्रा में किया है। कछ तत्सम शब्द हैं – सूक्ष्म, दुरूहता, क्रम, संपूर्ण प्रतिबिंबित, चरितार्थ, अहम्, अस्तु, श्रृंखला, उदात्त, संभवतः, इंगित, चाटुकार, उत्कण्ठा, सृष्टि, शाश्वत, निष्कंलुप, प्रशस्त, उपासना, लांछित, सर्वागीण अद्वितीय, न्यून, अथाह, अंतः अतिशयता आदि। कहीं – कहीं उन्होंने उर्दू व विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है जैसे रोमांटिक, स्यूर रिअलिस्ट आदि। उनकी भाषा में सहजता, सरलता, स्पष्टता व स्वाभाविकता आदि गुण हैं और वह सर्वथा व्याकरण सम्मत है। उनकी भाषा प्रसंगान्कुल, प्रौढ़, परिमार्जित एवं साहित्यिक बन जाती है। अवसरानुकुल सीधी, सरल व सहज है। उसमें व्याकरणानुमोदित सक्षम एवं सशक्त शब्दावली का प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा शैली इतनी सुगम है कि पाठक को उस हेतु प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। उनकी प्रौढ, परिमार्जित एवं साहित्यिक भाषा का एक उदाहरण देखिए–

''भाषा क्षेत्र के इस ऊहापोह की छाया हम व्यंजना के माध्यम में भी देख सकते हैं। रीतिकाल के इने–गिने छंदों की राह छोड़कर नया कवि बहु गीत– रूपों की प्रशस्त भूमि पर आगे आता है। आत्मनिवेदन के लिए वह सुकोमल पदों वाले गीतों को अपनाता है। उदात्त भावों की व्यंजना के लिए छंदों के नए–नए समन्वय प्रस्तुत करता है। मुक्त छंद में वह नयी गति, नयी लय, नये प्रवाह का परिचय देता है, परंतु वह स्वाधीनता कभी–कभी निरंकुश स्वच्छंदता में बदल जाती है। नये प्रतीकों का प्रयोग दुरुहता का रूप ले लेता हैं। व्यक्तित्व की व्यंजना साधारणों पाठकों के प्रति अवज्ञ का रूप धारण कर लेती है। रोमांटिक कविता के पतनकाल में "स्यूर – रिअलिस्ट' (Sure-Realist) परोक्षवादी कविता की यह गति होती है।"

उपर्यक्त पक्तियों में शाब्दिक एवं भाव – बिंबों का भी प्रयोग हुआ है। डॉ. शर्मा ने आलोच्य निबंध में प्रसाद व माधुर्य गुण का प्रयोग किया है लेकिन प्रधानता प्रसाद गुण की है। शब्द शक्तियों में अभिधा शब्द शक्ति की बाहुलता है। वे बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करते हुए ऐसी भाषा में निबंध लिखते हैं जो सर्वथा सरल, सहज व सुबोध हो परंतु साथ ही प्रौढ़, परिमार्जित एवं साहित्यिक भी हो। मुहावरों, लोकोक्तियों, अलंकारों का प्रयोग उनकी भाषा में न के बराबर होता है। डॉ. शर्मा का भाषा के बारे में कहना है –"भाषा एक हथियार हैं, जिससे हम प्रतिगामी शत्रुओं पर प्रहार कर सकते हैं। क्रांति के लिए आवश्यक है अपने शत्रुओं की शक्तियों को पहचानना।'' उनके निबंधों में विचारात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक विवरणात्मक आदि शैलियों का प्रयोग हआ है। वे कहीं भी भाषा के माध्यम से अपनी विद्धवत्ता का रौब नहीं जमाते। उनकी निबंध शैली में स्वच्छता, प्रखरता तथा वैचारिक सम्पन्नता है। शब्द चयन की दृष्टि से वे व्यावहारिक शब्दावली की अपनाते है ज़िसमें सदा प्रवाह रहता है। भारतीय साहित्य एवं भाषा को उनके निबंधों में प्रबल रूप से समर्थ मिलता है। व्यंग्यात्मक शैली से सीधे और प्रस्वर कटाक्ष करने में भी उनका चिंतन उभर आता है।

अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि डॉ. रामविलास शर्मा जी की भाषा सीधी और सहज है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है, पर न तो इनके प्रति अग्रह है और न इनसे परहेज। उनकी अधिकतर शब्दावली ऐसी है जो शिक्षित वर्ग में प्रचलित है तथा पाठकों को समझने में अधिक कठिनाई नहीं होती। वे दूसरी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते हुए इस बात का ध्यान रखते हैं कि इनके प्रयोग से हिन्दी की स्वाभाविक प्रकृति को किस प्रकार की ठेस न पहुँचे।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. रामविलास शर्मा किस विषय में प्राध्यापक रहे हैं?
2. 'नई कविता और अस्तित्ववाद' का रचनाकाल क्या है?

6.4 छायावाद और रहस्यवाद निबंध का मूलस्वरूप

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय की इस पस्तक के 'प्राकथन' में श्री नन्ददुलारे जी वाजपेयी ने 'अक्लमन्दों को इशारा काफी वाली नीति बर्ती है। उन्होंने लिखा है – 'पांडेयजी की गणना ऐसे आलोचकों में की जाएगी जिनमें विश्लेषण और व्याख्या की अपेक्षा अनुभूति और भावग्रहण की नैसर्गिक शक्ति हुआ करती है। तर्कपूर्ण व्याख्या की कमी के कारण आलोचना भावुकतापर्ण अपने आप हो जाती है। पांडेयजी तर्क का सहारा न लेते हों, सो बात नहीं हैं, वह तर्क खुब करते हैं परन्त अपनी भावुकता में खोये हुए से। आवेश के कारण उनके शब्द एक – दूसरे से टकराने लगते हैं और आलोचक की बुद्धि सानुप्रास शब्द –सौन्दर्य में खो जाती है।

भाषा के कुछ उदाहरण देना उचित होगा।

'अनुभूति में प्राणी की प्राण स्थिति सजलता और प्रज्ञाप्रस्थिति कोमलता अनुप्राणित रहती है, वह मानव – जीवन के अमरत्व प्रद क्षणिक क्षणों की सबसे सुन्दर एवं कमनीय तथा सात्विक वाणी है।' पृ. 6–7

'प्रेम की भावना अपने सूक्ष्म शरीर में अध्यात्मिकता की चुनरी पहिनकर अन्त में अपने चिर सुन्दर से प्रेम करने लगती है किन्तु यह रहस्यवाद का विषय है छायावाद का नहीं।' पृष्ठ 36

'यों तो अनेक वादों का प्रचार तथा प्रसार आज अनधिकारी लोग अपनी पशु प्रवृत्ति की कलित क्रीड़ा के प्रदर्शन के लिए कर रहे हैं किन्तु हमें यहाँ पर नये मनगढ़वाद प्रगतिवाद पर विचार करना है।' पृ० 108

यह पशु प्रवृत्ति की कलित – क्रीड़ावाली अलोचना पाडेयजी की अपनी नहीं है इसमें प्रथम सिद्धि प्राप्त करने वाले श्री इलाचन्द्र जोशी हैं।

अपने पहले निबन्ध 'साहित्य की सार्थकता' में पांडेयजी कला का उद्‌गम मनुष्य के भीतर छिपे, और अभिव्यक्ति के लिये व्याकुल, सत्य के एक रहस्यमय अंश को बताते हैं। अनुभूति से मनुष्य कलाकार बनता है। अनुभति और कल्पना को पांडेयजी पर्यायवाची शब्द मान लेते हैं। सत्य और कल्पना में वह प्रायः विभेद नहीं करते। यदि हम कहें कि पाड़ेयजी काल्पनिक सत्य को ही वास्तविक सत्य मानते हैं, तो उनके साथ अन्याय न होगा। अपने 'सिंहावलोकन' में वह कहते हैं– 'जिस वस्तु का अस्तित्व होता है उसी की कल्पना भी हो सकती है अन्यथा नहीं। कल्पना में केवल सत्य ही नहीं वरन् वह भी आ जाता हैं जो सत्य हो सकता है।' इन दोनों वाक्यों में थोड़ा – सा विरोध। पहले से मालूम होता है कि हम उसी वस्तु की कल्पना कर सकते हैं जो 'है'; दूसरे से कल्पना में वे बातें भी आती हैं जो 'हो सकती है। इस कल्पना को ही पाडेयजी काव्य का आधार मानते हैं; उसे ही वह सत्य समझते हैं। पांडेयजी के अनुसार आकाश की ओर ताकना सच्चे कवि का काम है; 'पृथ्वी पर चींटी, मटा, पशु सभी रहते तथा चलते हैं किन्तु अनन्त आकाश की ओर दृष्टिपात करना ही मानव की महानता है। महानता के साथ गड्ड़े में गिरने की भी संभावना. है, जैसे आकाश के नक्षत्र देखता ज्योतिषी दूसरों का भाग्य पढ़ते समय अपना भूल गया और कुएं में गिर पड़ा।

पांडेयजी के अनुसार सृष्टि रचना में कोई प्रयोजन नहीं है सृष्टि में भी तर्क का अभाव है। 'तर्क तो सामंजस्य से दूर विश्रृहखलता का ही पोषक है। यह एक विचित्र तक है, शायद स्वयं भी विश्रृहखलता का पोषक। जहाँ तर्क के परे बातचीत होती है, वहाँ आलोचक और पाठक दोनों के लिये कठिनाई होती है।

पाड़ेयजी ने जीवन के आत्मिक तथा सात्विक तत्वीं पर बहुत कुछ कहा है; इन सब तत्वों की परिणति 'कल्पना' में होती है। पाड़ेयजी दिखाना चाहते हैं कि छायावाद आर छायावाद ही जीवन के वास्तविक सत्य का दर्शन कराता है परंतु उनका ध्यान वास्तव में एक काल्पनिक सत्य की और है रहता है। वह अपने पहले लेख में कहते हैं, 'मनुष्य पार्थिव आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सुख के साधनों के होते हुए भी जीवन से कब जाता है। इसे आत्मिक असंतुष्टि कहते हैं और उसका समाधान कलात्मक सृष्टि' में बताते हैं। इस प्रकार की आत्मिक संतुष्टि बहुधा उन्हीं को होती हैं जिनको पार्थिव सुखों की करमी नहीं होती और जिन पर स्विनबन का वचन लागू होता है–"Satiety frorm pleasure leads to perversity" यह प्रसन्नता की बात है कि पांडेयजी छायावाद के अंतर्गत हिंदी का बहुत थोड़ा साहित्य ला सके हैं। पुराने कवियों में भी उन्हें स्त्री – भक्तों से अधिक संतोष मिला है। रहस्यवाद की माधर्य–भावना स्त्रैण है। पांड़ेयजी कहते हैं– 'माधुर्य भाव की जैसी व्यंजना प्राचीन काल से आज तक स्त्री–भक्तों द्वारा हुई है वैसी पुरुषों द्वारा नहीं। पुरुषों के मुंह से वह एक नाटक–प्रणाली मात्र है, प्रतीत होती हैं। इस प्रकार पुरुष तो जन्म से ही रहस्यवादी होने के योग्य है; फिर भी जो हो जाते हैं, वे धन्य हैं। रहस्यवाद की मूल भावना आत्म–समर्पण है और वह नारी का गुण है; – 'शायद पुरुषों में, वैसा स्वाभाविक भोलापन, वैसी सुकुमार कोमलता तथा प्रेम की वैसी मार्मिकता नहीं आ सकती क्योंकि समर्पण नारी ही की मूल प्रकृति है। इस प्रकार नारी के समर्पण में जीवन के सात्विक, आत्मिक, काल्पनिक आदि सत्यों का अन्त होता है 'समर्पण आत्मोपलब्धि है। इस नारी की मूल प्रकृति को चाहे जितने बड़े नामों से पुकारा जाये परन्तु वह जीवन का एकांत सत्य नहीं बन सकती; यदि कोई पुरुष यह घोषित करे कि पुरुषार्थ भी सत्य है तो उस पर क्रोध न करना चाहिए। पांडेयजी कहते हैं – 'कछ लोगों की बर्बरता तो इतनी बढ़ गई है कि वे काव्य के कोमल अंगों की निन्दा भी कर बैठते हैं।' अवश्य यह असभ्यता है नारी के प्रति पुरुष की उदार भावना होनी चाहिए; परन्तु इस उदारता से लाभ उठाकर यदि नारीत्व –उपासक नारी को पुरुष का आदर्श बना दें, तो प्रतिक्रिया अवश्यभावी है। इस प्रकार के आदेशों को बार – बार भारतीय कहना भारतीयता का अपमान करना हैं।

पांडेयजी पार्थिव और अपार्थिव का भेद दिखाते हुए अपार्थिव को एक विशेष भावना में सीमित कर देते हैं। 'पार्थिव तथा शारीरिक आवेगों को लेकर संसार में कभी भी महान कार्य नहीं हुए। समर्पण के माधुर्य भाव से कौन से बड़े कार्य हुए हैं? पांडेयजी जिसे अपार्थिव और आत्मिक कहते हैं, उसके अन्तर्गत पुरुषत्व – प्रधान

भावनाएं क्यों नहीं आ सकतीं? कोमलता से ही इतना प्रेम क्यों ? पुरुषता की निन्दा विकास का चिह्न है या ह्रास का? कला और व्यक्तिवाद पर पाड़ेयजी ने जो कुछ लिखा है, उससे उनकी विचारधारा पर और भी प्रकाश पड़ता है। उन्होंने लिखा है – 'हमारे यहां के महर्षियों ने कला को भी व्यक्तिवादी बताया है। (पृ० 15)। और जब महर्षि कह गये है तब व्यक्तिवाद के आगे समाजवाद कैसे चल सकता है? परन्तु इसमें सन्देह है कि महर्षियों ने कला को व्यक्तिवादी बताया है। कला और व्यक्तिवाद का सम्बन्ध दिखाने से 'कला – कला के लिए' वाले सिद्धान्त का अपने आप प्रतिपादन हो जाता है। 'हमें साहित्य का उद्देश्य साहित्य में ही समझना चाहिये। उपयोगिता की सीमा –रेखा में नहीं उपयोगिता का विरोध, साहित्य की दुहाई, आध्यात्मिकता का पोषण – इन सब का अन्त भाग्यवाद में होता है। अपने पहले निबन्ध के अन्त में पांडेयजी ने जिस गीत को अपनी स्वीकृति के साथ उद्धृत किया है, उसका अन्तिम बन्द है –

''मानव भाग्य पटल पर अंकित,
न्याय नियति का जो चिर निश्चत।
धो पायेंगे उसे तनिक भी नेताओं के आँसू के कण ?''

आँसुओं से कुछ न होगा, चाहे वे नेताओं के हों, चाहे कवियों के नेताओं और कवियों दोनों में ही कर्मण्यता चाहिये, वे अपना भाग्य आप बना सकें। छायावाद की वेदना का सम्बन्ध इसी भाग्यवाद और उसके पीछे छिपे हुए व्यक्तिवाद से हैं इस वेदना में विश्व मैत्री ढूंढना भ्रम है। पांडेयजी ने ठीक लिखा है – 'हमारा वर्तमान युग भी पराजित, पराधीन और निराश है, अस्तु इसकी काव्य – कला भी अपनी युग – भावना के अनुकूल अपनी विशेषताओं में सप्राण है।' यदि सप्राण की जगह निष्प्राण कर दिया जाता तो यह उक्ति छायावाद पर आशिक रूप से लागू होती। पांडेयजी देश की निर्धनता का जिक्र करते हुए लिखते हैं, 'हमारी अबला मातृ शक्ति नित्य ही अपमानित हो रही हो, वहाँ के कवियों को रोने के सिवा और क्या सूझ सकता है ?' हमारी आध्यात्मिकता का यही रहस्य है।

डॉ. रामविलास शर्मा आधुनिक हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध आलोचक, निबंधकार, भाषा शास्त्री, इतिहासवेत्ता, विचारक एवं कवि थे। वे एक सफल निबधंकार थे। उनके अधिकांश निबंध 'विराम चिह्न' नामक पुस्तक में संग्रहीत हैं। उन्होंने विचार प्रधान एवं व्यक्त – व्यंजक निबंधों की रचना का है। उनके निबंधों में विचार तथा भाषा के स्तर पर एक रचनाकार की जीवंतता और सहृदयता मिलती है। स्पष्ट वाचन, विचारों की गंभीरता तथा भाषा की सहजता उनकी निबंध– शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। डॉ. रामचन्द्र तिवारी' ने उनके निबंधों की प्रवृत्तियों (विशेषताओं) पर प्रकाश डालते निबंध लेखन की शक्ति और निपुणता भी है। किन्तु उनके जिज्ञासु, मननशील और अध्येता हर लिखा है – "डॉ. रामविलास शर्मा के निबंध मुख्यतः समीक्षात्मक हैं। उनमें आत्मव्यंजक व्यक्तित्व ने आत्मव्यंजना की प्रवृत्ति को दबाए रखा है। अपने समीक्षात्मक निबंधों में डॉ. शर्मा ने साहित्य, सस्कृति, कला, सौंदर्य, इतिहास, परंपरा आदि विषयों के स्वरूप का सैद्धांतिक विवेचन भी किया है और साहित्य की प्रवृत्तियों एवं साहित्यकारों का मूल्यांकन भी। उनकी मान्यताएँ मार्क्सवादी चिंतन से प्रभावित हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार जिन विचारों और भावों से मनुष्य जाति का कल्याण और हित होता है उन्ही के द्वारा मानव – जाति का सच्चा सांस्कृतिक विकास संभव है। डॉ. शर्मा ने अपने निबंधों में इसी दृष्टि से हिंदी जाति के साहित्य का मूल्यांकन किया है।''

डॉ. रामविलास शर्मा अपने निबंधों में मार्क्सवादी दृष्टि से भारतीय संदर्भों का मूल्यांकन करते हैं। परंतु इन मूल्यों पर स्वयं को गौरव करते ही है साथ ही अपने पाठकों को निरंतर बताते है कि भाषा और साहित्य चिंतन की दृष्टि से भारत अत्यन्त प्राचीन राष्ट्र है। ये अंग्रेजों द्वारा लिखवाए गए भारतीय इतिहास को एक षड्यंत्र मानते हैं। भारतीय साहित्य एवं भाषा को उनके निबंधों में प्रबल रूप से समर्थन मिलता है। व्यंग्यात्मक शैली में सीधे

तथा प्रखर कटाक्ष करने में उनका चिंतन उभर आता है। पूँजीपतियों और सामंती भावनाओं का खंडन उन्होंने अपने निबंधों में किया है। उनके निबंधों में न तो भारतेन्दु युग के निबंधकारों की भांति जिन्दादिली, सजीवता और व्यंग्यात्मकता मिलती है और न ही हजारी प्रसाद द्विवेदी व पं. विद्यानिवास मिश्र के निबंधों जैसा लालित्या उनके निबंधों के विशेष गुण है –गंभीरता, वैचारिक निष्ठा तथा अपनी बात को सहज, सरल और सीधे ढंग से अभिव्यक्ति करना। उनके निबंध विचार प्रधान तो हैं परंतु उनमें विचारों का उलझाव नहीं है। इससे पाठक उनके विचारों को सहज रूप से ग्रहण कर लेते हैं।

डॉ. शर्मा ने अपने निबंधों में आवश्यकतानुसार बाह्याडम्बरों, पाखंडों और परंपराओं पर कटु कटाक्ष भी किया है। ये 'जातीय भाषा के रूप हिंदी का प्रसार' निबंध में साम्प्रदायिकता पर कर आक्षेप करते हुए लिखते हैं– साम्प्रदायिकता से फायदा उठाकर पाकिस्तान के शासकों ने वहां की भाषाओं को दबाया और उन पर उर्दू भाषा लाई। हिन्दुस्तान के साम्प्रदायिकों ने कहा कि अब तो उर्दू पाकिस्तान गई और यहाँ उसकी बात करना भी राष्ट्रद्रोह है। राजर्षि टण्डन और महापंडित राहुल ने इस विषैले प्रचार का नेतृत्व किया।" डॉ. रामविलास शर्मा अत्यन्त तीखी, व्यंग्यपूर्ण और सशक्त शैली में निडरता से विषय का प्रतिपादन करने वाले निबंधकारों में विशेष स्थान रखते हैं। उन्होंने साहित्य, कला, संस्कृति, राजनीति आदि विषयों पर अनेक निबंध लिखें हैं जो 'संस्कृति और साहित्य', 'प्रगति और परंपरा', "प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं। तथा 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य' आदि निबंध–संग्रहों में संग्रहीत हैं। वे मार्क्सवादी या प्रगतिवादी विचारधारा के निबंधकार है। उनके निबंधों में यही दृष्टिकोण प्रधान है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'अकलमंदों को इशारा काफी' वाली नीति किसने बरती है?
2. डॉ. रामविलास शर्मा किस दृष्टि से भारतीय संदर्भों का मूल्यांकन करते हैं?

6.5 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि रामविलास शर्मा एक आलोचक, निबंधकार, भाषाशास्त्री, समाजचिंतक और इतिहासवेत्ता रहे हैं। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने कवि और आलोचक के रूप में पदार्पण किया। उनकी कुछ कविताएं अज्ञेय द्वारा संपादित तार सप्तक में संकलित है। हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना सुव्यवस्थित करने और उसे नई दिशा देने का महत्वपूर्ण काम उन्होंने किया। उनके साहित्य – चिंतन के केन्द्र में भारतीय समाज का जन–जीवन, उसकी समस्याएं और उसकी आकांक्षाएं रही है।

6.6 कठिन शब्दावली

मूल्यांकन – गुण, किसी रचना की समीक्षा करना

धरातल – भूतल, पृथ्वी

6.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. अंग्रेजी साहित्य
2. 1978 में

अभ्यास प्रश्न–2

1. नंददुलारे वाजपेयी जी ने
2. मार्क्सवादी दृष्टि

6.7 संदर्भित पुस्तकें

1. रामप्रसाद किचलु, आधुनिक निबंध, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. रामविलास शर्मा, छायावाद और रहस्यवाद, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।

6.8 सात्रिक प्रश्न

1. रामविलास शर्मा की साहित्यिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. रामविलास शर्मा एक प्रगतिशील निबंध लेरखक है, स्पष्ट कीजिए।

*****

इकाई–7
विद्यानिवास मिश्र जीवन और साहित्य

संरचना

7.1 भूमिका
7.2 उद्देश्य
7.3 विद्यानिवास मिश्र जीवन और साहित्य
7.3.1 जीवन परिचय
7.3.2 साहित्यिक परिचय
स्वयं आकलन प्रश्न–1
7.4 'छितवन की छांह' निबंध का सार
7.4.1 छितवन की छांह' निबंध का प्रतिपाद्य
स्वयं आकलन प्रश्न–2
7.5 सारांश
7.6 कठिन शब्दावली
7.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
7.8 संदर्भित पुस्तकें
7.9 सात्रिक प्रश्न

7.1 भूमिका

इकाई छः में हमने रामविलास शर्मा के जीवन परिचय और उनके द्वारा रचित निबंध 'छायावाद और रहस्यवाद' का अध्ययन किया। इकाई सात में हम विद्यानिवास मिश्र के जीवन परिचय और साहित्यिक परिचय के बारे में जानेंगे। विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित निबंध 'छितवन की छांह' के सार और उद्देश्य का भी विस्तृत अध्यन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इकाई सात का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे के –

1. विद्यानिवास मिश्र का जीवन परिचय क्या है?
2. विद्यानिवास मिश्र का साहित्यिक परिचय क्या है ?
3. 'छितवन की छांह' निबंध का सार क्या है?
4. 'छितवन की छांह' निबंध का उद्देश्य क्या है ?

7.3 विद्यानिवास मिश्र जीवन और साहित्य

7.3.1 जीवन परिचय

विद्यानिवास मिश्र का जन्म 28 जनवरी 1926 ई० को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के पकड़डीहा गाँव में हुआ था। इन्होंने 1945 ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. करने के पश्चात् हिन्दी साहित्य सम्मेलन में स्व. राहुल साकृत्यापन के निर्देशन में कोश कार्य किया। तदुपरान्त विंध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के सूचना विभागों से सम्बद्ध रहे। वर्ष 1957 में विश्वविद्यालय सेवा से जुड़े डॉ. मिश्र ने गोरखपुर विश्वविद्यालय,

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय और आगरा विश्वविद्यालय में संस्कृत और भाषा विज्ञान का अध्यापन किया। मिश्र जी काशी विद्यापीठ एवं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति और नवभारत टाइम्स के प्रधान सम्पादक भी रहे। अपनी साहित्यिक सेवाओं के लिए इनको भारत सरकार के पद्मश्री (1988) भारतीय ज्ञानपीठ के मूर्तिदेवी पुरस्कार (1990) और के.के. बिडला फाउंडेशन के शंकर पुरस्कार सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किये जा चुके हैं। इनकी मृत्यु 14 फरवरी 2005 ई० को हुई।

7.3.2 साहित्यिक परिचय

मिश्र जी की प्रकाशित कृतियों की संख्या सत्तर से अधिक है, जिनमें व्यक्तिव्यंजक निबंध–संग्रह आलोचनात्मक तथा विवेचनात्मक कृतियाँ भाषा चिन्तन के क्षेत्र में शोध ग्रंथ और कविता – संकलन सम्मिलित हैं। डॉ. विद्यानिवास मिश्र आधुनिक जन –विज्ञान, समाज – संस्कृति, साहित्य कला की नवीनतम चेतना और तेजस्विता से मंडित हैं। संस्कृत भाषा के साथ हिन्दी और अंग्रेजी साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. मिश्र अनेक संस्थाओं के सम्मानित सदस्य हैं। मिश्र जी की निबन्ध रचनाओं में प्रमुख हैं: –

1. छितवन की छांह
2. कदम की फूली डाल
3. तुम चन्दन हम पानी
4. आंगन का पंछी और बंजारा मन
5. मैंने सिल पहुंचाई
6. वसन्त आ गया पर कोई उत्कण्ठा नहीं
7. मेरे राम का मुकुट भीग रहा है।
8. हल्दी – दूब
9. कंटीले तारों के आर – पार
10. कौन तू फुलवा बीनन हाररी।

काव्य संग्रहः– पानी की पुरकार

कहानी संग्रहः – भ्रमरानंद का पचड़ा

आलोचनात्मक ग्रंथः– तुलसीदास भक्ति प्रबंध का नया उत्कर्ष, आज के हिंदी कवि अज्ञेय, कबीर वचनामृत, रहीम रचनावली, रसरखान ग्रंथावली।

इनके अतिरिक्त इन्होंने अनेक समीक्षा ग्रन्थ भी लिखे हैं यथा– हिन्दी शब्द सम्पदा, पाणिनीक व्याकरण की विश्लेषण पद्धति, रीति विज्ञान। मिश्र जी के निबन्धों में लोकजीवन एवं ग्रामीण समाज मुखरित हो उठा है। किसी भी प्रसंग को लेकर वे उसे ऐतिहासिक, पौराणिक, साहित्यिक सन्दर्भों से युक्त कर लोकजीवन से जोड़ देने की कला में पारंगत हैं। उनके निबन्धों में लोकतत्व का समावेश है। विशेष रूप से भोजपुरी लोकजीवन उनके निबन्ध में समाया हुआ है।

विशेषता

मिश्र जी के ललित निबन्धों में भावात्मकता के साथ –साथ लोक संस्कृति की छटा विद्यमान है। इनके निबन्धों में प्रसादमयी भाषा – शैली, कथात्मक चित्रों की अधिकता और विवेचना की तथ्यपूर्ण गम्भीरता दिखाई देती है। अज्ञेय के अनुसार "विद्यानिवास जी ने संस्कृत साहित्य को मथकर उसका नवनीत चखा है और लोकवाणी की गौरव गन्ध से सदा स्फूर्ति भी पाते रहे हैं। ललित निबन्ध वह लिखते हैं तो लालित्य के किसी मोड़ से नहीं इसलिए कि गहरी, तीखी चुनौती भरी बात भी एक बेलाग और निर्दोष बल्कि कौतुकभरी सहजता से कह जाते हैं।

मिश्रजी के निबन्धों को विचारात्मक, समीक्षात्मक, वर्णनात्मक एवं संस्मरणात्मक – इन पांच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है, किन्तु उसमें उर्दू, अंग्रेजी एवं ग्रामीण जीवन के शब्द भी मिलते हैं। शैली की विविधता उनके निबन्धों की प्रमुख विशेषता है। आलंकारिक शैली, तरंग शैली, व्यंग्यपर्ण शैली, व्याख्यात्मक शैली, आलोचनात्मक शैली उनके निबन्धों में है।

उपसंहार

मिश्र जी ललित निबन्धकारों में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। साहित्य के साथ – साथ भाषा विज्ञान के भी वे पण्डित थे। उन्होंने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की परम्परा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वे प्राचीन संस्कृत साहित्य को समसामयिक दृष्टि से देखते थे और उसमें से मानवता के मोती निकाल लाते थे। आचार्य हजारी प्रसाद जी का प्रभाव उनके निबंधों पर स्पष्ट परिलक्षित होता है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. 'तुम चंदन हम पानी' किसका निबंध संग्रह है?
2. विद्यानिवास मिश्र जी को 'पद्मश्री पुरस्कार' कब मिला?

7.4 छितवन की छाँव निबंध का सार

अद्यतन युग के हिन्दी ललित निबन्धकारों में पांडेत विद्यानिवास मिश्र का नाम अग्रणी है। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए इन्होंने अपने निबन्धों में शास्त्रीय पांडित्य और लोकर संस्कृति की सहजता दोनों की ही सार्थक अभिव्यक्ति की है। अपने व्यक्तित्व की उन्मुक्तता को अपना आदर्श बनाकर इन्होंने अपने निबन्धों में गद्य – काव्य का सा आनन्द भर दिया। इनके निबन्धों में जहां संस्कृत साहित्य की अभिजात चेतना का प्रभाव है, वहीं आधुनिक भाव – बोध की पृष्ठभूमि में रहकर भी लोक जीवन की स्वछन्द रसधारा का प्रवाह भी विद्यमान है। अपने निबन्ध–संग्रह 'छितवन की छांह' की भूमिका में इन्होंने भारतीय जीवन की भावधारा के संदर्भ में अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखा भी है।– "वैदिक सूक्तों के गरिमामय उदगम से लेकर लोकगीतों के महासमर तक जिस अविच्छन्न प्रवाह की उपलब्धि होती है, उस भारतीय भावधारा को में स्नातक हूं। मेरी मान्यताओं का वही शाश्वत आधार है। मैं रेती में डोगी नहीं चलाना चाहता और न जमीन के ऊपर बने कंधो तालाबों में छपकोरी खेलना चाहता है।''

शास्त्र, दर्शन, इतिहास, धर्म आदि विभिन्न विषयों के प्रकाण्ड पड़िता होने के बावजूद पंडित विद्यानिवास मिश्र ने भारत के ग्राम्य – अंचल में फलती – फूलती भारतीय लोक –संस्कृति को अपना स्नेह प्रदान किया। केवल भारतीय ही नहीं वरन् पश्चिमी साहित्य के अच्छे अध्येता होने के कारण इनके निबन्धों में प्राचीनता और नवीनता का अदभत मिश्रण मिलता है। पश्चिमी साहित्य और चिंतिन, को इन्होंने इतनी अधिक गहराई से परखा कि उनके मन में भारतीय चिंतन और संस्कृत के प्रति आस्था अधिक दृढ़ हो गई। उनके लिए भारतीयता के मायने कभी वित नहीं रहे। उन्होंने स्वयं लिखा है –" आज के जमाने में भारतीयता के रूप में बात करना बड़े जोखिम काम है, अधिकतर लोग से निर्गुण–निराकर रूप देकर काम चला लेते हैं। इसे रूप देने की बात मन में हजार दुविधाये खड़ा कर देती हैं। ऐसा क्यों हुआ, इसको समझने के लिए साहित्य का एक ऐतिहासिक सर्वक्षण करना आवश्यक प्रतीत होता है । वैदिक साहित्य में वाणी अर्थात वाक और अग्नि सहोदर हैं, दोनों विराट पुरूष के मुख से पैदा हुए है। वैदिक संस्कृति की यात्रा अग्नि के पीड़े अनुधावन की यात्रा है।'' मिश्र जी ने भारतीयता को इतने गहरे तक देखा महसूस किया है कि उनके लिए वह अग्नि पूंज के समान धधकता हुआ रूप है। इसमें पश्चिम की तरह की राज्य सत्ता का भाव नहीं बल्कि समाज के कल्याण के लिए अपने को समर्पित कर देना ही राष्ट्रीयता है।

वेसे तो हिन्दी साहित्य में संस्कृति की चर्चा करने वाले अनेक लेखक – आलोचक मिल जायेगे किन्तु उसकी जड़ों तक जाकर उसे समूची मानव जाति की सांस्कृतिक चेतना के साथ सम्बंद्ध करने वाले गणनीय ही होगें पड़ित विद्यानिवास मिश्र ने अपने निबन्धों में भारतीय संस्कृति के 'परम्परागत स्वरूप को ही नहीं वरन वर्तमान जीवन संस्कृति को भी अपने चिंतन द्वारा नए स्वरूप में समझने का प्रयास किया पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के पश्चात् मिश्र जी ही ऐसे निबन्धकार है जिन्होंने अपनी प्रतिभा से हिन्दी निबन्ध साहित्य को नवीन दिशा की ओर विकसित किया भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की तलाश में पंडित विद्यानिवास मिश्र ने अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। यदि कहा जाए कि वे सही मायनों में भारतीयता की सच्ची परख रखने वाले उद्‌भट विद्वान थे तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

व्यक्ति व्यंजक निबन्धकारों की श्रृंखला में विद्यानिवास मिश्र ने भारत की सामाजिक – सांस्कृतिक चुनौतियों को नयी दिशा प्रदान की है। अपने निबन्ध संग्रह 'छितवन की छाँह' के माध्यम से उन्होंने हिन्दी के ललित निबन्धकारों में अपनी चिन्तन – प्रक्रिया का नया ढांचा तैयार कर खड़ा कर दिया। भले ही उसकी नींव पं. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने रखी हो लेकिन उसकी मजबूत इमारत में कुशल कारीगर की तरह पंडित विद्यानिवास मिश्र ने भारतीय संस्कृति की लोक – जीवन – चेतना को स्थापित किया। उन्होंने भारतीय जीवन को जितनी गहराई से देखा उतनी ही गहराई से उसे अपने निबंधों में अभिव्यक्ति भी किया। यही कारण है कि उनके निबन्धों मे लोकोन्मुख सामाजिकता और सास्कृतिक वैभव दिखाई पड़ता है।

जहां तक व्यक्ति निबन्धों की सृजन प्रक्रिया का सम्बन्ध है, इन निबन्धों में वैचारिक चिन्तन के साथ – साथ आत्मीय अनुभूतियों का भी प्रभाव गहरे तक पेटता है। 'छितवन की छांह' निबन्ध में जो मादक शीतलता विद्यमान है, वह हिन्दी के अन्य अधुनातन ललित निबन्धों में दुर्लभ है। यह निबन्ध सुष्टि के पंचतत्वों की सार्थकता में मिट्‌टी को ही पूर्ण सत्य स्वीकार करता है। पंडित जी के अनुसार मिट्टी और आकाश एक दूसरे के पूरक हैं। मिट्‌टी का गुण गंध है और आकाश का 'शब्द' व्यक्ति जीवन पर्यन्त मिटटी से बंधा रहता है। इसलिए मिट्‌टी ही पूर्ण हैं। अकाश 'शून्य' है शब्द 'शून्य' । मिट्टी 'गंधवती' है गंध' महापूर्ण' लेखक की दृष्टि में गंध के बिना यह संसार अपूर्ण है। इसके संसर्ग में आकर ही मनुष्य विश्व का अमर श्रृंगार बन जाता है। शब्द तो शून्य का पर्याय है। गंध की वाहक बनकर ही वायु अपने आपको गौरवान्वित महसूस करती है। इसका आमोद पाकर ही रस उच्छवासित होता है। गंध की महक से ही स्पर्श सुख प्रदान करता है।

पंडित विद्यानिवास मिश्र मानते है कि गंध के बिना यह सृष्टि और मनुष्य अपूर्ण हैं। यह नश्वर शरीर इसी मिट्‌टी से उपजा है और अंत में इसी मिट्‌टी में विलीन होना हैं। इसलिए गंध श्री सत्य है। शब्द भले ही सत – चित – आनन्द की अनुभूति कराता है किन्तु गध के संसर्ग से ही सत् और चित् आनन्दवादी बन पाते हैं। इसलिए पंडित जी को छितवन की गंध सत – चित – आनन्द का अनुभूति कराती है। यहाँ छितवन गन्ध–साधन का नन्दावन है।

पडित जी की दृष्टि में यह छितवन यौवन का प्रतीक है। इसकी छांह में मधुर आनन्द है। जो मनुष्य को पूर्णतः तृप्त करता है। जैसे शरीर का यौवन एक बार जाने के बाद लौटकर नहीं आता उसी प्रकार छितवन की छांह में एक बार आने वाले पूर्ण आनंद पाकर लौटना नहीं चाहता। उसकी समस्त चेतना उसके प्रति समर्पित हो जाती है। लेखिक का मानना है कि किसी ने भी छितवन की ओर ध्यान नहीं दिया। सभी अन्य पुष्पों को श्रृंगार के लिए उपयोगी मानते रहे लेकिन छितवन की सभी ने उपेक्षा की। यौवन भी सदा उपेक्षणीय रहा है। सभी भोग और अतृप्ति की आकांक्षाओं में फंसे रहे लेकिन यौवन की शुचिता, निश्छलता और मादकता की ओर किसी ने नहीं देखा। मिट्टी का यह शरीर जितना मनोहारी दिखता है उतना ही उसका सत्य नहीं। उसके भीतर पेठकर ही उसका अनुभव किया जा सकता है।

पड़ित विद्‌यानिवास मिश्र के अनुसार यौवन अनश्वर नहीं वह एक न एक दिन ढलेगा अवश्य, इसलिए उसकी आकंठ परितृप्ति इधर – उधर भटकने से प्राप्त नहीं होती। लेखक ने छितवन की छांह को जीवन के तीन चरणों में महसूस किया है। मधुमास की नई संध्या में, यौवन की रात्रि के प्रथम प्रहर में तथा कुआर की उमसी दोपहरी में लेखक की दृष्टि में भले ही लोक में इसे अमंगल का सूचक माना जाता हो लेकिन सत्य तक पहुंचने के लिए, परम मंगल तक पहचने के लिए अंबगल के गहन जंबल से गुजरना ही होगा। छितवन का पेड़ हर मरघट पर होना ही इसका प्रमाण है, शरीर के नश्वरता में उसका इस मिट्टी में मिलना, इस गंध में समाना ही अंतिम सत्य है इसलिए इस छितवन की छांह में आने वाले को अपने शुभ्र अनुराग से 'स्व' को समर्पित करना होगा, सभी वह जीवन सत्य की गन्ध को पा सकेगा।

पंडित विद्यानिवास मिश्र ग्राम्य चेतना से सराबोर होकर लोक संस्कृति की मधुर गंध को सभी तक पहुंचाना अपना लक्ष्य समझते हैं। जीवन की नायरता और अनश्वरता का ऐसा विश्लेषण पंडित जी जैसा विद्वान ही कर सकता है। पंड़ित जी ने अपने कौशल से छितवन जैसे अमंगल सूचक को भी जीवन के मंगल की साधना में परिवर्तित कर दिया है।

"छितवन की छाँह' निबन्ध में पठित विद्यानिवास मिश्र ने बौद्धिक चिन्तन का जैसा प्रयोग किया है वह द्रष्टव्य है। लेकिन बुद्धि तत्व के साथ ही उनका व्यक्तित्व पूरे निबन्ध में बोलता दिखाई देता है। बुद्धि का ऐसा अद्वितीय प्रयोग हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्धों में ही दिखाई देता है। छितवन को पार्थिक शरीर के यौवन का प्रतीक बताते हुए लेखक कहता है – '"छितवन की छांह में अतृप्ति की तृप्ति है अरति की रति है। और अथ की इति। पार्थिव यौवन भी तृप्ति की तृप्ति है रति का और इति का प्रतिबिम्ब है, पार्थिव जब जाता है तो फिर आता नहीं, यौवन हरिण के पीछे घूम के अतीत की संगीत लहरी नहीं सुना करता और पार्थिक यौवन वितृष्णा में आकांक्षा का वैराग्य में राग का, अभाव में पूर्ति का और पिपासा में उपशम का स्वप्न देखता है। उसमें रात ही बीतती है, बात नहीं बीतती.....।'' लेखक ने यौवन और छितवन की ऐसी बुद्धि परक व्याख्या की है कि तार्किक दृष्टि से उसे विश्लेषित करना सहज हो गया है।

एक अन्य प्रसंग में लेखक कहता है कि छितवन स्वतः ही धरती फोड़कर छितरा जाता है। इसकी छाया में जाने से व्यक्ति के सभी पूण्य अमंगल हो जाते हैं। लेकिन वह अपने बौद्धिक चिन्तन से इस अमंगल को भी मंगल की परिणति तक पहुंचाते हुए कहता है –"जहा मृत्यु – तिथि का पुण्यतिथि कहा जाता है, जहां विपति, सिर पर रहती भी है तो ग्रहों के ऊपर दोष मढ़ा जाता है तथा जहा अमंगल को स्वप्न में भी स्थान नहीं मिलता है और दिन–रात मंगलकारी गान होता रहता है जब कि ठीक इसके विपरीत मंगल की छाती पर चौबीसों घंटे अमंगल संवार रहा करता है। वहां परम – मंगल के महासाधक योगीश्वर शिव नहीं न्योते जाते, विध्ननायक गणेश की 'वन्दना पहले होती है, वहां निःश्रेयस पथ में पथि संयासी का दर्शन अशुभ, और पाप की तीर्थयात्रिणी की गाथा से हमें चेतावनी देने लगेंगे। परन्तु हम विवश हैं कि युग का क्षय हो जाए, हम तो छितवन की छांह को पुण्य से भी महान् मानते हैं।''

पंडित विद्यानिवास मिश्र के इस निबन्ध में बुद्धि तत्व अधिक गरिमा और महिमा के साथ प्रकट हुआ है। विचारों की अवाध गति के लिए ही पंडित जी ने बुद्धि में चिन्तन की धारा को वेग दिया है।

पंडित विद्यानिवास मिश्र का सारा जीवन यात्राओं में बीता। अपने जीवन के 79 वर्षों के लम्बें काल खंड में अधिकांश समय भारतीय जीवन और संस्कृति को समझने – परखने में बिताने के कारण ही पडित जी के निबन्धों में जीवन के उपलब्ध अनुभवों की संचित कोष राशि बिखरी पड़ी है अनुभूति के इन स्पंदित कणों को पंडित जी ने अपने एक – एक निबन्ध में बड़ी सुन्दरता से रूपाकार किया है। 'छितवन की छांह' में लेखक ने अनुभूति के क्षणों को बार – बार जिया है। मधुवास की नई संध्या की स्मृतियों में डूबा लेखवक कहता – "मधुमास

की नई संध्या थी, चारों और दखिनैया की नई चेतना का संस्पर्श, रस का उमड़त ज्वार, अनार, कचनार और किशुंक के फूलों की लपेट एवं कोकिल की काकली की स्वर लहरी की गुंज अभिव्याप्त। मैं अपने छितवन सरीखे दो उन्मादी मित्रों के साथ घूमने निकला था। रास्ते में एक बगीचा पड़ता था। जिसके प्रवेश द्वार पर की छितवन की छांह मिलती थी, उसे उपवन मे जाने और वहां से निकलने का एक यही द्वार इसलिए धूम – धाम कर लौटते हुए भी फिर इसी छितवन की छांह मिलती थी। ठीक इसी के बगल में एक चौरस रास्ता गया था मरघट की ओर। कभी–कभी हम मरघट को घूम आते थे। और रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द का महानिलय भी देख आते थे उन खोपड़ियों के रन्ध से आने वाली मुखर बयार में छितवन की वह मेरी पहली पहचान है और आज मुझे इतना गर्व है कि यह पहचान की पूरी पहचान रही, अपनी समय दुर्बलता और क्षमता को समेटे हुए।''

अपनी गहन अनुभूति की छाया में बैठकर ही लेखक ने प्रकृति की आलौकिक छटा को अभिव्यक्त – 'मानता हूं सावन की हरियरी नहीं, जेठ की प्रखर प्रभा नहीं और बसन्त का जाफरानी रंग नहीं, दुग्धा धवल शुभता में प्रकृति निखर उठी है और इसके शुभ्र और उज्जवल आलोक में गगन की शून्यता भी खिल उठी है। इसकी प्रसादी पाकर ही गगन – विहारिणी, मराल वाहिनी भारतीय को इतनी उड़ान भरने का बल मिल सका है और अब उड़ान भरकर वही एक बार वह पुनः विश्राम लेना चाहती है।' अनुभूति और कल्पना का ऐसा अदभुत सांमजस्य पंण्डित जी के निबन्धों को विलक्षण बनाता है। कल्पना शक्ति तो व्यक्ति–व्यंजक निबन्धों में लेखक की सहचरी बनकर आती है। पंडित जी ने अपनी कल्पना– शक्ति की अनुभूति तत्व को सम्बद्ध कर अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को लालित्यता प्रदान की है।

पड़ित विद्यानिवास मिश्र का यह निबन्ध व्यक्ति निबन्ध की नवीन शैली का अद्‌भुत नमूना है। उनके व्यक्तित्व और ज्ञान की गहरी छाप के साथ – साथ उनका गहन चिन्तन भी इस निबन्ध में दिखाई देता है विजय के आरम्भ में भी उनकी छुअन की शंकार से विचारों की नाद–ध्वनियां गूंजित हो उठी हैं। 'छितवन की छाँड' में पंण्डित जी के व्यक्तित्व की गहरी अभिव्यक्ति होते हुए भी उसमें सह्रदयता का भाव उसे हावी नहीं होने देता। वाक्–सिद्ध दोनों में ही स्नातक पंडित विद्यानिवास मिश्र, का यह निबन्ध भावातिरेक के क्षणों में भी सहज बन जाते है। परम्परा की उदात्त धरती पर लोकसस्कृति का र्स्पश कराता यह निबन्ध पंडित जी की पौढ़ता को लक्षित करता है। अपनी शैली को रोचक और सुरूचिपूर्ण बनाने के लिए लेखक ने कवित्वमयी शैली को आधार बनाया है। विभिन्न दृष्टांतों और प्रसंगों से 'छितवन' का प्रसंग सजीव हो उठता है।

'पंडित विद्यानिवास मिश्र की भाषा परम्परागत सांचे को तोड़कर अपना एक अलग नया सांचा तैयार करती है। जिसमें चिन्तन के क्षणों में संस्कृतनिष्ठ पदावली सर्वत्र दिखाई देती है। तो भावों की तीव्रता के क्षणों में ये लोकप्रचलित हिन्दी – उर्दू के शब्दों का सहज प्रयोग करने से भी नहीं चूकते। इनकी भाषा ही इनकी आत्मा – शक्ति बनकर अर्थ की नयी सम्भावनायें उपस्थित करती है। इनकी भाषा में इनका अनुभव बौद्धिक चिन्तन, आत्मविश्लेषण अपने लिए स्वयं ही शब्द निर्माण कर लेता है।

यदि कहा जाए, कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के पश्चात् हिन्दी की ललित निबन्ध परम्परा को विकसित और पोषित करने वाले में पण्डित विद्यानिवास मिश्र ने अपना सम्पूर्ण समर्पण कर दिया तो कोई अत्युक्ति नहीं। अपने गहन जीवन –चिंतन के संस्पर्श से नए वैचारिक प्रकाश स्तम्भों को खड़ा कर पंडित जी ने आने वाली साहित्यिक पीढ़ी के लिए परम्परा और आधुनिकता की नयी राह बनायी। आज की ललित निबन्धकारों की पीढ़ी उन्हीं की बनाई राह पर ही चल रही है।

7.4.1 'छितवन की छांह' निबंध का प्रतिपाद्य

डॉ. विद्या निवास मिश्र संस्कृत एवं भाषा विज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान हैं। एक सफल ललित निबन्धकार के रूप में उन्हें विशेष खयाति प्राप्त हुई है। उनके निबंधों में उनकी निजता, आत्मीयता, उदारता तथा भारतीय

संस्कृति के साहित्य आदि को अद्येता आदि क रूप में परिचय मिल जाता है। उन पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबंधों का प्रभाव देखा जा सकता है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने उनके बारे में लिखा भी है – "निश्चय ही आपके ललित निबंध विषय, दृष्टिकोण, शैली एवं भंगिमा की दृष्टि से अनूठे एवं आद्वितीय हैं, इनमें मन की उड़ान भी है और विफलताओं का आक्रोश भी है। यहां साहित्यिक गुटबंदी पर व्यंग्य भी है और प्रभुत्व ज्वर से ग्रस्त भारतीय नूतन नौकरशाही पर कटाक्ष भी है। इनमें ग्रामीण उत्सवों की विह्वत स्मृतियों भी हैं और जीवन के छलछलाते प्रसंगों में निहित मुक्त आवेश भी है। इसमें मिली–जुली संस्कृति का मजाक भी उड़ाया गया है और योजनाबाजी का निर्मम उपहास भी किया गया है तथा इनमें नर को नारायण विमुख बनाने की अड़िग आस्था भी है और जन – जन में परमेश्वर की शक्ति को देखने का अटल विश्वास भी नारायण है। इसी प्रकार रमाशंकर त्रिपाठी ने उसके निबंधों की विवेचना करते हुए लिखा है – "विद्यानिवास मिश्र आचार्य द्विवेदी की परम्परा में प्रतिष्ठित एक प्रख्यात निबंधकार हैं। उन्होंने ललित निबंधों को प्राण प्रतिष्ठा प्रदान की है। लगभग दो दर्जन लालित्यवादी एवं विबोधपरक निबंध संग्रहों की अनूठी साहित्य सम्पदा के साथ उन्होंने ललित निबंध के क्षेत्र में हिंदी साहित्य को असाधारण गौरव का भाजन बनाया है। क्या ही कव्य और क्या ही अभिव्यक्ति, दोनों ही दृष्टियों से उन्होंने भारतीय मन – मेघा –मनीषा का भाव प्रभावी सम्पादन किया है।' डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने भी कहा है –'मिश्र जी ने अपने ललित निबंधों द्वारा हिंदी के निबंध साहित्य को अत्यधिक समृद्ध बनाया है। आपके ये निबंध गहन अनुभूति एवं चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति के ही भंडार नहीं हैं अपितु इनमें लेखक ने सम – सामयिक समस्याओं की ओर व्यंग्यपूर्ण संकेत करते हुए आधुनिक जीवन में व्याप्त विषमताओं के बीच बड़ी तत्परता एवं तल्लीनता के साथ अंकित किये हैं। ये लेखक के मन की उन्मुक्त उडान को केवल अवकाश ही प्रदान नहीं करते बल्कि लेखक व्यक्तित्व एवं कृतित्व में मुक्त आवेश को भी स्वर प्रदान करते हैं तथा अभिव्यंजना की नूतन पद्धति को श्री प्रश्रय प्रदान करते हैं।''

इसी प्रकार डॉ. शिव कमार शर्मा ने उनके निबंधों का मूल्यांकन करते हुए यह सिद्ध किया है कि वे एक श्रेष्ठ ललित निबंधकार हैं। वे लिखते भी हैं – "उनके निबंधों में अतीव ललित भाषा में भारतीय लोक जीवन का सम्बन्ध भारतीय साहित्य एवं संस्कृति से जोड़ा गया है। इनक निबंधों में शास्त्र सम्पदा लोकाचार एवं लोक संस्कृति का सहज व सुंदर सम्मिलन है, जो उनकी गहन अध्ययनशीलता और अनुभव सम्पन्नता का द्योतक है।'' 'छिवतवन की छाँह' एक उल्लेखनीय वैयक्ति निबंध है। इसमें लेखक ने भारतीय संस्कृति तथा उसके शाश्वत् मूल्यों का वर्णन किया है। साथ ही छितवन की महिमा पर भी प्रकाश डाला है। लेखक ने भारतीय कुरीतियां पाखण्डों की कुट आलोचना की है। श्रीमद्‌भगवत् गीता के निलुप्त निस्वार्थ कर्म की पूजा करते हुए उस पुण्य को त्याज्य माना है जो अहंकार के वश किए जाते हैं। यही नहीं, लेखक ने यह भी सिद्ध किया है। कि मृत्यु शाश्वत सत्य है। यह एक सार्वकालिक और सार्वभौमिक सच्चाई है। इसी आधार बनाकर मिश्र जी ने भारतीय संस्कृति और दर्शन की महिमा का गान किया है। मिश्र जी प्रायः अपने निबंधों में आज के राजनीतिज्ञों पर करारा व्यंग्य करते हैं और जीवन की विषमताओं पर प्रकाश डालते हैं। वे परम्परागत मान्यताओं को नकारते मूल्यों के निर्माण का समर्थन करते हैं। मिश्र जी ने अपने निबंधों में उन सभी समस्याओं का वर्णन किया है जो आज भारतीय समाज के सामने मुंह बायें खड़ी हैं। उनकी उपलब्धि इसी बात से महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि उन्होंने अपने ललित निबंधों को जनजीवन से जोड़ा और उनकी समस्याओं पर निरंतर प्रकाश डालते हुए स्वस्थ 'छितवन की छांह' भले ही एक ललित निबंध है। परंतु इसमें लेखक की वैयक्तिकता स्पष्ट देखी जा सकती है। इस निबंध के प्रतिपाद्य का विवेचन इस प्रकार है –

1. छितवन की महिमा का गान – भारतीय समाज में छितवन को अमंगलकारी और अशुभ होने के कारण त्याज्य माना गया है। कोई भी व्यक्ति घर के आसपास छितवन का वृक्ष नहीं लगाता। यह वृक्ष केवल मरघट में ही देखा जा सकता है। लेखक स्पष्ट करता है – "लोगों में छितवन के बारे में प्रसिद्ध है कि इसकी

छाया में आते ही आदमी के सभी पुण्य खत्म हो जाते हैं। इसलिए इसे कोई लगाता नहीं।' परन्तु लेखक इस वृक्ष को आराध्य मानता है और उसे गणेश और गौरी के समकक्ष स्थान देता है। छितवन के प्रति अपने प्रेम का वर्णन करते हुए लेखक कहता है – यह छितवन साक्षी है मेरी प्रीति का, मेरी प्रीति के प्रथम उत्सर्ग का और उसकी पुण्य प्राप्ति का। मेरे कुसुमित यौवन के दूसरे मोड़ का यह साथी अब तक न जाने कितने प्रणय – कलहों की तपन के बीच, न जाने कितनी विकृत जीवन की दुर्गन्धों के बीच और न जाने कितनी नीरसताओं के बीच स्नेह की समरसता का सम्बल देता रहा है। तब से न जाने कितनी बार दीए स्नेह भरा होगा, न जाने कितनी बाती पूरी गयी होगी और न जाने कितना तम हरा गया होगा, पर जीवन दीप की अखण्ड ज्योति की प्रेरणा मुझे मिली है, इस दूसरे छितवन की छाया से।'

लेखक का विचार है कि छितवन की छाया यौवन के आगमन तथा उसके अन्त का मापदण्ड है। यह लेखक के जीवन को सहारा देता है। यह उसका प्रेरणा–स्रोत भी है। छितवन की –सी गंध प्राप्त करके मदमस्त हाथी भारतीय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में सर्वश्रेष्ठ उपमान प्राप्त किये हुए है। लेखक पुनः कहता है कि आज तक किसी ने इस साधना की मूर्ति छितवन को परखा नहीं, बल्कि किसी ने भी छितवन को उसके रूप में स्थान नहीं दिया। लेखक छितवन का गान करते हुए पुनः कहता है कि इसकी प्रसादी पाकर गगन –विहारिणी मराल – वाहिनी भारती को इतनी उड़ानें भरने का बल मिल सका है और अब उड़ान भर कर वही एक बार पुनः विश्राम लेना चाहती है। इस भवाम्बुधि ने उड़ते–उड़ते इस छितवन के जहाज पर आकर विश्राम लेना पड़ता है।'' यही नहीं, मिश्र जी ने छितवन की छाया को पुण्य की प्राप्ति से भी महान स्वीकार किया है। लेखक का विचार है कि भगवान शंकर के समान छितवन संसार की दुर्गन्ध को समाप्त करके सम्पूर्ण वातावरण को सुखद और मनोरम बना देता है। छितवन के जीवन का एकमात्र लक्ष्य है पवित्रीकरण करना –"जहां मरघट होगा होगा छितवन का पेड़ मिलेगा ही चिता की चिरागंध गंध का प्रीति कर देने के लिए और मरघट न होगा तो मनुष्य सियार और कुत्ता बन जाएगा। छितवन के लिए किसी वन महोत्सव को अपेक्षा नहीं, वह मरघट का शृंगार है। वह मिट्टी के शरीर का उत्कर्ष है और शरीर का मिट्टी में मिल जाने पर मात्र अवशेष। इस प्रकार छितवन की महिमा महान है।

2. जीवन के शाश्वत मूल्यों का वर्णन – प्रस्तुत निबंध में लेखक ने जीवन के शाश्वत मूल्यों पर भी प्रकाश डाला हैं। लेखक का कथन है कि मृत्यु शाश्वत् है। मानव – जीवन पानी के बुलबुले के समान क्षणिक है। मानव जीवन के इन शाश्वत् मूल्यों पर प्रकाश डालते हुए लेखक लिखता है– "छितवन की यह मेरी पहली पहचान है। आज हमें इतना गर्व है कि वह पहली पहचान ही परी पहचान रही। अपनी समग्र विषमता और विरलता को समेटे जाते समय इसके नीचे हम छाँते और लौटते समय भी। जाते समय एक अनजानी–सी सिहरन होती और लौटते हए। उसी समय के नश्वर और अनुश्वर स्वरूप मन में अलग – अलग बस गए। इसका मुझे बड़ा सुख है। मरघट समय एक विचित्र –सी निर्ममता, मृत्यु का साक्षात् रूप न तो जाते समय तक मिलता न लौटते समय तक उसके ऊपर विजयी मिलती। पर जातिवाद की सिरहन और लौटती बात की निर्ममता आज की स्मृति के साथ –साथ बनी हुई है। यही नहीं, उस छितवन की छाया से जब हम बगीचे की ओर उड़ते हैं तो भी एक तरुण सी तृप्ति रहती है और ....है और जब हम लौटकर यहाँ आते तो ऐसा लगता हम आकंठ परितृप्त है, नहीं कुछ तृप्ति पद है ही नहीं। ये अभाव और पूर्णतत्त्व की भावना तभी न जान किस प्रेरणा से हैं। इसके जीवन को बहुत बड़ा संबल गया, आगे का किरण पथ सदा के लिए सुरभित हो और ध्येय अत्यन्त स्पष्ट और उज्ज्वल। लेखक ने जीवन और मृत्यु–अमंगल और मंगल तथा पार्थिव जीवन संचित स्नेह के प्रतीक छितवन के द्वारा पाप–पुण्य तथा सद्कर्म आदि पर प्रकाश डाला है और इस वृक्ष सात्विक तथा पवित्र घोषित किया है। लेखक का कहना है कि हमें पाप–पुण्य के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। मोल के लिए पाप के क्षय से पुण्य का क्षय अधिक महत्त्वपूर्ण है। कारण यह है कि पाप का दान परिणीति हो जाता। परंतु पुण्य का क्षय इतनी जल्दी नहीं होता।

3. लेखक की बहुमुखी प्रतिभा का वर्णन – मिश्र जी ने इस निबंध में न केवल सूरदास, तुलसीदास आदि का वर्णन किया है बल्कि अंग्रेजी के कवि शैली, टेनीसन, बायरन और वर्ड्सवर्थ आदि का वर्णन करके अपनी बहुमुखी प्रतिभा पर प्रकाश डाला है। यही नहीं, कवि ने संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वानों, बाणभट्ट, भारती, मान पं. नाथ जगन्नाथ आदि विद्वानों की कृतियों का उल्लेख करते हुए उनकी पद्धतियों पर भी प्रकाश डाला है। साहित्य से अनेक उद्धरण देकर लेखक ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। अंग्रेजी के कवियों की भाषा और प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है – शैली, कीट्स, टेनीसन और ब्राउनिंग का अनुसरण भाषा में और अभिव्यक्ति में तो करते चलते हैं पर कभी उन्हें यह सोचने का अवकाश मिलता है कि शैली में शैली की ही द्रुतशीलता नहीं, जीवन की भी द्रुतशीलता है और पछुआ हवा को चुनौती देने वाला अदम्य वेग है, कल्पना की केवल रंगीनी ही नहीं, अनुभव की सूक्ष्म बारी भी है। अभिव्यंजक शब्दों से ही केवल मणि खंचित की ओर विजड़ित नहीं, वह पार्थिव गंध की सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों से जटिल और मदमस्त हैं। वह उपभोग की स्थिरता में अन्य विकसित हैं।"

4. निलृप्त एवं निःस्वार्थ कर्म का महत्त्व – मिश्र जी ने अपने निबंध 'छितवन की छाँह' में निलृप्त और निस्वार्थ की पूजा की है। लेखक का कथन है कि निःस्वार्थ भावना से किये गए कर्म ही व्यक्ति के भाग्य का निर्धारण करते हैं। यदि कोई अहंकारी व्यक्ति अहंकार से वशीभूत होकर पुण्य कार्य करता है तो उसे अपयश ही मिलता है। अतः हमेशा अहंकार के बिना ही पुण्य कार्य करना चाहिए। अन्त में पं. विद्या निवास मिश्र ने श्रीमद्भगवत गीता के निष्काम कर्म की महत्ता का प्रतिपादन किया है। लेखक का कथन है कि निष्काम कर्म करने से हमारा जीवन सफल होता है। इस प्रकार का कर्म न केवल अपने लिए, बल्क समाज के लिए भी कल्याणकारी होता है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के शब्दों में – "विद्या निवास मिश्र एक श्रेष्ठ ललित निबंध लेखक हैं। आपने इतने रोचक एवं सरस निबंध लिखे हैं कि वे हिंदी साहित्य की अपूर्व निधि बन गये हैं। उनमें भाषा और साहित्य का अद्भुत शृंगार हआ है तथा अभिव्यंजना शैली के क्षेत्र में एक विलक्षण परिवर्तन आया है। आपके ये निबंध विषय की नूतनता एवं विविधता के साथ–साथ शास्त्रीय सम्पदा एवं लोक संस्कृति के अक्षय भण्डार हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'छितवन की छांह' निबंध के अनुसार आकाश का गुण क्या है?
2. 'छितवन' को त्याज्य क्यों माना जाता है?

7.5 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विद्यानिवास मिश्र का जन्म उत्तप्रदेश के जिला गोरखपुर के ग्राम पकड़ डीहा में 1926 को हुआ था। मिश्र जी हिंदी के सुप्रसिद्ध निबंधकार, साहित्यिकार व संस्कृत के प्रकांड विद्वान और सफल संपादक तथा भाषाविद् थे। विद्यानिवास मिश्र जी ने 50 से अधिक रचनाएं लिखी है। जिनमें ललित निबंध, संस्करण, काव्य संग्रह व आलोचनात्मक ग्रंथ व कृत्तियां सम्मिलित हैं।

7.6 कठिन शब्दावली

स्वर्णिम – सोने का, सुनहरा

तेजस्वी – प्रभावशाली, चमकीला

दृश्यमान – साक्षात, अभिव्यक्त

7.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. विद्यानिवास मिश्र
2. 1988 में

अभ्यास प्रश्न–2

1. शब्द
2. अशुभ एवं अमंगलकारी होने के कारण

7.8 संदर्भित पुस्तकें

1. विद्यानिवास मिश्र, छितवन की छांह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. बाबूराम मैहला, हिन्दी निबंधों में सास्कृतिक चेतना, निर्मला प्रकाशन, दिल्ली।

7.9 सात्रिक प्रश्न

1. विद्यानिवास मिश्र की निबंध कला पर प्रकाश डालिए।
2. विद्यानिवास मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–8
कुबेरनाथ राय जीवन और साहित्य

संरचना

8.1 जीवन परिचय

8.2 साहित्यिक परिचय

8.3 कुबेरनाथ राय जीवन और साहित्य

8.31 जीवन परिचय

8.3.2 साहित्यिक परिचय

स्वयं आकलन प्रश्न–1

8.4 कुबेरनाथ राय की निबंध कला की विशेषताएं

8.5 'षोडशी के चरण कमल' निबंध की भाषा शैली

स्वयं आकलन प्रश्न–2

8.5 सारांश

8.6 कठिन शब्दावली

8.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

8.8 संदर्भित पुस्तकें

8.9 सात्रिक प्रश्न

8.1 भूमिका

इकाई सात में हमने विद्यानिवास मिश्र के जीवन परिचय एवं उनके निबंध 'छितवन की छांह' का अध्ययन किया। इकाई आठ में हम कुबेरनाथ राय के जीवन एवं साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। कुबेरनाथ राय की निबंध कला की विशेषताओं एवं उनके निबंध 'षोडशी के चरण कमल' का भी विस्तृत अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य

इकाई आठ का अध्ययन करने के पश्चात हम् यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. कुबेरनाथ राय का जीवन परिचय क्या है?
2. कुबरनाथ राय का साहित्यिक परिचय क्या है?
3. कुबेरनाथ राय की निबंध कला की विशेषताएं क्या है?
4. 'पोडशी के चरण कमल' निबंध की विशेषताएं क्या है?

8.3 कुबेरनाथ राय : जीवन और साहित्य

8.3.1 जीवन परिचय

कुबेरनाथ राय का जन्म उत्तर प्रदेश में गाजीपुर में 26 मार्च 1933 ई० को हुआ। उन्हें हिंदी के प्रमुख निबंधकारों में से एक माना जाता है। इस लेख के माध्यम से हम कुबेरनाथ राय जी का जीवन परिचय, रचनाएं, भाषा शैली तथा निबंधों के बारे में जानेंगे।

हिन्दी निबन्धकारों में विशिष्ट स्थान रखने वाले श्री कुबेरनाथ राय का जन्म उत्तर प्रदेश में गाजीपुर के एक गाँव मतसों में 26 मार्च 1933 ई० को हुआ। इनके पिता संस्कृत के गंभीर अध्येता थे और पितामह भी

साहित्यिक रुचि सम्पन्न थे। इन्होंने कलकत्ता से निकलने वाले पत्रों का संपादन किया। कुबेरनाथ जी को साहित्य–अध्ययन व लेखन की अभिरुचि विरासत में मिली। इन्होंने क्वींस कॉलेज वाराणसी से विज्ञान विषय में स्नातक स्तर तक शिक्षा प्राप्त की और कलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी विषय में एम.ए. किया।

1959 से 1986 तक वे नलवारी कॉलेज, नलवारी (असम) में अंग्रेजी के आचार्य व विभागाध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित रहे। 1986 से गाजीपर के सहजनंद कॉलेज के प्राचार्य पद पर कार्यरत हैं। साहित्य सृजन के प्रति उनकी गहन रुचि है जो उनके निबन्धों में भी झलकती है। अनेक पत्र – पत्रिकाओं में इनके निबन्ध प्रकाशित होते रहे हैं। कुबेरनाथ जी आधुनिक युग के निबंध लेखकों में ललित निबन्धकार रहे हैं और इनके निबन्धों में विषय की दृष्टि से विविधता मिलती है। भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ साहित्यिक ग्रंथ 'रामचरितमानस' और महाभारत' में उनकी विशेष रुचि रही है। इसीलिए अपनी रचनाओं में वे वैदिक संस्कृति और पौराणिक मिथकों का आवश्यकतानुरूप उल्लेख करते हैं। इसके अतिरिक्त इतिहास, पुरातत्त्व, ज्योतिष, दर्शन, काव्यशास्त्र आदि विषयों को भी इन्होंने अपनी लेखनी से सुसज्जित किया है। श्री राय का निधन 5 जून 1996 को हुआ को उनके पैतृक गांव मतसा में हुआ।

8.3.2 साहित्यिक परिचय

प्रिया नीलकंठी', 'गंधमादन', 'रस आखेटक', "निषाद बांसरी', 'विषाद योग', 'माया बीच', "मन पवन की नौका', 'दृष्टि अभिसार', "पर्णमुकुट', "मणिपुतुल के नाम', "महाकवि की तर्जनी', 'राम कथा : बीज और विस्तार', त्रेता का वृहत्साम' आदि इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं।

"प्रिया नीलकंठी', 'गंधमादन', 'विषाद योग' नामक संग्रह उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुके हैं।

कुबेरनाथ राय की लालित्यपरक परम्परा

हिन्दी निबन्ध की लालित्यपरक परम्परा को जीवन्त एवं गतिशील रखने वाली निबन्धकारों में कुबेरनाथ राय का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी की ललित निबन्ध परम्परा को विकसित और पोषित करने में जो योगदान कुबेरनाथ राय ने दिया है वह अन्यतम है। भावों और विचारों की सुगन्ध द्वारा कुबेरनाथ राय ने भारत की संस्कृति और लोक – संस्कृति को अपने निबन्धों द्वारा सुरभित बना दिया है। सूक्ष्म और कोमल भावाभिव्यक्तियों से युक्त राय साहब के निबन्धों लालित्यात्मकता की प्रखरता चरम पर है। इनके निबन्धों में प्रधानता भले ही ललित की हो किन्तु इसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप भिन्न स्तरों पर हआ है कहीं यही लालित्य कल्पना की ऊंची उड़ान में अपने को बहा देता है। तो कड़ी बौद्धिक चिन्तन की वीथिकाओं में स्वयं को उलझा देता है। कहीं इसमें राग तत्व की प्रधानता है, तो कहीं आक्रोश का घनीभूत स्वर। लेकिन अपनी प्रखर मेधा से कुबेरनाथ राय ने भारतीय साहित्य, संस्कृति, इतिहास, दर्शन, धर्म कला, आदि जीवन के विविध विषयों की गंभीर व्याख्या प्रस्तुत की है।

कुबेरनाथ राय के निबन्धों में भारतीयता की गहरी छाप है। परम्परा की फर्मूले में अपनी विचारणा को गम्भीरता से जीते हुए राय साहब ने भारतीय संस्कृति और इतिहास की विराट चेतना को साक्षात् अपने निबन्धों द्वारा इतिहास के वैभव लोक से बाहर लाकर स्थापित किया है। भारतीय संस्कृति के शुचिपरक मूल्यों और उदात्त स्वरों को आधुनिक जीवन संदर्भ में व्याख्यायित करते हुए कुबेरनाथ ने अपने निबन्धों में यह लक्षित करने का प्रयास किया है कि भारतीय संस्कृति का विकास आर्य और आर्येतर जातियों के संयुक्त प्रयास द्वारा ही हुआ है।

कुबेरनाथ राय अपने निबन्धों में अपनी वैचारिक प्रखता को प्रस्तुत करते समय कई बार अधिक विद्वता दिखाने की चेष्टा भी करते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की दूरदर्शी दृष्टि से प्रभावित राय साहब की आलोचना करते हुए प्रसिद्ध आलोचक विश्व मानव ने लिखा–"ये बहुत विद्वान व्यक्ति हैं पर पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी की तरह विद्वता अभी पक नहीं पाई है। मेधा प्रखर है और हृदय बहुत भरा हआ है, अतः कहीं–कहीं

आवश्यकता से अधिक उड़ेल देते हैं। इनके निबन्धों में वैचारिक चिन्तन का स्वर भले ही प्रखर हो लेकिन इन्होंने कभी लालित्य की धरती को नही छोड़ा। इसी जमीन पर इनके सार्थक विचारों की खोज निरंतर प्रवहमान रहीं अपनी उर्वर कल्पना शक्ति से भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों को साक्षात् करने का ऐसा सामर्थ्य इनसे पहले हजारी प्रसाद द्विवेदी में ही था, और राय साहब ने उन्हीं से यह शक्ति प्राप्त कर हिन्दी निबन्ध साहित्य में भारतीयता और लोकजीवन की गहरी सम्पृक्ति का दर्शन कराया हैं –

'एक नदी इरावदी' उनका एक ऐसा ही भावात्मक निबन्ध है। कुबेरनाथ राय ने इस निबन्ध में प्राचीन काल के वृहतर भारत के 'सप्त सिन्धु' की त्रिधारा इरावदी मेनान और मीकड़ का सांस्कृतिक दृष्टि से अवलोकन किया है। इस निबन्ध की मूल चेतना और उसका स्वर भारत की विराट संस्कृति को अपनी वाणी द्वार गौरव मण्डित करना है। अतीत, वर्तमान, और भविष्य के त्रिकोण में राय साहब ने अपने विचारों की जिस श्रृंखला को अपने निबन्धों में स्थापित किया उसी श्रृंखला में 'एकं नदी इरावदी' प्राचीन और वर्तमान की सशकृियों में लोक जीवन को यथार्थ प्रस्तुत करती है।

'एक नदी इरावदी' में राय साहब ने दूरारूढ़ कल्पना से तैरते हुए प्राचीन भारतीय संस्कृति की प्राचीन प्रज्ञा और दक्षिण पूर्व एशिया की भारतीयपरक जीवन–संस्कृति का मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है। भावुकता के साथ यथार्थ के तीखे एहसास की मनमोहक अभिव्यकित द्वारा राय साहब ने इस निबन्ध में भारतीय ज्ञान और दर्शन की यात्रा का विस्तृत वर्णन किया है। 'वर्मा में प्रचलित 'महाजनक जातक की कल्पित की को आधार बनाकर लेखक ने उसमें दक्षिण – पूर्व एशिया तक फैली भारतीय संस्कृति को चित्रित किया हैं।

लोक जीवन के प्रति अपनी गहरी अनुराग भावना के कारण ही कुबेरनाथ राय ने सप्त सिंध के मृत संदर्भों को जीवित कर भारतीय अस्मिता को एक नया आयाम दिया है। उनकी दृष्टि में यह नदी केवल 'नदी नहीं है। बल्कि इसके भीतर और बाहर भारतीय जीवन संस्कृति की साधना का विशाल इतिहास है। अपनी संस्कृति की असंख्या छवियों की खोज में ही लेखक दक्षिण – पूर्व एशिया के भौगोलिक परिवेश की साम्यता को लक्षित किया है। जहां लेखक के लिए यह नदी परम्परा की पृष्ठभूमिं में बिखरे हुए अमूल्य जातीय संस्कारों की द्योतक है वहीं यह भारतीय संस्कृति की परम्परागत शुधिपरक मूल्यवादी ससा के स्मृति खंडों की खोज भी करती है। इसीलिए लेखक कहता है –"हम तो बुद्ध ह्रदय की इस पवित्र भूमि में हजार – हजार वर्ष से भली स्मृतियों की खोज में आए हैं। अपनी व्यक्तिगत स्मृतियों की बात में नहीं करता हूँ। मैं अपने अन्दर भारतीय इतिहास का आवेश धारण करके बोल रहा हूं। अतः मेरा तात्पर्य जातीय स्मृतियों से है क्योंकि भीकाह – सेतांग – इरावरदी ये तीनों दक्षिण पूर्व एशिया बिखरी भारतीय अनुस्मृतियों की त्रिधारा है।

कुबेरनाथ राय अतीत की सम्भ्रांत सांस्कृतिक चेतना को काल के गर्त में मृत पड़े नही देख सके। महान् संस्कृति कभी भी मरती नहीं है, वह अतीत में कहीं सिमट जाती है। लेखक उसकी खोज को आधुनिक जीवन के लिए आवश्यक मानता है। उसे आर्य संस्कृति के अनेक तत्व भारतीय किरात निषाद संस्कृति से विकसित दिखाई देते हैं। वर्मा के लोग भी लेखक की दृष्टि में उसी परम्परा से सम्बद्ध है। इसीलिए हिमालय के उपखंड से जन्मी वर्मा की इस किरातवादी नही अर्थात इरावती का काल्पनिक प्रसंग लेखक को भारत के अस्मितीय गौरव के अनुरूप लगा जिसे उसने अपने बौद्धिक चिन्तन द्वारा लक्षित किया है।

कुबेरनाथ राय अतीत की सम्प्रांत सांस्कृतिक चेतना को काल के गर्त में मृत पड़े नही देख सके। महान् सस्कृति कभी भी मरती नहीं है, यह अतीत में कही सिमट जाती है। लेखक उसकी खोज को आधुनिक जीवन के लिए आवश्यक मानता है। उसे आर्य संस्कृति के अनेक तत्व्व भारतीय किरात निवाद संस्कृति से विकसित दिखाई देते है। वर्मा के लोग भी लेखक की दृष्टि से उसी परम्परा से सम्बद्ध है। इसीलिए हिमालय के उप खंड से जन्मीं वनों की इस किरातवादी नदीं अर्थात इरांवती का काल्पनिक प्रसंग लेखक को भारत के अस्मितिय गौरव के अनुरूप लगा जिसे उसने अपने बौद्धिक चिन्तन द्वारा लक्षित किया है।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन और मध्यकालीन धर्मसाधनाओं और सम्प्रदायों का महती योगदान रहा है। इनकी उपादेयता को कदापि नकारा नहीं जा सकता। परिवर्तन की धारा में बदलते 'समसामयिक और जगत से विकसित और पोषित होती भारतीय संस्कृति भारत की सीमाओं को त्याग विश्व में अपनी गहरी छाप छोड़ चुकी हैं। कुबेरनाथ राय ने इसी प्राचीन और मध्यकालीन साधनाओं और सम्प्रदायों की विचारणा और पृष्ठभूमि को 'एक नदी इरावदी' में नवीन विचार गरिमा के साथ प्रस्तुत किया है। बौद्ध धर्म की विराट दार्शनिकता की गम्भीर वीथियों में गूंजती विपुल ज्ञान सामग्री को लेखक ने कल्पना की पुष्ठभूमि में सहजता से उतारकर उसका दर्शन कराया है। देखा जाऐ तो 'एक नदी इरावदी' भारतीय संस्कृति की सम्भ्रान्त सांस्कृतिक चेतना में भारतीय मूल्यों को खोज उन्हें स्थापित करने वाला ललित निबन्ध है।

ललित निबन्धों की अपनी एक अलग परम्परा है। इसलिए उसके भीतर उसकी अपनी तात्विक सत्ता विद्यमान है। एक नदी इरावदी' को यदि ललित निबन्ध की तात्विकता के आलोक में देखा जाए तो एक श्रेष्ठ निबन्ध है। ललित निबन्धों में जहां राग – तत्व की गद्य प्रधानता होती है वहीं बौद्धिक चिन्तन का स्पर्श भी भावों और विचारों की संगुफित रचना – पद्धति द्वारा ही ललित निबन्धकार अपनी अनुभूतियों को सहजता से प्रस्तुत कर पाने में सक्षम होता है।

कुबेरनाथ राय ने 'एक नदी इरावदी' में बुद्धि और अनुभूति दोनों की सार्थक अभिव्यक्ति की है। शास्त्र ज्ञान और प्रखर पांडित्य में ओत – प्रोत उनकी प्रज्ञा छोटे –छोटे प्रसंगों को भी व्यापक अर्थ शाक्ति प्रदान करने में सक्षम रही है। 'इरावदी' के मृत संदर्भ को 20वी शताब्दी में सार्थक ओर अस्मितिय गौरव के रूप में देखने हुए लेखक चिन्तन करता है। – ''समस्त दक्षिण पूर्वे एशिया के हृदय में असंख्य नन्हें – नन्हें भारतवर्ष आज इतिहास के दबाव में औरों की दृष्टि में मृत जीवाश्म जैसे लग सकते हैं। परन्तु हमारे लिए वे मृत 'जीवशम नहीं हो सकते हैं। क्योंकि राष्ट्र के रूप में, आकृति परिवर्तन के बावजूद हम अब भी जीवित है, अब भी अस्त नहीं हुए है, अतः हमारा कोई भी विग्रह कहीं भी हो, उसे देखकर हमें सुख मिलने 'लगता है। असल बात में अनुभूति और रसबोध की राजनीति के बनिये मेरी बात नामंजूर भी करें तो भी परवाह नहीं, में अपने सामूहिक 'स्व' की असंख्य छवियों को देखूंगा ही। "हमारी संस्कृतिविश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति है। इसलिए वह हजारों – हजार वर्ष के बाद भी जीवन्त है। लेखक उसे 'मृत – जीवशम' के रूप में अस्वीकार कर देता है। अपनी राय चेतना और जीवानन्द की भूमिका में रहकर भी हमने वर्ष तक अपनी जीवन –यात्रा को निरन्तर गतिमान बनाए रखा। लेखक का यह चिन्तन कपोल कल्पित नहीं। विश्व में आज भी यह यथार्थ सभी स्वीकारते हैं कि हम सबसे प्राचीन है। इस प्रमाण विश्व की धरती पर सर्वत्र विद्यमान हैं। लेखक 'इरावदी और उसके आस पास के परिवेश की व्यापकता में भारतीय जीवन की सत्यता को अपने चिन्तन द्वारा स्पष्ट करता है।

कुबेरनाथ राय का बौद्धिक चिन्तन वायवी नहीं वरन वह तर्क की कसौटी पर खरा उतरता हैं। राय साहब अपने चिन्तन – मन की विचारणा में सार्थक तर्क देकर उन्हें पुष्टि प्रदान करते हैं। इरावदी की डेल्टा भूमि में मान लोगों की सभ्यताओं की विकसित संस्कृति को नष्ट होने और उनके अपटकल होने के संदर्भ में लेखक तक देते हुए कहता है– "इरावदी की डेल्टा भूमि में ही था (मोड़) लोगों की पेगू और थाटोन नामक बस्तियां जिनके भारतीय नाम क्रमशः हंसावती और सधुर्मावती हैं। ये अत्यन्त विकसित सभ्यताएं रही होगी। इनके शिल्पशेष इस बात के साक्षी हैं। परन्तु 10वीं शती में मध्य वर्ग के 'पगान' नरेशों ने इस मान संस्कृति को चूर्ण – विचूर्ण कर डाला। परन्तु मान्वंशेय बौद्ध गुरु शीलअईन को प्रभाव में आकर आक्रमक राजा अणुव्रत या अनिरुद्ध उसी प्रकार परिवर्तित हो गया जैसे कलिंग विजय के बाद सम्राट अशोका । मध्य बर्मा के पगान महायानी थे परन्तु पराजित 'मानखोर' संस्कृति के संपर्क में आने पर ये हीनमानी हो गए। मध्य बर्मा ने जो बर्मी संस्कृति का हृदय रचना है। इन्हीं पराजित 'मानू' गुणों से वर्णमाला, लिपि, शिल्प, पगोड़ा शिल्य तथा धर्म को प्राप्त किया। इस प्रकार मान हार तो गये पर उनकी संस्कृति जीत गई आज सारा बर्मा हीनयानी है। बर्मा में इस 'मान' या मोड, को ताइ–लड,

या तैलंग भी कहा जाता था। डॉ. रमेशचन्द्र मजुमदार की धारणा है कि सारे दक्षिण और उत्तर भारत में एक जाति विशेष रहती थी, जिसके नाम में 'मल' या 'माल' ध्वनि धातु का प्रयोग होता था। तैलंग भी इसी जाति की शाखा में आते हैं और सम्भवतः यह 'मानखमेर' नस्ल के निषादों का ही एक अपरकुल या गोष्ठी है।

ऐसे ही इतिहास और भूगोल के बारे में चिन्तन एवं मनन करते हुए कुबेरनाथ राय ने अपने व्यावहारिक और तार्किक ज्ञान का परिचय दिया है। लेखक की दृष्टि में इतिहास की जड़ता मनुष्य में संवदेनाओं को नहीं जगाती जबकि भौगोलिक परिवेश मानव इन्द्रियों को अपनी मोहक छवियों से आकर्षित कर स्पंदित करता है। देखा जाए तो कुबेरनाथ राय की बौद्धिक चेतना किसी नवीन विचारधारा की तरह पाठकों को गुढ़ और गम्भीर के जाल में नहीं फंसाती बल्कि अपनी प्रतिभा द्वारा उन्हें सजीव और तार्किक बनाकर वर्तमान के सामने लाकर खड़ा कर देती है।

कुबेरनाथ राय के निबन्धों में बुद्धि तत्व के साथ–साथ अनुभूति तत्व भी प्रखर रूप में विद्यमान है। अपने निजी विचारों की अभिव्यक्ति करते हए निबन्धकार अपनी वैयक्तिकता को प्रकट करता है। कुबेरनाथ राय की अनुमति भी अत्यन्त प्रखर है, लेखक अपने जीवनानुभवों को अक्सर अपनी रचनाओं के माध्यम से ही सामने लाता है। 'एक नदी इरावदी' में भी लेखक की निजी अनुभूतियां अत्यन्त मार्मिक और सजीव रूप से आई हैं। ललित निबन्धों में अनुभतियों की अभिव्यक्ति ही निबन्ध को संजीव बना देती है जो पाठक को भीतर तक स्पर्श करती हैं। कुबेरनाथ राय ने इस निबन्ध में अपनी भावानुभूति के माध्यस से ही 'क्योन जित्थ' द्वारा नालान्दा बौद्ध विहार के आनन्द मन्दिर का अत्यन्त स्न्दर रागात्मक चित्र – अंकित किया है–"आज भी इसकी ताम्रचूडा संध्या राग में स्वर्ण वर्ण की हो उठती है। और सारा संगमरमर गात्र अरूणाम हो उठता है। भीतर जब बुद्ध की सांध्य आरती के साथ बनी स्तोत्रों का पाठ होने लगता है तो लगता है कि इस मन्दिर के शिखरों पर अदृश्य देवगण उतर आये है और बुद्ध वन्दना को कान लगाकर सुन रहे हैं। इस मन्दिर में दीवारों पर उत्कीर्ण 'पट' है, करीब डेढ़ हजार और कलप वल्लरी तथा मंगल प्रतीकों से उत्कठित अस्सी विशाल 'तांखे'। है। समस्त दक्षिण – पूर्व एशिया में इस मन्दिर की ख्याति है – कम्बोडिया की श्रीवाट और अंगकोर तथा जावा के बोरोबुदुर एवं प्राम्बानन् के ही बराबर। जनश्रुति है कि मन्दिर को निर्माण मानदीय हाथों से नहीं बर्मा के सैंतीस मायानटो की पग पर सिद्ध सुरों की झंकार उठ़ और चन्द्र ज्योत्सना में वह झंकार धीरे – धीरे प्रस्तराभूत होती रही। रात भर नीलारुण फूटने के पूर्व एक संगमरमर का मन्दिर तैयार हो गया था।

लेखक का मन इरावदी की डेल्टा भूमि के अभिराम स्वरूप का विमुग्धकारी रूप अंकित करते हुए उसकी अभिव्यक्ति देता है। अपनी भावानभति की उदात्त जमीन पर खड़े होकर कुबेरनाथ राम ने भारतीय संस्कृति की गहरी व्याख्या की है।

ललित निबन्धों में कलत्ना की प्रधानता उन्हें उर्वर बनाती है। विचारों की गम्भीरता में कल्पना की उर्वर शक्ति ही उन्हें ग्राहय बनाने में सक्षम होती है। कुबेरनाथ राय के अधिकांश निबन्धों में कल्पना की उड़ान ऊंचे तक है। वे यत्र –तत्र अपनी कल्पना शक्ति से गम्भीर –से – गम्भीर विषय में प्राण शक्ति फूंक देते हैं। 'एक नदी इरावदी में लेखक ने 'महाजनक की नौका यात्रा की कल्पित कथा के आलोक में भारतीय संस्कृति की इन्द्रधनुषी प्रकाश – छटा को बिखेरा है। आर्य जाति की महान सभ्यता की विकसित परम्परा में भारतीय दर्शन के विभिन्न चरणों की छवियों का अंकन कर कुबेरनाथ राय ने कल्पना में इतिहास की सार्थकता को स्पष्ट किया। यह कथा भले ही किसी के लिए कोई महत्व रखे या न रखे किन्तु भारत के लिए यह उसकी अस्मिता को पहचानने में विशेष महत्व रखती है। बर्मा की धरती पर भारत की पहचान की सार्थक खोज कर लेखक ने अपनी प्रतिभा का व्यापक परिचय दिया है।

ललित निबन्धों की एक अन्य विशेषता उनकी एकसत्रात्मकता होती है। उसके अभाव में निबन्ध में संवदेनात्तमक अनुभूति पूर्णतः उभर नहीं पाती और वह क्षीण पड़कर बह जाती है। यह एक सूत्रात्मकता तथा सम्भव है जब निबन्धकार अपने 'स्व' को 'पर' के साथ आत्मीय रूप से सम्बद्ध करें। लेखक की वैयक्ति अनुभूति ही पाठक के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सक्षम होती है। कुबेरनाथ राय के निबन्धों में उनकी आत्मीयता इस तरह घुल मिल गई है कि यदि निबन्ध के किसी एक वाक्य या अनुच्छेद को हटाया या उसका स्थान परिवर्तित किया जाए तो निबन्ध या मूल भाव ही बिखर जाएगा।

'एक नदी इरावदी की विषय वस्तु में कुबेरनाथ राय ने अपनी कुशल प्रतिभा से निबन्ध का आरम्भ स्वयं को एक जातिस्मर व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत कर दिया है और सूत्र को बांधने के लिए एक कल्पित कथा का आधार प्रस्तुत कर उसे क्रमबद्ध रूप से विकसित किया। दक्षिण – पूर्व एशिया की जातीय संस्कृति की विकसित संस्कृति का क्रमितक विकास निबन्ध की मूल विषय वस्तु को बिखरने नहीं देता और निबन्ध को अंत तक लेखक की मूल भाषानाभुति और संवेदना को स्थापित करने में सक्षम रहा है।

कुबेरनाथ राय के निबन्धों की सबसे खास विशेषता उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति है। सरल और गम्भीर दोनों ही तरह की लेखन शैली में लेखक पारंगत है। ललित निबन्धों ने सरसता और लालित्यात्मकता के गुण तो उसकी भाषा – शैली की शक्ति है। कुबेरनाथ राय ने 'एक नवी इरावदी' में जहां रोचक और ललित्यपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है वहीं उसमें चिन्तन की बौद्धिक अभिव्यक्ति भी विद्यमान है। भारतीय संस्कृति को हजारों वर्ष पूर्व की विचारणा में लेखक ने इस निबन्ध में विचार प्रधान शैली का प्रयोग किया है, लेकिन विचारों की तर्कबद्ध व्याख्या देते हुए भी लेखक ने अपनी भावात्मकता द्वारा उसे बोझिल नहीं होने दिया। बीच –बीच में आलंकारिक शैली से लेखक उसे रोचक भी बनाने का प्रयास करता रहा है। तत्सम प्रधान होते हुए भी इस निबन्ध की भाषा कवित्वमयी है और लालित्यात्मकता का गुण इसमें विद्यमान है।

वास्तव में कुबेरनाथ निबन्ध 'एक नदी इरापदवी' में उनके चिन्तनशील व्यक्तित्व का प्रभाव लक्षित होता है वही उनकी सरल और प्रगाढ़ भावुकता भी निबन्ध को गतिशील बनाती है। लोक जीवन की सांस्कृतिक चेतना में कुबेरनाथ राय का लेखक मन अतीत और वर्तमान दोनों ही धुरियों को समानान्तर चलाते हुए आगे बढ़ता है ओर अपने लक्ष्य तक पहुंच जाता है।

हिन्दी के ललित निबंधकारों में कुबेरनाथ का अद्वितीय स्थान है। उनके निबंध व्यक्ति प्रधान निबंध हैं। जिनमें मौलिक और पादित्य की छाप के साथ व्यंग्य विनोद का पट भी विद्यमान है। उनके लिए लिखे गए निबंध रोचक, ज्ञानवर्धक, आकर्षक और मनोरंजक है। भले ही उनके सरोकार परंपरावादी हों, परंतु उनकी दृष्टि नूतन से आधुनिकतावादी है। उनके निबंधों में वाक्यों के ऐसे चंदन कोष्ठ है। जिनमें से भावों की सुगंध निकलती रहती है। डॉ. रामचंद्र तिवारी ने कुबेरनाथ राय के निबंधों की विशेषताओं पर टिप्पणी करते हुए लिखा है "श्री कुबेरनाथ के निबंधों में लालित्य – विधायक तत्त्वों के साथ अनुशीलन एवं चिंतन के तत्व भी लक्षित होते हैं। प्राचीन मिथकों की नवीन सांस्कृतिक व्याख्या, आदिम लोक जीवन की रसगंध, व्यापक साहित्यानुशीलन से लब्ध विवेक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक दृष्टि की सजगता, तत्व चिंतन की गंभीर मुद्रा अनेक अवसरों पर ऐतिहासिक भाषा वैज्ञानिकों की भूमिका में पहुंचकर शब्द विशेष के निर्माण में प्रयुक्त विभिन्न ध्वनियों के विश्लेषण की अपूर्व क्षमता के सम्मिलित कौशल ने श्री राय को विशिष्ट रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है।

कुबेरनाथ राय के प्रसिद्ध निबध संग्रह है 'प्रिया नीलकण्ठी', 'रस आखेटक', 'गंध मादन', "विषाद बॉसुरी', 'पर्णमुकुट', 'कामधेनु', 'महाकवि की तर्जनी', 'त्रेता का बृहत् साम' आदि। इन निबंधों में संकलित निबंध चार प्रकार के हैं –

विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक और विवरणात्मका भावात्मक निबंधों को ही ललित निबंध कहा जाता है। उनके लिखे कुछ प्रसिद्ध ललित निबंध हैं – 'रस आखेटक', 'देह वल्कल', 'जम्बुक 'विरुपक्ष', 'किरण सप्तपदी', 'चित्र विचित्र', 'किरात नदी में चन्द्र मधु', 'मराल', 'शरद बांसुरी और विपन्न मराल', 'हरी – हरी दूब और लाचार', 'दूपण विश्वासी', 'दृष्टि अधिसार' आदि। इन निबंधों में लेखक की कल्पना का मृगशिरा', उन्मुक्त विलास एवं मुक्त मन का आवेग परिलिक्षित होता है। ललित निबंधों में लेखक विषय पर केन्द्रित नहीं रहता, बल्कि उस विषय से जुड़े हुए अन्य संबंधित राज्यों का विवरण भी मनोरंजक ढंग से समाविष्ट करता है। कुबेरनाथ के वर्णनात्मक निबंधों में अत्यन्त आकर्षण है। 'कजरी वन में राजहंस' नामक निबंध में उन्होंने रिपोर्ताज शैली में असम की नदियों, पहाड़ियों और खेतों का वर्णन किया है। यह यात्रा चित्र असम के संपूर्ण परिवेश को उभारता प्रतीत होता है। विवरणात्मक निबंधों में उन्होंने आत्मकथात्मक शैली का आश्रय लेकर यूरोप के कतिपय प्रसिद्ध कवियों के कतित्व की आलोचना की है।

कुबेरनाथ राय की मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय भी उनकें निबंधों में मिलता है। ये व्यापक लोक कल्याणकारी दृष्टि से साहित्य सृजन करते थे। इसलिए उन्होंने अपने सारे साहित्य को अपने 'अंतर का हा–हाकार' कहा है। यही मानवतावादी दृष्टि बार – बार उन्हें सामान्य ग्रामीण जन की ओर मोड़ती है। महुआ की मधुरिका तथा उससे जुड़े रस प्रसंगों का चित्रण करते – करते उसकी दृष्टि भारत के करीब पर आकर टिक जाती है "जब विरही यक्ष के मेघ रामगिरि पर झुकते हैं, जब कामियों की प्रिय ऋतु पावस धरती पर उतरती है, तब हिंदुस्तान के गरीबों की मृत्यु क्षुधा का आधार होता है। अरहर की थोडी –सी दाल में काफी, महुआ के फूल और नमक डालकर पका लेते हैं निबंधकार का कवि हृदय अपने ग्राम प्रांतर के निर्धनों की असहाय गरीबी की पीडा से स्थान–स्थान पर उद्वेलित होता है। इसी क्रम में हुए निबंधों में गांव के दलितों द्वारा बैलों के गोबर से अनपचाया अन्न निकाल कर धोकर सरखाने तथा खाने का चित्रण किया गया है। एस स्थल जहाँ कहीं भी आते हैं, लेखक की मानवतावादी दृष्टि का परिचय मिलता है। उनके निबंधों में सांस्कृतिक संदर्भ से फटते हुए जीवन के आधुनिक आयामों तथा उनमें से झाँकते हुए जीवन को देखा जा सकता है। उनके निबंध भारतीय संस्कृति के विकास में आर्य और आर्योतर जातियों के सश्लिष्ट योगदान को उजागर करते हैं। आगम दर्शन तथा सांख्य तथा की मौलिक धारणाओं के लिए हम किरात – निषाद संस्कृति के ऋणी हैं। मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया है और मार्सवाद की व्यावहारिक परिणति से पूर्णतया असहमत हैं। नीलकंठ उदास' में कुबेरनाथ जी ने स्पष्ट किया है कि आज का रचनाकार रोटी दाल के अभाव के दुख को ही अपनी रचनाओं में प्राथमिकता दे रहा है। स्वयं लेखक ने अपने ललित निबंधों का परिचय देते हुए लिखा है कि– ये निबंध मेरे धरती के जन्म लेने के बाद लिखे गए हैं। इसी से इनमें धरती के क्रोध, धरती की त्राहि और धरती की करूणा को समावेश हो गया है। फलतः ये ललित निबंध "क्रुध ललित' स्वभाव वाले बन गए हैं। इन्हें केवल "ललित कहना इनका अधूरा परिचय है।'

'गंध–मादन' निबंध –संग्रह के अधिक से अधिक निबंधों में निबंधकार में आधुनिक भारत में मिले हुए जीवन– मूल्यों के विघटन पर चिंता व्यक्त करते हुए अपने विचारों को बड़ी गहराई के साथ प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही निबंधकार ने हिप्पियों के जीवन जीने के व्यवहार पर भी अपनी राय व्यक्त करते हुए उनसे पाठकों के परिचित कराने का सफल प्रयास किया है। 'कामधेनु निबंध संग्रह में उषा की षोडेशी नववधू के रूप में तथा सूर्य को उसके साथ चलने वाले आखेटक के उन दोनों के मध्य कल्पना के स्तर पर एक वार्तालाप कराया गया है। राक्षस के रूप ने कुबेरनाथ ने मेघों का मानवीकरण करके उषा के अपहरण करने तथा सूर्य के उस पर कुछ हो जाने की घटना का चित्रण भी किया है। वहीं 'विषाद योग' में संकलित निबंधों की विशेषता यह है कि इनमें भी विविधता है जिसके कारण निबंधों में हमें सास्कृतिक चेतना के दर्शन होते हैं। उन उन्होंने 1960 के भारत के युवाओं को अलग ढ़ंग से देखते हुए उनके आक्रोश को व्यक्त किया है।

स्वतंत्र पथ पर अग्रसर होने वाले कुबेरनाथ राय जी के निबंधों में अस्तित्ववाद समाजवाद आक्रोश और समाजवाद रसमय शैली में व्यक्त हुए हैं। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से उनके अनेक निबंधों में प्रताप नारायण मिश्र अथवा बालकृष्ण भट्ट के निबंधों की सी शैली अवलोकनीय है। भावात्मक निबंधों में 'मृगशिरो।', 'एक महाश्वेता', 'रात्रि', 'सारंग', 'शरद बाँसुरी', 'कवि तेरा मोर आ गया। चित्र विचित्र', 'जल दो', 'स्फूटिक डाल दो', 'उजड्ड बसंत' और 'हिप्पी जलचर' आदि प्रमुख हैं। इनमें उनकी कल्पना की ऊँची उड़ान, मन के आवेग का उन्मुक्त विचरण तथा उर्वर प्रतिभा के दर्शन होते हैं। राय जी ने वर्णनात्मक निबंधों में कहीं तो असम के अहोम राजाओं द्वारा निर्मित विशाल मंदिरों एवं अश्वक्लान्ता पहाड़ियों का सजीव चित्रण किया है तो कहीं 'एक नदी इरावरती' में वर्मा मिलान करते हुए वहाँ की रीति – रिवाज, मान्यताओं, परंपराओं और सिद्धान्तों का विवेचन– विश्लेषण प्रस्तुत किया है। कुबेरनाथ राय ने 'मन पवन की नौका' की भूमिका में लिखा है– ''इस स्वाधिकार प्रयत्त' ललित निबंधकार की नाव भी कुछ ऐसी ही मनमानी नाव है और इस नाव से पाठक को जिन घाटों की सैर करायी गई है, वे इस प्रकार हैं – अगस्ततारा (इण्डोनेशिया), एक नदी इरावती (वर्ण), जलमाता नाम (सिआम) की काडगाया (कम्पूचिआ), सिंधु पार के मलय मारून (विविध), जावा के देशी पराणों में वाली दीप का ब्राह्मण पुनः इण्डोनेशियाई संस्कृति से जुडे निबंध है।''

कुबेरनाथ राय जी के निबंधों में बुद्धि तत्व के साथ – साथ कल्पना तत्व, शैली तत्व और अनुभूति तत्व का सुंदर सम्मिश्रण है। उसमें अहंतत्व या वैयक्तिता का समावेश भी दिखाई देता है। 'शब्दश्री' से नामक निबंध में वे लिखते हैं – "अरे, मुझे तो अफसोस है कि माता–पिता ने मझे 'कबेर' के नाक की नकेल क्यों पहनाई और कुबेरनाथ करके एक बड़ा अड़बंगी, दरिद्र और सनातन हिप्पी देवता का नाम दे डाला जो अपने पढ़ने के लिए एक घोड़ा तक नहीं जुटा पाता। हाथी और विमान की तो बात ही क्या?' उनके निबंधों में गंभीर चिंतन मनन के द्वारा किसी निष्कर्ष पर किसी निष्कर्ष पर पहुंचने की प्रकृति परिलक्षित होती है। इसके निबंधों की मूल चेतना और मूल स्वर सांस्कृतिक है। वे पौराणिकता का आवरण डालकर भावुकता के साथ वर्तमान यथार्थ की अभिव्यक्ति बड़ी कुशलता के साथ करते है। भारत के प्राचीन सांस्कृतिक गमन में निर्बाध उड़ाने भरता हुआ उनका मन वर्तमान के यथार्थ पर उतरकर विमान लेता दिखाई देता है। समकालीन लोक जीवन और ग्रामीण संस्कृति के प्रति उनके मन में गहरी रूचि है तथा नागरिक जीवन एवं नागरिक संस्कृति के प्रति गहरी वितृष्णा है।

कुबेरनाथ के निबंधों की भाषा में लालित्य, रोचकता, पांडित्य सरलता एवं बुद्धि वैभव दिखलाई पड़ता है। उससे अधे गांभीर्य, लाक्षणिकता, आलंकारिकता, प्रतीकात्मकता एवं उक्तित वैचित्र्य भी विद्यमान स्थलों पर उसमें लाक्षणिकता का समावेश हो जाता है। उनकी भाषा परिमार्जित, संस्कृतनिष्ठ, तत्सम के शब्द भी दिखाई देते है। उनके निबंधों की भाषा प्रसंगानुकुल परिवर्ति होती रहती है। उनकी भाषा में मुहावरे व कहावते भी प्रयुक्त हुई है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि कुबेरनाथ के निबंधो में राजनितिक, समाजिक, आर्थिक परिवेश को उभारने का प्रयास किया है। वे अपने निबंधों में समसामयिक समस्याओं को उठाकर उनका समाधान खोजना चाहते हैं। उनके निबंधों में पिपुल शास्त्र ज्ञान अगाध पांडित्य एवं भाषा की अपूर्व शक्ति देखी जा सकती है। उनकी लाक्षणिक भाषा ने अर्थ गांभीर्य उत्पन्न करने में विशेष योगदान दिया है। सांस्कृतिक बोध भी उनके निबंधों में पर्याप्त मात्रा में उभरा है।

'आखेटक', 'गंधमादन', 'विषादयोग', 'पर्णमूक्ट', 'मन पयन की नौका', "प्रिया नीलकंठ में हिन्दी के ललित निबंधकारों में उनका स्थान अद्वितीय है। उनके निबंध व्यक्ति प्रधान निबंध है। मौलिक चिंतन, पांडित्य की छाप के साथ – साथ व्यंग्य विनोद का पुट भी विद्यमान है। इनके लिखे गए निबंध रोचक, ज्ञानवर्द्धक, आकर्षक एवं मनोरंजन है। वे हिन्दी के एक ऐसे निबंधकार है। इनका हिन्दी निबंध साहित्य में विशिष्ट योगदान है। एक ललित निबंधकार के रूप में उन्होंने हिन्दी के साहित्य की पर्याप्त श्री वृद्धि की है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. 'प्रिया नीलकण्ठी' किसकी रचना है?
2. कलकत्ता विश्वविद्यालय से कुबेरनाथ जी ने किस विषय में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की?

8.4 कुबेरनाथ राय की निबंध कला की विशेषताएँ

हिन्दी के ललित निबंधकारों में कुबेरनाथ का अद्वितीय स्थान है। उनके निबंध व्यक्ति प्रधान निबंध हैं जिनमें मौलिक और पांडित्य की छाप के साथ – साथ व्यंग्य विनोद का पुट भी विद्यमान है। उनके लिए लिखे गए निबंध रोचक, जानवर्द्वक, आकर्षक और मनोरंजक हैं। भले ही उनके संस्कार परंपरावादी हों, परंतु उनकी दृष्टि नूतन व आधुनिकतावादी है। उनके निबंधों में वाक्यों के ऐसे चंदन काष्ठ हैं जिनमें से भावों की सुगंध निकलती रहती है। डॉ. रामचंद्र तिवारी ने कुबेरनाथ राय के निबंधों की विशेषताओं पर टिप्पणी करते हुए लिखा है – "श्री कुबेरनाथ के निबंधों में लालित्य – विधायक तत्वों के साथ अनुशीलन एवं चितन के तत्व भी लक्षित होते हैं। प्राचीन मिथकों की नवीन सांस्कृतिक व्याख्या, आदिम लोक जीवन की रसगंध, व्यापक साहित्यानुशीलन से लब्य विवेक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक दृष्टि की सजगता, तत्व चिंतन की गंभीर मुद्रा अनेक अवसरों पर ऐतिहासिक भाषा वैज्ञानिकों की भूमिका में पहुँचकर शब्द विशेष के निर्माण में प्रयुक्त विभिन्न ध्वनियों के विश्लेषण की अपूर्व क्षमता के सम्मिलित कौशल ने श्री राय को विशिष्ट रचनाकार के रूप में प्रतिष्टित कर दिया है।

कुबेरनाथ राय के प्रसिद्ध निबंध संग्रह हैं – 'प्रिया नीलकण्ठी', 'रस आखेटक', 'गंध मादन', 'निषाद बांसुरी', 'पर्णमुकुट', 'कामधेन', 'महाकवि की तर्जनी', 'त्रेता का वृहत् साम' आदि। इन निबंधों में संकलित निबंध चार प्रकार के हैं–

विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक और विवरणात्मक। भावात्मक निबंधों को ही ललित निबंध कहा जाता है। उनके लिखे कुछ प्रसिद्ध ललित निबंध हैं– 'रस आखेटक', 'वेह वल्कल', 'जम्बुक', 'विरुपक्ष', किरण सप्तपदी', 'चित्र विचित्र', 'किरात नदी में चन्द्र मध', 'मराल', 'शरद बाँसुरी और विपन्न मराल', 'मृगशिरा', हरी–हरी दूब और लाचार', 'वृपण विश्वासी', 'वृष्टि अभिसार' आदि। इन निबंधों में लेखक की कल्यना का उन्मुक्त विलास एवं मुक्त मन का आवेग परिलक्षित होता है। ललित निबंधों में लेखक विषय पर केन्द्रित नहीं रहता, बल्कि उस विषय से जुड़े हुए अन्य संबंधित तथ्यों का विवरण भी मनोरंजक ढंग से समाविष्ट करता है। कुबेरनाथ के वर्णनात्मक निबंधों में अत्यन्त आकर्षण है। 'कजरी बन में राजहंस' नामक निबंध में उन्होंने रिपोर्ताज शैली में असम की नदियों, पहाड़ियों और खेतों का वर्णन किया है। यह यात्रा चित्र असम के संपूर्ण परिवेश को उभारता प्रतीत होता है। विवरणात्मक निबंधों में उन्होंने आत्मकथात्मक शैली का आश्रय लेकर यूरोप के कतिपय प्रसिद्ध कवियों के कृतित्व की आलोचना की है।

कुबेरनाथ राय की मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय भी उनके निबंधों में मिलता है। ये व्यापक लोक –कल्याणकारी दृष्टि से साहित्य–सृजन करते थे। इसलिए उन्होंने अपने सारे साहित्य को अपने 'अंतर का हा – हाकर' कहा है। यही मानवतावादी दृष्टि बार – बार उन्हें सामान्य ग्रामीण जन की ओर मोड़ती है। महुआ की मधुरिका तथा उससे जुड़े रस – प्रसंगों का चित्रण करते – करते उसकी दृष्टि भारत के करीब पर आकर टिक जाती है – "जब विरही यक्ष के मेघ रामगिरि पर झुकते हैं, जब कामियों की प्रिय ऋतु पावस धरती पर उतरती है, तब हिंदुस्तान के गरीबों की मृत्यु क्षुधा का आधार होता है। अरहर की थोडी –सी दाल में काफी, महुआ के फूल और नमक डालकर पका लेते हैं निबंधकार का कवि हृदय अपने ग्राम प्रांतर के निर्धनों की असहाय गरीबी की पीडा से स्थान–स्थान पर उद्वेलित होता है। इसी क्रम में हुए निबंधों में गांव के दलितों द्वारा बैलों के गोबर से अनपचाया अन्न निकाल कर धोकर सरखाने तथा खाने का चित्रण किया गया है। एस स्थल जहाँ कहीं भी

आते हैं, लेखक की मानवतावादी दृष्टि का परिचय मिलता है। उनके निबंधों में सांस्कृतिक संदर्भ से फटते हुए जीवन के आधुनिक आयामों तथा उनमें से झाँकते हुए जीवन को देखा जा सकता है। उनके निबंध भारतीय संस्कृति के विकास में आर्य और आर्योतर जातियों के सश्लिष्ट योगदान को उजागर करते हैं। आगम दर्शन तथा सांख्य तथा की मौलिक धारणाओं के लिए हम किरात – निषाद संस्कृति के ऋणी हैं। मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया है और मार्सवाद की व्यावहारिक परिणति से पूर्णतया असहमत हैं। नीलकंठ उदास' में कुबेरनाथ जी ने स्पष्ट किया है कि आज का रचनाकार रोटी दाल के अभाव के दुख को ही अपनी रचनाओं में प्राथमिकता दे रहा है। स्वयं लेखक ने अपने ललित निबंधों का परिचय देते हुए लिखा है कि– ये निबंध मेरे धरती के जन्म लेने के बाद लिखे गए हैं। इसी से इनमें धरती के क्रोध, धरती की त्राहि और धरती की करूणा को समावेश हो गया है। फलतः ये ललित निबंध "क्रुध ललित' स्वभाव वाले बन गए हैं। इन्हें केवल "ललित कहना इनका अधूरा परिचय है।'

'गंध–मादन' निबंध – संग्रह के अधिक से अधिक निबंधों में निबंधकार ने आधुनिक भारत में फैले। हुए जीवन–मूल्यों के विघटन पर चिंता व्यक्त करते हुए अपने विचारों को बड़ी ही गहराई के साथ प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही निबंधकार ने हिप्पियों के जीवन जीने के व्यवहार पर भी अपनी तीखी प्रक्रिया व्यक्त करते हुए उनसे पाठकों के परिचित कराने का सफल प्रयास किया है। 'कामधेनु' निबंध–संग्रह में उषा की षोडशी नववधू के रूप में तथा सूर्य को उसके साथ चलने वाले आखेटक के रूप में बताकर उन दोनों के मध्य कल्पना के स्तर पर एक वार्तालाप कराया गया है। राक्षस के रूप में कुबेरनाथ राव ने मेघों का मानवीकरण करके उषा के अपहरण करने तथा सूर्य के उस पर क्रुध हो जाने की घटना का चित्रण भी किया है। वहीं 'विषाद योग' में संकलित निबंधों की विशेषता यह है कि इनमें विषय भी विविधता है जिसके कारण निबंधों में हमें सांस्कृतिक चेतना के दर्शन होते हैं। इन सभी निबंधों में उन्होंने 1960 के भारत के युवाओं को अलग ढंग से देखते हुए उनके आक्रोश को व्यक्त किया है।

स्वतत्र पथ पर अग्रसर होने वाले कुबेरनाथ राय जी के निबंधों में अस्तित्ववाद युवा आक्रोश और समाजवाद रसमय शैली में व्यक्त हुए हैं। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से उनके अनेक निबंधों में प्रताप नारायण मिश्र अथवा बालकृष्ण भट्ट के निबंधों की –सी शैली अवलोकनीय है। भावात्मक निबंधों में 'मृगशिरों', 'एक महाश्वेता' , 'रात्रि', 'सारंग', 'शरद बाँसुरी', 'कवि तेरा मोर आ गया', 'चित्र विचित्र', 'जल दो', 'स्फूटिक डाल दो', "उजड्ड बसंत'' और 'हिप्पी जलचर' आदि प्रमुख है। इनमें उनकी कल्पना की ऊँची उड़ान, मन के आवेग का उन्मुक्त विचरण तथा उर्वर प्रतिभा के दर्शन होते हैं। राय जी ने वर्णनात्मक निबंधों में कहीं तो असम के अहोम राजाओं द्वारा निर्मित विशाल मंदिरों एवं अश्वक्लान्ता पहाड़ियों का सजीव चित्रण किया है तो कहीं 'एक नदी इरावती' में बर्मा में सैर करते हुए वहाँ की रीति–रिवाज, मान्यताओं, परंपराओं और सिद्धान्तों का विवेचन –विश्लेषण प्रस्तुत किय है। कुबेरनाथ राय ने 'मन पवन की नौका' की भूमिका में लिखा है – 'इस स्वाधिकार प्रमत्त' ललित निबंधकार की नाव भी कुछ ऐसी ही मनमानी नाव है और इस नाव से पाठक को जिन घाटों की सैर करायी गई है, वे इस प्रकार हैं – अगस्ततारां (इण्डोनेशिया), एक नदी इरावरती (बर्मा), जलमाता में नाम (सिआम) की काडगाया (कम्पूरचिआ), सिंधु पार के मलयं मारूत (विविध), जावा के देशी पुराणों में बाली दीप का ब्राह्मण पुनः इण्डोनेशियाई संस्कृति से जुड़े निबंध हैं।

कुबेरनाथ राय जी के निबंधों में बुद्धि तत्व के साथ – साथ कल्पना तत्व, शैली तत्व और अनुभूति तत्व का सुंदर सम्मिश्रण है। उसमें अहंतत्व या वैयक्तिकता का समावेश भी दिखाई देता है। 'शब्दश्री' नामक निबंध में वे लिखते हैं – "अरे, मुझे तो अफसोस है कि माता – पिता ने मुझे 'कुबेर' के 'नाथ' की नकेल क्यों पहनाई और कुबेरनाथ करके एक बड़ा अड़बंगी, दरिद्र और सनातन हिप्पी देवता का नाम दे डाला जो अपने पढ़ने के लिए

एक घोड़ा तक नहीं जुटा पाता। हाथी और विमान की तो बात ही क्या? उनके निबंधों में गंभीर चिंतन मनन के द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहचने को प्रकृति परिलक्षित होती है। इनके निबंधों की मूल चेतना और मूल स्वर सांस्कृतिक पौराणिकता का प्रकृति डालकर भावुकता के साथ वर्तमान यथार्थ की अभिव्यक्ति बड़ी कुशलता के साथ करते है। भारत के प्राचीन सांस्कृतिक गमन में निर्बाध उड़ानें भरता हुआ उनका मन वर्तमान के यथार्थ पर उतरकर विश्राम लेता दिखाई देता है। समकालीन लोकजीवन और ग्रामीण संस्कृति के प्रति उनके मन में गहरी रुचि है तथा नागरिक जीवन एवं नागरिक संस्कृति के प्रति गहरी वितृष्णा है।

कुबेरनाथ के निबंधों की भाषा में लालित्य, रोचकता, पाडित्य, सरलता एवं बुद्धि मंथन दिखलाई पड़ता है। उसमें अर्थ गांभीर्य, लाक्षणिकता, आलंकारिकता, प्रतीकात्मकता एवं उक्ति वैचित्र्य भी विद्यमान है। भाव प्रधान स्थलों पर उसमें कोमलकांत अलंकृत पदावली दिखाई पड़ती है तो व्यंग्य–विनोद के स्थलों पर उसमें लाक्षणिकता का समावेश हो जाता है। उनकी भाषा परिमार्जित, संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली से युक्त खड़ी बोली हिंदी है जिसमें लोक प्रचलित उर्दू, फारसी शब्दों के साथ – साथ अंग्रेजी के शब्द भी दिखाई देते हैं। उनके निबंधों की भाषा प्रसंगानुकूल परिवर्तित होती रहती है। उनकी भाषा में मुहावरे व कहावतें भी प्रयुक्त हुई है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि कुबेरनाथ के निबंधों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवेश को उभारने का प्रयास किया है। वे अपने निबंधों में समसामयिक समस्याओं को उठाकर उनका समाधान खोजना चाहते हैं। उनके निबंधों में विपुल शास्त्र ज्ञान, अगाध पाडित्य एवं भाषा की अपूर्व शक्ति देखी जा सकती है। उनकी लाक्षणिक भाषा ने अर्थ गांभीर्य उत्पन करने में विशेष योगदान दिया है। सांस्कृतिक बोध भी उनके निबंधों में पर्याप्त मात्रा में उभरा है।

8.4.1 षोड्शी के चरण कमल' की भाषा – शैली

कुबेरनाथ राय हिन्दी निबंधकारों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। हिन्दी साहित्य को ललित निबंधों से समृद्ध करने वाले लेखक के रूप में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उनकी गणना आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र जैसे ख्यातिलब्ध निबंधकारों के साथ की जाती है। उनके निबंधों की भाषा में लालित्य, रोचकता, पांडित्य, सरलता और बुद्धि वैभव दिखाई पड़ता है। उनके अर्थ गांभीर्य, लाक्षणिकता, आलंकारिकता, प्रतीकात्मकता और उक्ति वैचित्य भी विद्यमान है। भाव प्रचन स्थलों पर उसमें कोमलकांत अलंकृत पदावली दिखलाई पड़ती है तो व्यंग्य–विनोद के स्थलों पर उनमें लाक्षणिकता का समावेश हो जाता है। उनकी भाषा परिमार्जित, संस्कृतनिष्ठ एवं तत्सम शब्दावली से युक्त खड़ी बोली हिंदी है, जिसमें लोक–प्रचलित उर्दू–फारसी के शब्दों के साथ अंग्रेजी भाषा के शब्द भी दिखाई देते हैं। 'पोडशी के चरण कमल' ललित निबंध में संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रचुरता अवलोकनीय है, जैसे–नभमंडल, चतुर्थभाव, सम्मुख, व्योम, गृह, कर्म, उपार्जन, चरणाम्बुज, अश्रुपात, महात्मस्, ज्येष्ठा, सृषटि, सुन्दरतम, प्रणय, सौदर्य–स्पर्श, द्वितीय, सर्वसिद्धिप्रव, शाश्वत, अखंड, मुक्ति, ऊर्ध्वतर, अर्जन, जितेन्द्रिय, अंतभूमि, पुष्पांजलि, षोड्शी, पद्याकृति, हरीतिमा, आच्छादित, विह्वल, जड़वत, पावांगुलियाँ, पंचमुखी, निधि, यत्र–तत्र, आत्मधात, मंद, वधू, प्रस्फुटन, जाग्रत्, सहस्त्र, प्रवत्त, जगत, ललाट, प्रस्फुटन, वशम, सम्पुटित, कोष, कटि, स्पर्श, नाभि, चित्तशुद्धि, मुखाकृति, कर्णिकार, छिद्र, प्रतिमा।" आदि। इसके साथ–साथ निबंधकार ने अपनी भाषाओं को लोकप्रिय बनाने के लिए लोक–प्रचलित उर्दू–फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है। निबंधकार ने अपनी भाषा की समसामयिक बोलचाल की पदावली से अलंकृत करने के लिए तथा लोक व्यवहार के अनुकुल बनाने के लिए अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को भी प्रयोग किया है, जैसे–आईडिया, अल्ट्रा, व्यायलेट'' आदि। उन्होंने अपनी भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में बेजोड़ वृद्धि करने के लिए मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया है यथा–हवा होना, ठोकर खाना, नेकी कर कुए में डाल आदि। संस्कृत की सुक्तियों एवं मंत्रों का भी प्रयोग किया है, जैसे–''स्मर गरल खण्डन, मम शिरसि मण्डनं देहि पद–पल्लवमुवारम, ऊँ त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे, स्मराय धीमहि, तन्नो विष्णुः, प्रचोदयात्' और 'सुर्वेषां योगिनीपीठे धर्म कैरातजं मतम्" आदि।

'षोडशी के चरण कमल' निबंध में निंबधकार ने छोटे–छोटे वाक्यों का भी प्रयोग किया है, जैसे –

(i) "यही बहुत–बहुत है। इसी में मुझे संतोष है। चलो यही सही।''

(ii) 'काशी को 'महाश्मशान' कहा जाता है। संभवतः इस परपरा का स्त्रोत भी यही तथ्य है। ये तो हैं। आधुनिक पंडितों की मान्यताएँ।"

कुबेरनाथ के निबंधों में सरलता भी है साहित्यिकता भी है, प्रतीकात्मकता भी है, लाक्षणिकता भी है, व्यंग्यात्मकता भी है और आलोचनात्मकता भी। वैसे वे एक ललित भाषा के रचनाकार है जिसमें सरलता–सरसता के साथ साथ साहित्यिक प्रौढ़ता विद्यमान है। उनके निबंधो में विपुल शास्त्र ज्ञान, अगाध पांडित्य एवं भाषा की अपूर्व शक्ति देखी जा सकती है। उनकी रचना शैली में गद्य–काव्य की सी रोचकता विद्यमान है। उनकी भाषा सर्वथा प्रसंगानुकूल है। यदि गंभीर भाव है तो भाषा साहित्यिक रूप धारण कर बैठती है और यदि हल्का – फुलका प्रसंग है तो भाषा–शैली भी बिल्कुल सरल, सहज एवं सुबोध रूप धारण कर बैठती है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने कुबेरनाथ राय जी की भाषा पर टिप्पणी करते हुए लिखा है– श्री कुबेरनाथ राय एक ऐसी कवित्वमयी ललित भाषा के निर्माता हैं, जिसमें रोचकता के साथ – साथ वक्रोक्ति वर्चस्व है और आलोचनात्मकता के साथ – साथ अभिव्यंजना चारूत्व है। अर्थ की गति – प्रगति के साथ – साथ आपकी भाषा उत्तरोत्तर उत्कर्ष की और अग्रसर होती रहती है और कल्पना – प्रवणता के साथ –साथ क्रमशः माधुर्य के उच्चाति शिखरों पर आरोहण करती रही है। आपकी भाषा में पांडित्य की गरिमा है कहीं प्रसंग गर्भत्व का ओज है, कहीं अप्रस्तुत योजनाओं की महिमा है, कहीं लाक्षणिक प्रयोगों का चमत्कार है।' उनकी प्रवाहपूर्ण और काव्यमयी भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

''संस्कृत कूप जल मात्र नहीं उसकी भूमिका विस्तृत और विशाल है। वह भाषा नदी को जल से स्नान करने वाला पावस मेघ है, वह परम पद का तुहिन व्योम है, वह हिमालय के ह्रदय का ग्लेशियर अर्थात् हिमवाह है। जब हिमवाह लगता है तभी बहते नीर वाली नदी में जीवन संचार होता है।''

निबंधकार अपने पाठकों को अपनी विशिष्ट शैली, भाषा और कथन–भगिमा के बहाने से बहुत 'कुछ देना चाहते हैं। इसके लिए एक विशिष्ट भाषा की दरकार होगी। वे इस बारे में सचेत हैं। वे लिखते हैं – ''में गाँव–गाँव, नदी –नदी, वन–वन घूम रहा हूँ। मुझे दरकार है भाषा की। मुझे धातु जैसे ठनठन गोपाल टकसाली भाषा नहीं चाहिए। मुझे चाहिए नदी जैसी निर्मल झिरमिर भाषा, मुझे चाहिए हवा जैसी अरूप भाषा मुझे चाहिए उड़ते डैनों जैसी साहसी भाषा, मुझे चाहिए काक–चक्षु जैसी सजग भाषा, मुझे चाहिए गोली खाकर चट्टान पर गिरे गुर्राते हुए शेर जैसी भाषा, मुझे चाहिए भागते हुए चकित भीत मृग जैसी गर्वोन्नत भाषा, मुझे चाहिए भैंसे की हँकड़ती डकार जैसी भाषा, मुझे चाहिए शरदकालीन ज्योत्ना में जंबुकों के मंत्र पाठ जेसी बिपफरती हुई भाषा, मुझे चाहिए गंगा –जमुना – सरस्वती जैसी त्रिगुणात्मक भाषा, मुझे चाहिए कंठ लग्न यज्ञोपवीत की प्रतीक हावेर्भुजा सावित्री जैसी भाषा।

निबंधकार कही भाषा – शैली में व्यंग्य और हास्य का पुट भी प्रसंगानुकूल मिलता है और ऐसे स्थलों पर उनकी भाषा–शैली और उत्पफुल्ल हो जाती है। इसका उदाहरण 'रस आखेटक' निबंध में देखा जा सकता है। उनकी शैली में एक और रोचक तत्व मिलता है जिसे वक्रोक्ति या कथन भंगिमा कहा जा सकता है। बात चाहे अपने जन्म की हो या चाहे दूब जैसे छोटी – सी चीज का परिचय देने की, निबंधकार अपनी वक्रोक्तिपूर्ण शैली से उसे सरस बना देता है। प्रकृति चित्रण के संबंध में उनकी भाषा – शैली और प्रांजल, ललित तथा सरस हो उठती है। प्रकृति के विभिन्न तत्वों तथा क्रियाकलापों को जब मानयीकृत किया जाता है तो उनकी भाषा का सौंदर्य देखते ही बनता है।

उपयुक्त सभी दृष्टियों से कुबेरनाथ राय की भाषा– शैली अत्यन्त वैभवशाली और हिन्दी के लिए परिपर्ण है। फिर भी उन पर कभी–कभी यह दोष मंडित किया जाता रहा है कि उनकी भाषा कुछ दुरुह पर अग्रह्य है

परंतु उनकी भाषा कठिन नहीं है अपितु वह एक संस्कारयुक्त भाषा है। वे भाषा–शैली की दृष्टि हिन्दी गद्य के सर्वाधिक समर्थ लेखकों में से एक है। माधुर तथा ओज का मिश्रण, उक्ति चित्रण, इतिहास और प्राण का नूतन संदर्भ में प्रयोग प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता आदि विशेषताएं, उनकी भाषा में स्पष्ट रूप से झलकती हैं। उनकी भाषा के संदर्भ में हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत है– "कुबेरनाथ के निबंधों में काव्यात्मक संवेदना के साथ विविध प्रसंगों को छोड़कर सूक्ष्म पर्यवेक्षण होते हैं। भाषा का प्रवाह बराबर समरस रहता है और बीच–बीच में कुछ बौद्धिक विवेचन का क्रम बना रहता है। यात्रा – प्रसंगों के साथ मानसिक ऊहापोह भी चलता है। इन निबंध का विधान यहाँ पूरी तरह तोषप्रद बना रहता है।''

डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने श्रीराय जी की भाषा पर टिप्पणी करते हुए लिखा है– "श्री कुबेरनाथ राय एक ऐसी कवित्वमयी ललित भाषा के निर्माता है, जिसमें रोचकता के साथ – साथ पांडित्य है, सरसता के साथ – साथ बद्धि वैलक्षण्य है, रागात्मकता के साथ – साथ उक्ति वैचित्र्य एवं विचारात्मकता के साथ –साथ अर्थ –गांभीर्य है, दार्शनिकता के साथ –साथ लाक्षणिक सौंदर्य है, आलंकारिकता के साथ – साथ प्रतीकात्मक माधुर्य है, विवरणात्मकता के साथ – साथ अभिव्यंजना चारूत्व है। अर्थ की गति – प्रगति के साथ – साथ आपकी भाषा उत्तरोत्तर उत्कर्ष की ओर होती रहती है और कल्पना – प्रवणता के साथ –साथ क्रमशः माधुर्य के उच्चाति उच्च शिखरों पर आरोहण करती रहती है। आपकी भाषा में पांडित्य की गरिमा है, कहीं प्रसंग गर्भत्व का ओज है, कहीं अप्रस्तुत योजनाओं की महिमा है, कहीं लाक्षणिक प्रयोगों का चमत्कार है।''

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'षोडसी के चरणकमल' किस निबंध संग्रह में संकलित है?
2. कुबेरनाथ राम जी को कवितामयी ललित भाषा का निर्माता किसने कहा है?

8.5 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य को ललित निबंधों से समृद्ध करने वाले प्रमुख लेखक के रूप में कुबेरनाथ राय जी का नाम लिया जाता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति का गहन अध्ययन आपकी रचनाओं में झलकता है। कुबेरनाथ राय का नाम निबंध लेखन से अभिन्न रूप से जुड़ा है। नयी पीढ़ी के ऐसे बहुत कम हिन्दी लेखक है जिन्होंने न केवल अपनी परंपरा को आत्मसात किया है बल्कि आधुनिकता की आवश्यकताओं को भी स्वीकारा है।

8.6 कठिन शब्दावली

विश्लेषित – वियुक्त, विश्लष्ट

तात्कालिक – तुरंत उस समय का

परिपाटी – परम्परा, क्रम

8.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. कुबेरनाथ राम
2. अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य

अभ्यास प्रश्न–2

1. किरात नदी में चन्द्रमधु
2. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना

8.8 संदर्भित पुस्तकें

1. कुबेरनाथ राय, षोड़शी के चरण कमल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. डॉ० आरती अग्रवाल, हिन्दी निबंध साहित्य का लालित्य निबंध, संजय प्रकाशन, दिल्ली।

8.9 सात्रिक प्रश्न

1. कुबेरनाथ राय द्वारा रचित निबंध 'पोड़शी के चरण कमल' का सार अपने शब्दों में लिखिए।
2. कुबेरनाथ राज की निबंध कला पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–9
सरदार पूर्ण सिंह जीवन और साहित्य

संरचना

9.1 भूमिका

9.2 उद्देश्य

9.3 सरदार पूर्ण सिंह जीवन और साहित्य

9.3.1 जीवन परिचय

9.3.2 साहित्यिक परिचय

स्वयं आकलन प्रश्न–1

9.4 आचरण की सभ्यता' निबंध का सार

9.4.1 आचरण की सभ्यता' निबंध की भाषा शैली

स्वयं आकलन प्रश्न–2

9.5 सारांश

9.6 कठिन शब्दावली

9.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

9.8 संदर्भित पुस्तकें

9.9 सात्रिक प्रश्न

9.1 भूमिका

इकाई आठ में हमने कुबेरनाथ राय के जीवन परिचय एवं उनके निबंध 'षोड़शी के चरण कमल' का अध्ययन किया। इकाई नौ में हम सरदार पूर्ण सिंह के जीवन एवं साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। सरदार पूर्ण सिंह द्वारा रचित निबंध 'आचरण की सभ्यत्ता' के सार एवं उद्देश्य का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

9.2 उद्देश्य

इकाई नौ का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. सरदार पूर्ण सिंह का जीवन परिचय क्या है?
2. सरदार पूर्ण सिंह का साहित्यिक परिचय क्या है?
3. 'आचरण की सभ्यता' निबंध का सार क्या है?
4. 'आचरण की सभ्यता' निबंध का उद्देश्य क्या है?

9.3 सरदार पूर्ण सिंह जीवन और साहित्य

9.3.1 जीवन परिचय

द्विवेदी –युग के श्रेष्ठ निबंधकार सरदार पूर्ण सिंह का जन्म सीमा प्रान्त (जो अब पाकिस्तान में है) के एबटाबाद जिले के एक गाँव में 17 फरवरी सन् 1881 ई0 में हुआ था। इनके पिता का नाम सरदार करतार सिंह था। इनकी आरभिक शिक्षा रावलपिंडी में हुई थी। हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद ये लाहौर चले गये। लाहौर के एक कालेज से इन्होंने एफद्र एद्र की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद एक विशेष छात्रवृत्ति प्राप्त कर सन् 1900 ई० में रसायनशास्त्र के विशेष अध्ययन के लिए वे जापान गये और वहाँ इम्पीरियल युनिवर्सिटी में

अध्ययन करने लगे। जब जापान में होने वाली 'विश्व धर्म सभा में भाग लेने के लिए स्वामी रामतीर्थ वहाँ पहँचे तो उन्होंने वहाँ अध्ययन कर रहे भारतीय विद्यार्थियों से भी भेंट की। इसी क्रम में सरदार पूर्णसिंह से स्वामी रामतीर्थ की भेंट हुई। स्वामी रामतीर्थ से प्रभावित होकर इन्होंने वहीं संन्यास ले लिया और स्वामी जी के साथ ही भारत लौट आये। स्वामी जी की मृत्यु में परिवर्तन हुआ और इन्होंने विवाह करके गृहस्थ जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया।

इनको देहरादून के इम्पीरियल फारेस्ट बाद इनके विचारों इस्टीट्यूट में 700 रुपये महीने की एक अच्छी अध्यापक की नौकरी मिल गयी। यहीं से इनके नाम के साथ अध्यापक शब्द जुड़ गया। ये स्वतंत्र प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, इसलिए इस नौकरी को निभा नहीं सके और त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद ये ग्वालियर गये। वहाँ इन्होंने सिखों के दस गुरूओं और स्वामी रामतीर्थ की जीवनियाँ अंग्रेजी में लिखीं। ग्वालियर में भी इनका मन नहीं लगा। तब ये पंजाब के जड़ाँवाला स्थान में जाकर खेती करने लगे। खेती में हानि हई और ये अर्थ–संकट में पड़कर नौकरी की तलाश में इधर उधर भटकने लगे। इनका सम्बन्ध क्रान्तिकारियों से भी था। 'देहली षड्यंत्र के मुकदमें में मास्टर अमीरचंद के साथ इनको भी पुछताछ के लिए बुलाया गया था किन्तु इन्होंने मास्टर अमीरचंद से अपना किसी प्रकार का सम्बन्ध होना स्वीकार नहीं किया। प्रमाण के अभाव में इनको छोड़ दिया गया। वस्तुत मास्टर अमीरचंद स्वामी रामतीर्थ के परम भक्त और गुरुभाई थे। प्राणों की रक्षा के लिए इन्होंने न्यायालय में झूठा बयान दिया था। इस घटना का इनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। भीतर ही भीतर ये पश्चाताप की अग्नि में जलते रहते थे। इस कारण भी ये व्यवस्थित जीवन व्यतीत नहीं कर सके और हिन्दी साहित्य की एक बड़ी प्रतिभा पूरी शक्ति से हिन्दी की सेवा नहीं कर सकी। 31 मार्च, 1931 में इनकी मृत्यु हो गयी।

9.3.2 साहित्यिक परिचय

इनके हिन्दी में कुल छह निबंध उपलब्ध हैं

1. सच्ची वीरता,
2. आचरण की सभ्यता,
3. मजदूरी और प्रेम,
4. अमेरिका का मस्त योगी वॉल्ट ह्विटमैन,
5. कन्यादान और
6. पवित्रता

इन्हीं निबंधों के बल पर इन्होंने हिन्दी गद्य साहित्य के क्षेत्र में अपना स्थायी स्थान बना लिया इन्होंने निबंध रचना के लिए मुख्य रूप से नैतिक विषयों को ही चुना।

सरदार पूर्ण सिंह के निबंध विचारात्मक होते हुए भावात्मक कोटि में आते हैं। उनमें भावावेग के ही विचारो के सूत्र भी लक्षित होते हैं जिन्हें प्रयत्नपूर्वक जोड़ा जा सकता है। ये प्रायः मूल विषय से हटकर उससे सम्बन्धित अन्य विषयों की चर्चा करते हुए दूर तक भटक जाते है और फिर स्वयं सफाई देते हुए मूल विषय पर लोट आते हैं। उद्धरण – बहुलता और प्रसंग – गर्भत्व इनकी निबंध – शैली की विशेषता है।

सरदार पूर्णसिंह की भाषा शुद्ध खड़ीबोली है, किन्तु उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ – साथ फारसी और अग्रेजी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। इनकी निबंध – शैली अनेक दृष्टियों से निजी शैली है। इनको विचार भावुकता की लपेट में लिपटे हुए होते हैं। भावात्मकता, विचारात्मकता, वर्णनात्मकता, सूत्रात्मकता, व्यंग्यात्मकता इनकी शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। विचारों और भावनाओं के क्षेत्र में ये किसी सम्प्रदाय से बँधकर नहीं चलते। इसी प्रकार शब्द चयन में भी ये अपने स्वच्छन्द स्वभाव को प्रकट करते हैं। इनका एक ही धर्म है मानववाद और एक ही भाषा है हृदय की भाषा। सच्चे मानव की खोज और सच्चे हृदय की भाषा की तलाश ही इनके साहित्य का लक्ष्य है।

लेखक की दृष्टि में लम्बी – चौड़ी बातें करना, बड़ी – बड़ी पुस्तकें लिखना और दूसरों को उपदेश देना तोआसान है, किन्तु ऊँचे आदर्शों को आचरण में उतारना अत्यन्त कठिन है। जिस प्रकार हिमालय की सुन्दर चोटियों की रचना में प्रकृति को लाखों वर्ष लगाने पड़े हैं, उसी प्रकार समाज में सभ्य आचरण को विकसित करने में मनुष्य को लाखों वर्षों की साधना करनी पड़ी है। जनसाधारण पर सबसे अधिक प्रभाव सभ्य आचरण का ही पड़ता है। इसलिए यदि हमें पूर्ण मनुष्य बनना है तो अपने आचरण को श्रेष्ठ और सुन्दर बनाना होगा। आचरण की सभ्यता न तो बड़े – बड़े ग्रन्थों से सीखी जा सकती है और न ही मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों से उसका खुला खजाना तो हमें प्रकृति के विराट प्रांगण में मिलता है। आचरण की सभ्यता का पैमाना है परिश्रम, प्रेम और सरल व्यवहार इसलिए हमें प्रायः श्रमिकों और सामान्य दिखने वाले लोगों में उच्चतम आचरण के दर्शन प्राप्त हो जाते हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. 'कन्यादान' किसका निबंध है?
2. रसायनशास्त्र के अध्ययन के लिए सरदारपूर्ण सिंह जी कहां गए थे?

आचरण की सभ्यता' मूल निबंध

विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन और राजस्व से भी आचरण की सभ्यता अधिक ज्योतिष्मती है। आचरण की सभ्यता को प्राप्त करके एक कंगाल आदमी राजाओं के दिलों पर भी अपना प्रभुत्व जमा सकता है। इस सभ्यता के दर्शन से कला, साहित्य, और संगीत को अद्‌भुत प्राप्त होती है। राग अधिक मृदु हो जाता है, विद्या का तीसरा शिव–नेत्र खुल जाता है, चित्रकला का मौन राग अलापने लंग जाता है, वक्ता ग्रुप हो जाता है लेखक की लेखनी थम जाती है, मूर्ति बनाने वाले के सामने नये कपोल, नये नयन और नयी छवि का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

आचरण की सभ्यतामय भाषा सदा मौन रहती है। इस भाषा का निघण्टु शद्ध श्वेत पत्र वाला है। इससे नाममात्र के लिए भी शब्द नहीं यह सभ्याचरण नाद करता हुआ भी मौन है, व्याख्यान देता हुआ भी व्याख्यान के पीछे छिपा है, राग गाता हुआ भी राग के सुर के भीतर पड़ा है। मृदु वचनों की मिठास में आचरण की सभ्यता मौन रूप से खुली हुई है। ममता, दया, प्रेम और उदारता सब के सब सभ्याचरण की भाषा के मौन व्याख्यान है। मनुष्य के जीवन पर मौन व्याख्यान का प्रभाव चिरस्थायी होता है और उसकी आत्मा का एक अंग हो जाता है।

न काला, न नीला, न पीला, न सफेद, न पूर्वी, न पश्चिमी, न उत्तरी, न दक्षिणी, बे– नाम, बे– निशान के मकान, विशाल आत्मा के आचरण से मौन रुपिणी, सुगन्धि सदा प्रसारित हुआ करती हैं; इसके मौन से प्रसूत प्रेम और पवित्रता – धर्म सारे जगत का कल्याण करके विस्तृत होते हैं। इसकी उपस्थिति से मन और हृदय की ऋतु बदल जाते हैं। तीक्ष्ण गरमी से जले भूने व्यक्ति आचरण के काले बादलों की बुंदाबांदी से शीतल हो जाते है मानसोत्पन्न शरद ऋतु क्लेशातुर हुए पुरुष इसकी सुगंधमय अटल वसंत ऋतु के आनंद का पान करते हैं। आचरण के क्षेत्र के एक अब से जगत भर के नेत्र भीग जाते हैं। आचरण के आनंद–नृत्य से उन्मदिष्णु होकर वृक्षों और पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं। आचरण के मौन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है। नये–नये विचार स्वयं ही प्रकट होने लगते हैं। सुखे काष्ठ सचमूच ही हरे हो जाते हैं। सूखे कूपों में जन भर आता है। नये नेत्र मिलते हैं। कुल पदार्थों के साथ एक नया मैत्री भाव फूट पड़ता है। सूर्य, जल, वायु, पुष्प, पत्थर, घास, पात, नर, नारी और बालक तक में एक अश्रुतपूर्व सुंदर मूर्ति के दर्शन होने लगते हैं।

मौनरूपी व्याख्यान की महत्ता इतनी बलवती, इतनी अर्थवती और इतनी प्रभाववती होती है कि उसके सामने क्या मातृभाष, क्या साहित्यभाषा और क्या अन्य देश की भाषा सब की सब तुच्छ प्रतीत होती हैं। अन्य कोई भाषा दिव्य

नहीं, केवल आचरण की मौन भाषा ही ईश्वरीय है। विचार करके देखो, मौन व्याख्यान किस तरह आपके हृदय की नाड़ी–नाडी में सुंदरता को पिरो देता है। वह व्याख्यान ही क्या, जिसने हृदय की धुन को – मन के लक्ष्य को ही न बदल दिया। चंद्रमा की मंद – मंद हँसी का तारागण के कटाक्षपूर्ण प्राकृतिक मौन व्याख्यान को प्रभाव किसी कवि के दिल में घुसकर देखो सूर्यास्त होने के पश्चात् श्रीकेशवचंद्र सेन और महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर ने सारी रात एक क्षण की तरह गुजार दी यह तो कल की बात है। कमल और नरगिस में नयन देखने वाले नेत्रों से पूछो कि मौन व्याख्यान की प्रभुता कितनी दिव्य है।

प्रेम की भाषा शब्द–रहित है। नेत्रों की, कपोलों की, मस्तक की भाषा भी शब्द–रहित है। जीवन का तत्व भी शब्द से परे है सच्चा आचरण प्रभाव, शील, अचल स्थित संयुक्त आचरण – न तो साहित्य के लंबे व्याख्यानों से गढ़ा जा सकता है, न वेद की श्रृतियों के मीठे उपदेश से न अंजील से न कुरान से न धर्मचर्चा से, न केवल सत्संग से। जीवन के अरण्य में धंसे हुए पुरुष पर प्रकृति और मनुष्य के जीवन के मौन व्याख्यानों के यत्न से सुनार के छोटे हथौड़े की मंद मंद चोटों की तरह आचरण का रूप प्रत्यक्ष होता है।

बर्फ का दुपट्टा बांधे हुए हिमालय इस समय तो अति सुंदर, अति ऊंचा और अति गौरवान्वित मालूम होता है; परंतु प्रकृति ने अगणित शताब्दियों के परिश्रम से रेत का एक – एक परमाणु समुद्र के जल में डुबो–डुबोकर और उनको अपने विचित्र हथौडे से सुड़ौल करके इस हिमालय के दर्शन कराये हैं। आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊंचे कलश वाला मदिर है। यह वह आम का पेड़ नहीं जिसको मदारी एक क्षण में, तुम्हारी आँखों में मिट्टी डालकर, अपनी हथेली पर जमा दे। इसके बनने में अनंत काल लगा है। पृथ्वी बन गयी, सूर्य बन गया, तारागण आकाश में दौड़ने लगेय परंतु अभी तक आचरण के सुंदर रूप के पूर्ण दर्शन नहीं हुए। कहीं–कहीं उसकी अत्यल्प छटा अवश्य दिखाई देती है।

पुस्तकों में लिखे हुए नुस्खों से तो और भी अधिक बदहजमी हो जाती है। सारे वेद और शास्त्र भी यदि घोलकर पी लिए जायें तो भी आदर्श आचरण की प्राप्ति नहीं होती। आचरण की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले को तर्क – वितर्क से कुछ भी सहायता नहीं मिलती। शब्द और वाणी तो साधारण जीवन के चोचले हैं। ये आचरण की गुप्त गुहा में नहीं प्रवेश कर सकते। वहां इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वेद इस देश के रहने वालों के विश्वासानुसार ब्रह्मवाणी है, परंतु इतना काल व्यतीत हो जाने पर भी आज तक वे समस्त जगत की भिन्न – भिन्न जातियों को संस्कृत भाषा न बुला सके – न समझा सके न सिखा सके। यह बात हो कैसे ? ईश्वर तो सदा मौन है। इश्वरीय मौन शब्द और भाषा का विषय नहीं। यह केवल आचरण के कान में गुरुमंत्र फूंक सकता है। वह केवल ऋषि के दिल में वेद का ज्ञानोदय कर सकता है।

किसी का आचरण वायु के झोंके से हिल जाय, तो हिल जाय, परंतु साहित्य और शब्द की गोलन्दाजी और आधी से उसके सिर के एक बाल तक का चण्का न होना एक साधारण बात है। पुष्प की कोमल पंखुडी के स्पर्श से किसी को रोमांच हो जाय जल की शीतलता से क्रोध और विषय – वासना शांत हो जायें, बर्फ के दर्शन से पवित्रता आ जाय, सूर्य की ज्योति से नेत्र खुल जायें परंतु अंग्रेजी भाषा का व्याख्यान चाहे – वह कारलायल का लिखा हुआ क्यों न हो बनारस में पंडितों के लिए रामलीला ही है। इसी तरह न्याय और व्याकरण की बारीकियों के विषय में पंडितों के द्वारा की गई चर्चाएँ और शास्त्रार्थ संस्कृत – ज्ञान – हीन पुरुषों के लिए स्टीम इंजिन के फप् – फप् शब्द से अधिक अर्थ नहीं रखते। यदि आप कहं व्यारख्यानों के द्वारा, उपदेशों के द्वारा, धर्मचर्चा द्वारा कितने ही पुरुषों और नारियों के हृदय पर जीवन – व्यापी प्रभाव पड़ा है, तो उत्तर यह है कि प्रभाव शब्द का नहीं पड़ता प्रभाव तो सदा सदाचरण का पडता है। साधारण उपदेश तो हर गिरजे, हर मदिर और हर मस्जिद से होते है, परतु उनका प्रभाव तभी हम पर पड़ता है जब गिरजे का पादरी स्वयं ईसा होता है – मंदिर का पुजारी स्वयं ब्रह्मर्षि होता है मस्जिद का मुल्ला स्वयं पैगंबर और रसूल होता है।

यदि एक ब्राह्मण किसी डूबती कन्या की रक्षा के लिए चाहे वह कन्या जिस जाति की हो, जिस किसी मनुष्य की हो, जिस किसी देश की हो अपने आपको गंगा में फेंक दे चाहे उसके प्राण यह काम करने में रहे चाहे जाये तो इस कार्य में प्रेरक आचरण की मौनमयी भाषा किस देश में, किस जाति में और किस काल में, जगत के सभी चराचर आप कौन नहीं समझ सकता? प्रेम का आचरण, दया का आचरण क्या पशु क्या मनुष्य ही आप समझ लेते हैं। जगत भर के बच्चों की भाषा इस भाष्यहीन भाषा का चिहन है। बालको के इस शद्ब मौन का नाद और हास्य ही सब देशों में एक ही सा पाया जाता है।

मनुष्य का जीवन इतना विशाल है कि उसमें आचरण को रूप देने के लिए नाना प्रकार के ऊंच–नीच और भले–बूरे विचार, अमीरी और गरीबी, उन्नति और अवनति इत्यादि सहायता पहुंचाते हैं पवित्र अपवित्रता उतनी ही बलवती है, जितनी कि पवित्र और पवित्रता। जो कुछ जगत में हो रहा है वह केवल आचरण के विकास के अर्थ में रहा है। अंतरात्मा वही काम करती है जो बाह्य पदार्थों के संयोग का प्रतिबिंब होता है। जिनको हम पवित्रात्मा कहते हैं, क्या पता है, किन–किन कूपों से निकलकर वे अब उदय को प्राप्त हुए हैं। जिनको हम धर्मात्मा कहते हैं। क्या पता है, किन–किन अधर्मों को करके वे धर्म–ज्ञान पा सके हैं। जिनको हम सभ्य कहते हैं और जो आपने जीवन में पवित्रता को ही सब कुछ समझते हैं, क्या पता है, वे कुछ काल पूर्व बुरी और अधर्म अपवित्रता में लिप्त रहे हो ? अपने जन्म – जन्मांतरों के संस्कारों से भरी हुई अंधकारमय कोठरी से निकल ज्योति और स्वच्छ वायु से परिपूर्ण खुले हुए देश में जब तक अपना आचरण अपने नेत्र न खोल चुका हो तब तक धर्म के गूढ़ तत्व कैसे समझ में आ सकते हैं। नेत्र –रहित को सूर्य से क्या लाभ? कविता, साहित्य, पीर पैगंबर, गुरु, आचार्य, ऋषि आदि के उपदेशों से लाभ उठाने का यदि आत्मा में बल नहीं तो उनसे क्या लाभ? जब तक यह जीवन का बीज थ्वी के मल–मूत्र के ढेर में पड़ा है, अथवा जब तक वह खाद की गरमी से अंकुरित नहीं हुआ और प्रस्फुटित होकर उससे दो नये पत्ते ऊपर नहीं निकल आये, तब तक ज्योति और वायु किस काम के?

वह आचरण ही धर्म – संप्रदायों के अनुच्चारित शब्दों को सुनाता है, हम में कहां? जब वही नहीं तब फिर क्या न ये संप्रदाय हमारे मानसिक महाभारतों का कुरुक्षेत्र बने? क्यों न अप्रेम, अपवित्र, हत्या और अत्याचार इन संप्रदायों के नाम से हमारा खून करें। कोई भी संप्रदाय आचरण –रहित पुरुषों के लिए कल्याणकारक नहीं हो सकता और आचरण वाले पुरुषों के लिए सभी धर्म – संप्रदाय कल्याणकारक हैं। सच्चा साधु धर्म को गौरव देता है, धर्म किसी को गौरवान्वित नहीं करता।

आचरण का विकास जीवन का परमोद्देश्य है। आचरण के विकास के लिए नाना प्रकार की सामाग्रियों का, जो ससार–संभूत शारीरिक, प्राकृतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन में वर्तमान हैं, उन सबकी (सबका) क्या एक पुरुष और क्या एक जाति के आचरण के विकास के साधनों के संबंध में विचार करना होगा। आचरण के विकास की लिए जितने कर्म है उन सबको आचरण के संघटनकर्ता धर्म के अंग मानना पड़ेगा। चाहे कोई कितना हा बड़ा महात्मा क्यों न हो, वह निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि यहाँ ही करो, और किसी तरह नहीं। आचरण की सभ्यता की प्राप्ति के लिए वह सब को एक पथ नहीं बता सकता। आचरणशील महात्मा स्वयं भी किसी अन्य की बनायी हुई सड़क से नहीं आया, उसने अपनी सड़क स्वयं ही बनायी थी। इसी से उसके बनाए हुए रास्ते पर चलकर हम भी अपने आचरण को आदर्श के ढाँचे में नहीं ढाल सकते। हमें अपना रास्ता अपने जीवन की कुदाली की एक – एक चोट से रात – दिन बनाना पड़ेगा और उसी पर चलना भी पड़ेगा। हर किसी को अपने देश–कालन्सार रामप्राप्ति के लिए अपनी नैया आप ही बनानी पड़ेगी और आप ही चलानी भी पड़ेगी।

यदि मुझे ईश्वर का ज्ञान नहीं तो ऐसे ज्ञान से क्या प्रयोजन? जब तक मैं अपना हथौडा ठीक चलाता हूँ और रूपहीन लोहे को तलवार के रूप में गढ़ देता हूं तब तक मुझे यदि ईश्वर का ज्ञान नहीं तो नहीं होने दो। उस ज्ञान से मुझे प्रयोजन ही क्या? जब तक मैं अपना उद्धार ठीक और शुद्ध रीति से किये जाता हूँ तब तक

यदि मुझे आध्यात्मिक पवित्रता का ज्ञान नहीं होता तो न होने दो। उससे सिद्धि ही क्या हो सकती है ? जब तक किसी जहाज के कप्तान के हृदय में इतनी वीरता भरी हुई है कि वह महाभयानक समय में अपने जहाज को नहीं छोड़ता तब तक यदि वह मेरी और तेरी दृष्टि में शराबी और स्त्रैण है तो उसे वैसा ही होने दो। उसकी बुरी बातों से हमें प्रयोजन ही क्या? आँधी हो – बर्फ हो – बिजली की कडक हो – समुद्र का तुफान हो – वह दिन रात आंख खोले अपने जहाज की रक्षा के लिए जहाज के पुल पर घूमता हूआ अपने धर्म का पालन करता है। वह अपने जहाज के साथ समुद्र में डूब जाता है, परतु अपना जीवन बचाने के लिए कोई उपाय नहीं करता। क्या उसके आचरणों का यह अंश मेरे तेरे बिस्तर और आसन पर बैठे – बिठाए कहे हुए निरर्थक शब्दों के भाव से कम महत्व का है?

न में किसी गिरजे में जाता हूं और न किसी मदिर में, न में नमाज पढ़ता हूं और न ही रोजा रखता हँ, न संध्या ही करता हूं और न कोई देव–पूजा ही करता हूं, न किसी आचार्य के नाम का मुझे पता है और न किसी के आगे मैंने सिर ही झुकाया है तो इससे प्रयोजन ही क्या और इससे हानि भी क्या ? मैं तो अपनी खेती करता हूं, अपने हल और बैलों को प्रातःकाल उठकर प्रणाम करता हूं, मेरा जीवन जंगल के पेड़ों और पतियों की संगति में गुजरता है, आकाश के बादलों को देखते मेरा दिन निकल जाता है। मैं किसी को धोखा नहीं देता, हाँ यदि कोई मझे धोखा दे तो उससे मेरी कोई हानि नहीं। मेरे खेत में अन्न उग रहा है, मेरा घर अन्न से भरा है, विस्तर के लिए मुझे एक कमली काफी है, कमर के लिए लॅगोटी और सिर के लिए एक टोपी बस है। हाथ – पॉव मेरे बलवान हैं, शरीर मेरा अरोग्य है, भूख खूब लगती है, बाजरा और मकई, छाछ और दही, दूध और मक्खन मुझे और बच्चों को खाने के लिए मिल जाता है। क्या इस किसान की सादगी और सच्चाई में वह मिठास नहीं जिसकी प्राप्ति के लिए भिन्न – भिन्न धर्म संप्रदाय लंबी – चौड़ी और चिकनी – चुपड़ी बातों द्वारा दीक्षा दिया करते है?

जब साहित्य, संगीत और कला की अति ने रोम की घोड़े से उत्तारकर मखमल के गद्दों पर, लिटा दिया – जब आलस्य और विषय – विकार की लंपटता ने जंगल और पहाड की साफ हवा के असभ्य और उद्दंड जीवन से रामवालों का मुख मोड़ दिया तब रोम नरम तकियाँ और बिस्तरों पर ऐसा सोया कि अब तक न आप जागा और न कोई उसे जगा सका। ऐंग्लोसेक्सन जाति ने जो उच्च पद प्राप्त किया बस उसने अपने समुद्र, जंगल और पर्वत से सबंध रखने वाले जीवन से ही प्राप्त किया। जाति की उन्नति लड़ने – भिडने, मरने – मारने, लूटने और लूटे जाने, शिकार करने और शिकार होने वाले जीवन का ही परिणाम है। लोग कहते हैं, केवल धर्म ही जाति की उन्नति करता है। यह ठीक है, परंतु यह धर्माकर जी जाति को उन्नत करता है, इस असभ्य, कमीने पापमय जीवन की गंदी राख के ढेर के ऊपर नहीं उगता है। मंदिरों और गिरजों की मंद – मंद टिमटिमाती हुई मोमबत्तियों की रोशनी से युरोप इस उच्चावस्था को नहीं पहुँचा। वह कठोर जीवन जिसको देश – देशांतरों को ढूँढ़ते फिरते रहने के बिना शांति नहीं मिलती, जिसकी अंतज्वाला दूसरी जातियों को जीतने, लुटने, मारने और उन पर राज रकने के बिना मंद नहीं पड़ती केवल वहीं विशाल जीवन समुद्र की छाती पर मुँग दलकर और पहाड़ों को फोंटकर उनको इस महानता की ओर ले गया और ले जा रहा है। राबिनहुड की प्रशंसा में जो कवि अपनी सारी शक्ति खर्च कर देते है उन्हें तत्वदर्शी कहना चाहिए, क्योंकि राबिनहुड जैसे भौतिक पदार्थों से ही नेलसन और वेलिंगटन जैसे अंग्रेज वीरों की हड्डिया तैयार हई थीं। लड़ाई के आजकल के सामान गोला बारूद, जंगी जहाज और तिजारती बेड़ो आदि – के देखकर कहना पडता है कि इनसे वर्तमान सभ्यता से भी कहीं अधिक उच्च सभ्यता का जन्म होगा।

धर्म और आध्यात्मिक विद्या के पौधे को ऐसी आरोग्यवर्धक भूमि देने के लिए, जिसमें वह प्रकाश और वायु सदा खिलता रहे, सदा फूलता रहे सदा फलता रहे, यह आवश्यक है कि बहुत–से हाथ एक अनंत प्रकृति के ढेर को एकत्र करते रहे। धर्म की रक्षा के लिए क्षत्रियों को सदा ही कमर बांधे हुए सिपाही बने रहने का भी तो यही

अर्थ है। यदि कुल समुद्र का जल उड़ा दो तो रेडियम धातु का एक कण कहीं हाथ लगेगा। आचरण का रेडियम क्या एक पुरुष का, और क्या जाति का और क्या जगत का सारी प्रकृति को खाद बनाये सारी प्रकृति को हवा में उडाये बिना भला कब मिलने का है? प्रकृति को मिथ्या करके नहीं उडाया उसे उड़ाकर मिथ्या करना है। समुद्रों में डोरा डालकर अमृत निकाला है सो भी कितना? जरा सा! संसार की खाक छानकर आचरण का स्वर्ण हाथ आता है। क्या बैठे – बिठाये भी वह मिल सकता है ?

हिंदूओं का संबंध यदि किसी प्राचीन असभ्य जाति के साथ रहा होता तो उनके वर्तमान वंश में अधिक बलवान श्रेणी के मनुष्य होते तो उनमें भी ऋषि पराक्रमी, जनरल और धीर–वीर पुरुष उत्पन्न होते। आजकल तो वे उपनिषदों के ऋषियों के पवित्रतामय प्रेम के जीवन को देख – देखकर अहंकार में मग्न हो रहे हैं और दिन पर दिन अधोगति की ओर जा रहे हैं। यदि वे किसी जंगली जाति की संतान होते तो उनमें भी ऋषि और बलवान होते। ऋषियों को पैदा करने के योग्य असभ्य पृथ्वी का बन जाना तो आसान है; परंतु ऋषियों की अपनी उन्नति के लिए राख और पृथ्वी बनाना कठिन है, क्योंकि ऋषि तो केवल अनंत प्रकृति पर सजते हैं, हमारी जैसी पुष्प शय्या पर मुरझा जाते हैं। माना कि प्राचीन काल में, यूरोप में, सभी असभ्य थे, परंतु आजकल तो हम असभ्य है। उनकी असभ्यता के ऊपर ऋषि जीवन की उच्च सभ्यता फूल रही है और हमारे ऋषियों के जीवन के फल की शय्या पर आजकल असभ्यता का रंग चढ़ा हआ है। सदा ऋषि पैंदा करते रहना, अर्थात अपनी ऊंची चोटी के ऊपर इन फूलों को सदा धारण करते रहना ही जीवन के नियमों का पालन करना है।

धर्म के आचरण की प्राप्ति यदि ऊपरी आडंबरों से होती तो आजकल भारत निवासी सूर्य के समान शुद्ध आचरण वाले हो जाते। भाई, माला से तो जप नहीं होता। गंगा नहाने से तो तप नहीं होता। पहाड़ी पर चढने से प्राणायाम हुआ करता है, समुद्र में तैरने से नेती धुलती है, आंधी, पानी और साधारण जीवन के ऊँच – नीच, सरसों सरदी, गरीबी अमीरी, को झेलने से तप ह आ करता है। आध्यात्मिक धर्म के स्वप्नों की शोभा तभी भली लगती है, जब आदमी अपने जीवन का धर्म पालन करे। खुले समुद्र में अपने जहाज पर बैठकर ही समुद्र की आध्यात्मिक शोभा का विचार होता है। भूखे को तो चंद्र और सूर्य भी केवल आर्ट की बड़ी – बड़ी दो रोटियां से प्रतीत होता है। कुटिया में ही बैठकर धूप, आंधी और बर्फ की दिव्य शोभा का आनंद आ सकता है। प्राकृतिक सभ्यता के आने पर ही मानसिक सभ्यता आती है और तभी वह स्थिर भी रह सकती है। मानसिक सभ्यता के होने पर ही आचरण सभ्यता की प्राप्ति संभव है, और तभी वह स्थिर भी हो सकती है। जब तक निर्धन पुरुष पाप से अपना पेट भरता है तब तक धनवान पुरुष के शुद्धाचरण की पूरी परीक्षा नहीं। इसी प्रकार जब तक अज्ञानी का आचरण अशुद्ध है तब तक ज्ञानवान के आचरण की पूरी परीक्षा नहीं तब तक जगत में आचरण की सभ्यता का राज्य नहीं।

आचरण की सभ्यता का देश ही निराला है। उसमें न शारीरिक झगड़े हैं, न मानसिक, न आध्यात्मक, न उसमें विद्रोह है, न जंग ही का नामोनिशान है और न वहां कोई ऊंचा है, न नीचा न कोई वहां धनवान ही और न ही कोई वहां निर्धन वहां प्रकृति का नाम नहीं, वहां तो प्रेम और एकता का अखंड राज्य रहता है। जिस समय आचरण की सभ्यता संसार में आती है उस समय नीले आकाश से मनुष्य को वेद–ध्वनि सुनायी देती है।

9.4 'आचरण की सभ्यता' निबंध का सार

'आचरण की सभ्यता' सरदार पूर्णसिंह का एक भावात्मक निबंध है। इसमें विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन तथा राजस्व सभी से अधिक शुद्ध आचरण को महत्व दिया है। इसके लिए लेखक ने नम्रता, दया, प्रेम तथा उदारता को हृदय में स्थान देना आवश्यक बताया है। अच्छे आचरण वाले व्यक्ति के प्रेम तथा धर्म से सारे संसार का कल्याण होता है। सभी व्यक्तियों को सुख, शांति एवं आनंद की प्रप्ति होती है। वे मौन और शांत रहकर संसार की भलाई में लगे रहते हैं। सच्चे आचरण का प्रभाव हमारे मानव हृदयों पर पड़ता है। जो पुजारी, मुल्ला अथवा पादरी सच्चे आचरण वाला होता है, उसकी बातें सभी व्यक्तियों के हृदयों को प्रभावित करती हैं।

लेखक कहते हैं कि दूसरे व्यवहारों की तरह आचरण की भी अपनी एक भाषा होती है, परंतु वह भाषा मौन की होती है। इसका दूसरे व्यक्ति पर गुप्त प्रभाव पड़ता है। आचरण के कोश में नाममात्र के लिए भी कोई शब्द नहीं है। वस्तुतः उसके सभी पृष्ठ कोरे हैं तथा इसकी ध्वनि मूक है। सभ्यता का आचरण स्वयं को व्यक्त करता हुआ भी अव्यक्त तथा मौन रहता है और आकर्षक राग गाता हुआ भी राग के भीतर विद्यमान रहता है। इसके मीठे वचनों में उसी प्रकार की मूक भावना निहित रहती है, जिस प्रकार किसी बच्चे की तोतली बोली में एक आकर्षक मौन छिपा हुआ रहता है। सदाचरण आत्मा पर प्रभाव डालकर धीरे–धीरे मनुष्य की आत्मा को अपने रंग में रंग लेता है। इस सदाचरण का न कोई रंग न कोई आकार और न ही कोई दिशा होती है। आत्मा के सदाचरण से ही इसकी सुगन्ध फैल जाती है। सदाचरण से मन तथा हृदय की भावनाएँ परिवर्तित हो जाती हैं। आचरण की एक बुँद पूरे विश्व को भिगो देती है। सदाचरण के द्वारा निर्जीव में भी जीवन का संचार हो जाता है। तथा सूखे कुएँ भी जल से लबालब भर जाते हैं। लेखक का कहना है कि सदाचारी मनुष्य अपने श्रेष्ठ आचरण के बल से दूसरों को प्रभावित करता है। आचरण की मौन रूपी भाषा बहत ही शक्तिशाली, सार्थक और प्रभावपूर्ण होती हैं। इसका जितना प्रभाव पडता है, उतना मातृभाषा, साहित्य की भाषा अथवा किसी अन्य देश की भाषा का नहीं पड़ता। केवल आचरण की भाषा दिव्य एवं अलौकिक है। इसलिए आचरण की भाषा के समक्ष विश्व की समस्त भाषाएँ तुच्छ, प्रभावहीन व फीकी है। चन्द्रमा की मौन हँसी और तारों के मौन कटाक्षों का प्रभाव तो केवल किसी कवि के हृदय में झाँककर ही अनुभव किया जा सकता है।

सरदार पूर्णसिंह कहते हैं कि प्रेम की भाषा शब्द रहित होती है। व्यक्ति के नेत्र, कपोल (गाल) या माथे की विभिन्न मुद्राएँ हृदय के भावों को अभिव्यक्त कर देती हैं जो आचरण प्रभावकारी स्थायी तथा शील से युक्त होता है, वही सभ्य आचरण कहलाता है। वह वेद, कुरान आदि धार्मिक ग्रंथों से और धर्मोपदेशों से भी व्यक्त नहीं होता है। इसे प्राप्त करने के लिए जीवन की गहराई में प्रवेश करना पडता है, विपरीत परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है और अपने मन पर नियंत्रण करना पड़ता है। जैसे कोई सुनार अपने हथौडे की मंद – मंद चोट से सुंदर आभूषण का निर्माण करता है। वैसे ही प्रकृति के क्रियाकलाप और व्यक्ति का मधुर व विनम्र व्यवहार ही किसी के भी आचरण को संवारता है। जिस प्रकार हिमालय अपनी ऊँची चोटी पर बर्फ रूपी साफा बाँधकर अपने महिमामय स्वरूप की घोषणा करता है तथा जिस प्रकार अपनी उँची चोटी पर पवित्र कलश धारण करने वाला मंदिर अपनी दिव्यता का उद्घोष करता है, ठीक उसी प्रकार आचरण भी महिमामय तथा दिव्य होता है। जिस प्रकार हिमालय तथा ऊंचे मंदिर का निर्माण एक दिन में संभव नहीं है। उसी प्रकार श्रेष्ठ आचरण भी लंबी साधना के पश्चात् ही प्राप्त होता है। श्रेष्ठ आचरण का निर्माण किसी मदारी अथवा जादूगर द्वारा दर्शकों को धोखा देकर क्षण भर में उगाए हुए आम के वृक्ष की भाँति नहीं होता। इनके निर्माण में शताब्दियों का समय लगता है। सूर्य, चन्द्रमा, तारागण तथा पृथ्वी के बने हुए इतना समय बीतने के पश्चात् भी आज तक आचरण के सुंदर रूप के पूर्ण दर्शन नहीं हो सके।

लेखक का कथन है कि पुस्तकों में लिखे हुए उपदेशों और नियमों के अध्ययन से आचरण का विकास संभव नहीं है। सारे वेदों और शास्त्रों को पढ़कर आचरण का विकास नहीं हो सकता। ईश्वर की भाषा मौन होती है और वह भी आचरण के द्वारा अपने आपको व्यक्त करता है। पुस्तकीय ज्ञान व्यक्ति को सदाचारी नहीं बना सकता। यह सब कार्य तो किसी का सदाचरण ही कर सकता है। किसी भी व्यक्ति का आचरण किसी भी परिस्थिति के झोंके से टकरा कर बदल सकता है, परंतु किसी साहित्य और उपदेशात्मक शब्दों के निरंतर प्रयोग व्यक्ति के आचरण पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। हाँ, यह बात अवश्य है कि किसी अकस्मिक अनुभूति से व्यक्ति का आचरण प्रभावित हो सकता है। आचरण का यह प्रभाव ठीक उसी प्रकार होता है। जिस प्रकार फूलों की कोमल पंखुड़ियों के स्पर्श से आनंदपूर्ण रोमांच उत्पन्न हो जाता है या डाल की शीतलता क्रोध और विषय – वासनाओं को शांत कर देती है अथवा सूर्य की किरणें किसी सोए हुए व्यक्ति को जगा देती हैं, किंतु आचरण के

लिए कोई उपदेश या कोई नीति वाक्य ठीक वैसा ही निरर्थक होता है जैसे अंग्रेजी भाषा में कारलायल जैसे विद्वान् का लिखा हुआ कोई व्याख्या न बनारस के पंडितों के लिए शोरगुल से अधिक नहीं होगा। हमारे ऊपर सदाचरण का सदैव प्रभाव पड़ता है। यदि कोई व्यक्ति किसी धर्म या जाति की कन्या की रक्षा के लिए अपने प्राणों को दाँव पर लगा देता है तो उसके आचरण की मौन भाषा सभी व्यक्तियों को समझ में आ जाती है। प्रेम के आचरण को सभी स्वयं ही समझ लेते हैं।

लेखक के अनुसार व्यक्ति के विशाल जीवन में सभी प्रकार के अच्छे व बुरे कारक उसके आचरण का निर्माण करने में मद्दगार होते हैं। सभी के ऊँच–नीच और भले – बुरे की भावना पर आधारित विचार, अमीरी और गरीबी की स्थिति तथा अवनति व पतन आदि का व्यक्ति के आचरण का निर्माण करने में महत्वपूर्ण योगदान होता है बुरे विचार प्रत्येक स्थिति में अहितकर सिद्ध नहीं होते। लेखक कहते हैं कि धर्म – ग्रंथों में अनेक उपेदश भरे पड़े हैं, परंतु उनके अनुयायी उन उपेदशों के अनुसार आचरण नहीं करते। सभ्य आचरण के अभाव में हमारे धर्म और संप्रदाय हमारे में विद्वेष व घृणा उत्पन्न करते है। इसी कारण चारों तरफ हिंसा और अत्याचार का बोलबाला हो रहा है। मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य आचरण का विकास करना है। आचरण के विकास को संपूर्ण पर्यावरण प्रभावित करता है, चाहे वह पर्यावरण प्राकृतिक हो या शारीरिक हो मानव जीवन की उन्नति के लिए आचरण का विकास परमावश्यक है। लेखक ने महात्मा गाँधी जैसे महान् पुरुषों का उदाहरण देते हुए कहा है कि ऐसे महात्मा किसी पर्व निर्मित सड़क के द्वारा अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचे बल्कि अपने आचरण से स्वयं हो अपना मार्ग प्रशस्त किया। हमें भी प्रतिदिन अपने जीवन को स्वयं बनाना होगा तथा अपनी जीवन रूपी नैया को बनाकर इसे चलाना होगा।

लेखक कहता है कि में कोई नास्तिक हूँ और कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं करता। क्योंकि मुझे इन से कोई प्रयोजन नहीं है। परंतु में प्रातःकाल उठते ही अपनी खेती, बैल, हल आदि को प्रणाम करता हूँ यही मेरे लिए पर्याप्त है। मैं किसी को धोखा नहीं देता और यदि कोई मेरे साथ धोखा करे तो उससे मुझे कोई हानि नहीं होती। आगे लेखक ने आचरण को मानव उन्नति कारण बताते हुए विलासिता को मानव के पतन का कारण बताया है। वे कहते हैं कि रोमवासी बहुत परिश्रमी व वीर थे और अपने देश की रक्षा के लिए निरंतर तैयार रहते थे। उनका जीवन घोड़ों की पीठ पर बैठे – बैठे ही व्यतीत हो जाता था, परंतु जब से उनमें आलस्य की प्रवृत्ति पनपी जब वे संगीत, साहित्य और कला में डूब गए जब उन्होंने घोड़ों की पीठ को त्याग दिया तथा जब जंगलों व पहाड़ों को स्वच्छ वायु में व्यतीत होने वाले कठोर जीवन से उनका मन फिर गया, तभी से उनका पतन हो गया। इसके ठीक विपरीत एंग्लो – सैक्सन जाति के युरोपवासियों का जीवन सदैव परिश्रमी रहा जिस कारण वे उन्नति के शिखर पर पहुँच गए। लेखक का कहना है कि रेडियम एक बहुमूल्य और प्रकाशयुक्त धातु होती है जिसे बहुत ही प्रयत्न से प्राप्त किया जाता है। हमारा आचरण भी मूल्यवान तथा प्रकाशवान है। आचरण चाहे किसी व्यक्ति विशेष का हो, चाहे समाज का तथा चाहे विश्व समुदाय का, उसका निर्माण बड़ी कठिनाई और मेहनत से होता है। जिस प्रकार रेडियम का एक समुद्र के बहुत सारे जल को उड़ाकर हाथ लगता है, उसी प्रकार सत् आचरण की प्राप्ति भी सारी प्रकृति को खाक बनाए बिना अर्थात् भाप बनाकर उड़ाए बिना नहीं होती है। जब देवताओं ओर राक्षसों ने मिलकर समुद्र का मंथन किया था, तब जाकर थोड़ा – सा अमृत प्राप्त हुआ था। ठीक उसी प्रकार सारे विश्व के कण – कण को टटोलने के बाद ही आचरण रूपी स्वर्ण बहुत कम मात्रा में मिल सकेगा। निश्चय ही आलस्य में बैठे रहने पर हम आचरण को प्राप्त नहीं कर सकते। वस्तुतः इसके लिए कठोर एवं सतत् परिश्रम अपेक्षित है।

लेखक सरदार पूर्ण सिंह आचरण एवं समाज के उत्थान के लिए कठोर भौतिक कर्तव्यों की पृष्ठभूमि के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हिन्दुओं की अवनति का प्रमुख कारण उनका अतीत के गौरव में खोए रहना है। यदि उनका संबंध किसी प्राचीन असभ्य जाति के साथ होता है तो उनके वर्तमान वंश में भी ऐसे मनुष्य

होते जो अधिक होते। इनमें ऋषि भी होते तथा पराक्रमी वीर भी, सामान्य भी होते तो धैर्यशाली वीर पुरुष भी। लेकिन आजकल हिन्दू लोग अपने पूर्वज ऋषियों के पवित्र तथा प्रेम – जीवन को जानकर अहंकार के भाव से भरे हुए प्रसन्न हुए जा रहे हैं जिनकी गाथाएँ उपनिषदों और प्राणों में उपलब्ध है। परन्तु उनके स्थागयुक्त जीवन का अनुसरण करने की शक्ति इनमें दिखाई नहीं पड़ रही है। इसी का परिणाम है कि ये दिन– प्रतिदिन अवनति के गड्ढे में गिरते जा रहे हैं तथा इन्हें अपनी उन्नति के लिए कोई रास्ता नहीं दिखाई दे रहा है। प्राचीनकाल में यूरोप के लोग असभ्य थे, परंत आजकल हम असभ्य बन गए है। अपने समाज को ज्ञान–विज्ञान की चरम सीमा पर पहुंचाना तथा सदा ऋषियों को उत्पन्न करने योग्य समाज का निर्माण करना ही जीवन के नियमों का पालन करना ही हैं और कठिन परिश्रम व कर्तव्यों का अनुपालन करना ही श्रेष्ठ जीवन शैली है। लेखक का कहना है कि धर्म के आचरण की उपलब्धि दिखावटी आडम्बरों – आचरणों से नहीं होती, यदि ऐसा होता तो भारतवासी अब तक सूर्य के समान विशुद्ध आचरण से सम्पन्न हो गए होते। लेखक बताते हैं कि जहाँ पर आचरण की सभ्यता का आगमन हो जाता है। उस स्थान की शोभा ही निराली हो जाती है। वहाँ पर शारीरिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक किसी प्रकार की लड़ाई–झगड़ा या विद्रोह नहीं रहता। आचरण की सभ्यता के देश में न किसी का कोई झगड़ा है और न ही कोई युद्ध को संभावना है। वहाँ ऊँचे–नीच और अमीरी – गरीबी का भी भेदभाव देखने को नहीं मिलता, बल्कि एक आनंदमय समरसता के दर्शन होते हैं, प्रेम व एकता का राज्य रहता है। वहा ईश्वरीय भावों से परिपूर्ण मानव प्रेम को अधिक महत्व दिया जाता है। आचरण की ऐसी सभ्यता जब आती है तब नीले आसमान से वेदमंत्रों की ध्वनि सुनाई देती है। ज्ञान का सूर्योदय होता है और कमल की भांति नर–नारियों के हृदय खिल जाते हैं। चारों तरफ प्रभात जैसा सरस व सुखद वातावरण व्याप्त हो जाता है। नारद की बीणा का मधुर और मोहक स्वर सुनाई देने लगता है, ध्रुव के शंख की ध्वनि वातावरण को आनंद से भर देती है और प्रहलाद का नृत्य हमारे जीवन में उल्लास का संचार कर देता है। शिव का डमरू हमारे अंदर चेतना उत्पन्न कर देता है तथा कृष्ण की बॉसुरी का मधुर स्वर प्रेम। अंत में लेखक कहता है कि जहाँ ऐसी ध्रुव धीरता हो, जहाँ ऐसी प्रेम, सद्भाव और आत्मीयता की भावना हो और जहाँ ऐसी समरसता एवं आह्लाद हो, वहीं आचरण की सभ्यता का सुनहरा देश है।

'आचरण की सभ्यता' सरदार पूर्णसिंह द्वारा लिखित निबंध है। इस निबंध में लेखक ने आचरण की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है तथा इसे ही सर्वोत्तम बताया है। आचरण की सभ्यता के प्रभाव को वाणी या कलम के द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। आचरण की सभ्यता से 'युक्त मूर्तिकार के समक्ष सदैव नयी छवि उपस्थित रहती है जिसके सभी अंग – प्रत्यंग नवीन होते हैं तथा उसे चारों दिशाओं में नवीनता के ही दर्शन होते हैं। सदाचरण मनुष्य की आत्मा को स्थायी रूप से प्रभावित करता है। आचरण में निहित मौन भाषा की तुलना सामान्य भाषा से करते हुए लेखक ने उच्च आचरण को श्रेष्ठता सिद्ध की है। यहाँ लेखक ने संसार की लिखित भाषाओं तथा आचरण की मौन भाषा का तुलनात्मक विवेचन भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि आचरण की निर्माण आकस्मिक रूप से नहीं होता, बल्कि लंबी और कठिन साधना के बाद ही आचरण की सभ्यता का निर्माण ठीक उसी प्रकार होता है। जिस प्रकार प्रकृति ने शताब्दियों की साधना के पश्चात् हिमालय का निर्माण किया है। श्रेष्ठ आचरण का निर्माण किसी मदारी या जादूगर द्वारा दर्शकों को धोखा देकर क्षण भर में हथेली पर उगाए हुए आम के वृक्ष की भाँति नहीं होता, इसके निर्माण में एक लम्बा समय लगता है। इस प्रकार लेखक ने प्रस्तुत निबंध में भावात्मक शैली में आचरण की तुलना हिमालय एवं मंदिर से की है। उन्होंने उल्लेख किया है कि किसी महापुरुष के सदाचरण अथवा किसी आकस्मिक व्यक्तिगत अनुभूति के प्रभावस्वरूप ही व्यक्ति के आचरण में परिवर्तन होता है। यहाँ सटीक उदाहरणों का प्रयोग करके आचरण को प्रभावित करने वाले तत्वों पर प्रकाश डाला गया है। लेखक यहाँ स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति के आचरण का निर्माण करने में न केवल अच्छे विचार और व्यवहार ही सहायक होते हैं, अपितु बुरे विचार, बुरे आचरण, दुखद स्थितियाँ आदि भी व्यक्ति के आचरण का निर्माण करने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होते है। इस प्रकार व्यक्ति के आचरण का निर्माण करने में अच्छाई और बुराई दोनों का ही सापेक्ष महत्व होता है।

प्रस्तुत निबंध में लेखक ने आचरण की महत्ता पर बल देते हुए बताया है कि धर्म और सम्प्रदाय प्रेमपूर्ण आचरण के अभाव में परस्पर द्वेष, हिंसा व अत्याचार ही फैलाते है। लोग किसी धर्म का आचरण करते समय उसकी बाहरी क्रियाओं पर ध्यान देते हैं, परंतु उसके वास्तविक उपदेशों की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते। धार्मिक ग्रंथों में उपदेशों से भी कुछ बातें हैं जिन्हें शब्दों द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। ये बातें सभ्य आचरण से संबंधित हैं। लेखक की मान्यता हैं कि आचरण का विकास करना ही हमारे जीवन का एकमात्र उदे्श्य होना चाहिए। उस व्यक्ति के लिए कोई भी धर्म अथवा सम्प्रदाय कल्याणकारी नहीं हो सकता जो सदाचरण से रहित है। मानव जीवन की उन्नति के लिए आचरण का विकास परम आवश्यक होता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का महान उद्देश्य आचरण का विकास ही होना चाहिए। कोई भी आचरणहीन व्यक्ति अपने जीवन में प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए जीवन में उन्नति प्राप्त करने के लिए आचरण का विकास हमें करना ही होगा। व्यक्ति अथवा सम्पूर्ण मानव जाति के आचरण को विकसित करने के लिए शारीरिक, मानसिक, प्राकृतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में विद्यमान विभिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। आचरण के विकास हेतु हमें उन सभी कर्मों को धर्म के अंतर्गत स्वीकार करना होगा जो आचरण का विकास करते हैं। यहाँ लेखक ने कर्मठता को उन्नति तथा विलासिता को अवनति का कारण बताते हुए चरित्र और आचरण में कर्मठता को महत्व देने की प्रेरणा दी गई है। उन्होंने रोमवासियों के पतन का कारण भोग विलास और आलस्य को बताया है। लेखक आचरण की तुलना रेडियम से करते हुए बताया है कि रेडियम एक बहुमूल्य और प्रकाशयुक्त धातु होती हैं जिस बहुत ही परिश्रम से प्राप्त किया जाता है। हमारा आचरण भी रेडियम की तरह बहुत ही मूल्यवान और प्रकाशवान है। आचरण चाहे किसी व्यक्ति विशेष का हो, चाहे समाज का हो और चाहे विश्व समुदाय का, उसका निर्माण बड़ी कठिनाई तथा परिश्रम से होता है। जिस प्रकार रेडियम का एक कण समुद्र के अत्यधिक जल को उड़ाकर हमारे हाथ लगाता है, ठीक उसी प्रकार सारे विश्‍व के कण – कण को टटोलने के बाद ही आचरण रूपी स्वर्ण बहुत कम मात्रा में मिलता है। आलसियों के लिए तो आचरण प्राप्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

लेखक का मत है कि सदाचरण में निर्जीव में भी जीवन का संचार हो जाता है। वे आचरण की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि बड़ी–बड़ी बातें करना, पुस्तके लिखना और दूसरों को उपदेश देना आसान बातें हैं, परंतु ऊँचे आदर्शों को अपने आचरण में उतारना अत्यन्त कठिन है। आम आदमी पर सबसे अधिक प्रभाव सभ्य आचरण का ही पड़ता है। परिश्रम, प्रेम तथा सरल व्यवहार ही इसका पैमाना है। यदि कोई व्यक्ति ऐसा आचरण करता है तो वह दूसरों को अवश्य प्रभावित करता है। ऐसा व्यक्ति यदि अपने मुख से एक शब्द भी नहीं निकालता तो भी उसकी मौन शक्ति का प्रभाव दूसरों पर अवश्य पढ़ता है। निजीव पेड़–पौधों में भी जीवन का संचार होने लगता है और सूखे कुओं में भी जल भर जाता है। इस विषय में लेखक लिखते हैं– "आचरण के मौन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है। नये नये विचार स्वयं ही प्रकट होने लगते हैं। सूखे वाष्ट सचमुच ही हरे – भरे हो जाते हैं। सूखे कूपों में जलभर आता है। नये नेत्र मिलते हैं। कुल पदार्थों के साथ एक नया मैत्री भाव फूट पड़ता है। सूर्य, जल, वायु, पुष्प, पत्थर, घास, पात, नर नारी और बालक तक में एक अभूतपूर्व सुन्दर मूर्ति के दर्शन होने लगते हैं।''

आलोच्य निबंध के माध्यम से सरदार पूर्णसिंह ने आचरण के महत्व को दर्शाया है। उन्होंने शुद्ध आचरण को ही अधिक महत्व दिया है। यहाँ शुद्ध आचरण से तात्पर्य नम्रता, दया, त्याग, प्रेम, उदारता से युक्त स्वभाव से है। अच्छे आचरण वाला व्यक्ति सभी को अपने वश में कर लेता है। जो व्यक्ति अच्छे आचरण वाले होते हैं, चाहे वे कोई साधारण हो या धार्मिक हो, उनके बातें सभी के दिल को प्रभावित करती हैं। लेखक ने गरीब पहाड़ी किसान और शिकारी राजा के द्वारा सच्चे आचरण का रूप स्पष्ट किया है कि किस प्रकार वह किसान अपने पवित्र आचरण द्वारा शिकारी राजा के दूषित हृदय को भी परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार पवित्रता तथा अपवित्रता दोनों से ही आचरण का निर्माण होता है। अच्छे बुरे विचार आचरण को बनाने में सहायक होते हैं। बाह्य

जगत् के व्यापार सदैव अंतरात्मा को प्रभावित करते हैं तथा उन प्रभावों से ही आचरण का निर्माण होता है। इस निबंध में लेखक हमें यह संदेश देते हैं कि सदाचरण एक अपूर्व वस्तु है। जिस व्यक्ति को आचरण का यह भंडार मिल जाता है, उसके लिए कुछ भी अप्राप्य नही रह जाता। सदाचरण सभी विद्याओं में, कलाओं, साहित्य एवं राजस्व से भी श्रेष्ठ है सदाचरण की मौन भाषा मन के विभिन्न क्रियाकलापों से स्वयं प्रकट होती है। इसके निर्माण में दीर्घकाल लगता है। इस प्रकार इसकी प्राप्ति आसानी से नहीं होती है। आचरण की सभ्यता के विकसित होने पर मानव में मानसिक सभ्यता का उदय होता है तथा समस्त द्वन्द्व स्वयं ही समाप्त हो जाते हैं। इस निबंध के माध्यम से लेखक ने हमें रचनात्मक कार्यों में लगने का भी संदेश दिया है।

लेखक का स्पष्ट मत है कि केवल धर्म किसी जाति को उन्नत नहीं बनाता, बल्कि कठोर जीवन परिश्रम एवं सतत् प्रयत्न किसी जाति को उन्नत बनाते हैं। इसके साथ ही संसार में सतत् परिश्रम ही आचरण का स्वर्ण हाथ होता है। कभी भी अकर्मण्य और आलसी आचरण की सभ्यता को प्राप्त नहीं कर पाते। आचरण की प्राप्ति केवल स्वप्न देखने से नहीं होती, बल्कि निरंतर परिश्रम करने से होती है। धार्मिक पुस्तकों से कुछ नही होता और न ही आडम्बरों से शुद्ध आचरण की प्राप्ति होती है। इसलिए सर्वप्रथम प्राकृतिक सभ्यता प्राप्त करो, प्राकृतिक सभ्यता से हो मानसिक सभ्यता आएगी। मानसिक सभ्यता के आते ही आचरण की सभ्यता प्राप्त हो जाएगी। इस आचरण की सभ्यता के प्राप्त होते ही शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सब संकट समाप्त हो जाएगे। द्वेष –विद्रोह, ऊंच –नीच, अमीर – गरीब आदि की भावना का भेदभाव समाप्त हो जाएगा। मानवता की स्थापना होगी और सर्वत्र प्रेम व एकता का अखंड राज्य स्थापित हो जाएगा।

9.4.1 'आचरण की सभ्यता' निबंध की भाषा– शैली

भाषा अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन होती है और भाषा के माध्यम से हृदयस्थ भाव कुशलता, सजीवता एवं मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त होते हैं, उतने अन्य किसी साधन द्वारा संभव नहीं पूर्णसिंह एक भावुक निबंधकार थे और उनके हृदय में एक कवि की तरह भावों का समुद्र हिलोरें लिया करता था। इनके निबंधों की भाषा में विषय को मूर्तिमान करने की अद्भुत क्षमता है। एक सफल चित्रकार की भाति वे शब्दों की सहायता से एक परिपूर्ण चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं।

'आचरण की सभ्यता' निबंध की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। लेखक अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू–फारसी, हिन्दी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता थे। इसलिए उन्होंने अपने सभी निबंधों में इन सभी भाषओं के शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयोग किए हैं। आलोच्य निबंध में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग उन्होंने पर्यप्त मात्रा में किया है जैसे – 'कूप', 'श्वेत', 'कपोल', 'व्याख्यान', 'पुष्प', 'नृत्य', 'काष्ठ', 'नेत्र', 'नयन', 'नाछ', 'ज्ञानोदय', 'अचल', 'सत्संग', 'मिथ्या', 'उच्च', 'उन्नति', 'प्रतिबिंब', 'गौरवान्वित', 'प्रयोजन', 'अंतजलि', 'ज्योति', 'अनंत', 'पात', 'श्रुति', 'प्रत्यक्ष', 'सन्ध्या', 'स्वप्न' आदि। उनके निबंधों में उर्दू – फारसी के शब्दों की भी भरमार है। उन्होंने लोकप्रचलित उर्दू–फारसी के शब्दों का खुले दिल से अपनी भाषा में प्रयोग किया है, जैसे – 'बे–नाम', 'बे– हिसाब', 'बे–मकान', 'नुसखा', 'कुरान', 'गिरजा', पैंगबर', 'नमाज', 'जंग', 'बदहजमी', 'ईसा', 'मुल्लाह', "मस्जिद', 'पादरी' आदि। पूर्णसिंह ने अपने निबंधों में अंग्रेजी के शब्दों को भी पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है और उनके भाषा के प्रवाह में कोई व्याधात उत्पन्न नहीं हुआ है। जैसे – 'स्टीम', 'इंजिन', 'रेडियम', 'जनरल' आदि। लेखक ने मुहावरों और लोकोक्तियों के द्वारा भाषा में एक अपूर्व ओज, तेज एवं गांभीर्य लाने का भी प्रयास किया है। जैसे – 'बाल तक बांका न होना', 'आंखों में मिट्टी डालना', 'छाती पर मूंग दलना' आदि। उन्होंने प्रस्तुत निबंध में सुक्तिपरक वाक्यों को स्थान दिया है। कुछ सूक्तिपरक वाक्य इस प्रकार हैं–

1. ''आचरण की सभ्यतामय भाषा सदा मौन रहती है।''
2. "आचरण के मौन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है।''

3. ''प्रेम की भाषा शब्द रहित है।''

4. ''सूखे काष्ठ सचमुच ही हरे हो जाते हैं।''

5. पुस्तकों में लिखे हुए नुस्खों से तो और भी अधिक बदहजमी हो जाती है।''

6. ''आचरण का विकास जीवन का परमोद्देश्य है।''

7. "पवित्र अपवित्रता उतनी ही बलवती हैं, जितनी कि पवित्र पवित्रता।''

8. ''मानसिक सभ्यता के होने पर आचरण सभ्यता की प्राप्त संभव है।''

9. ''संसार की खाक छानकर आचरण का स्वर्ण हाथ आता है।''

10. ''वीरों के बनाने के कारखाने नहीं होते।''

पूर्णसिंह के प्रस्तुत निबंध की वाक्य–रचना सरल, व्यवस्थित और सुगठित है। इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है – ''आचरण के मीन व्याख्यान से मनुष्य को एक नया जीवन प्राप्त होता है। नये नये विचार स्वयं ही प्रकट होने लगते हैं। सूखे काष्ठ सचमुच ही हरे हो जाते हैं। सूखे कूपों में जल भर आता है। नये नेत्र मिलते हैं। कुल पदार्थों के साथ एक नया मैत्री भाव फूट पड़ता है।''

संक्षेप में, उनकी भाषा प्रौढ़, संयत, परिमार्जित एवं व्याकरण के नियमों के अनुकूल है। विषयानुकूलता की दृष्टि से भाषा में स्वाभाविकता भी पाई जाती है। उनकी भाषा के दो रूप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं – 1. साधारण और 2. क्लिष्ट कथानक के वर्णन में भाषा का साधारण रूप रहता है और विचार प्रधान रचना में भाषा क्लिष्ट हो जाती है। कहीं – कहीं भावावेश के कारण – व्याकरण संबंधी अशुद्धियाँ भी अवश्य हो गई हैं।

सरदार पूर्णसिंह एक महान शैलीकार थे। उनकी शैली में उनका व्यक्तित्व झलकता है। "शैली ही लेखन का व्यक्तित्व है।'' यह उक्ति उनके निबंधों में पूर्णतया चरितार्थ होती है। उन्होंने अपने निबंधों में वर्णनात्मक, भावात्मक विचारात्मक, चित्रात्मक, सूत्र, संलाप शैलियों का प्रयोग किया है। उनके भावात्मक निबंध प्रायः तीन शैलियों में लिखे गए हैं– धारा शैली तरंग शैली और विक्षेप शैली। धारा शैली का चमत्कार आचरण की सभ्यता' में मिलता है। जहाँ लेखक लिखता है –"जिस समय आचरण की सभ्यता संसार में आती है उस समय नीले आकाश से मनुष्य को वेद–ध्वनि सुनाई देती है, नर–नारी पुष्पवत् खिलते जाते हैं, प्रभात हो जाता है। प्रभात का गजर बज जाता है, नारद की वीणा अलापने लगती है, ध्वज का शंख गूंज उठता है। प्रहलाद का नृत्य होता है, शिव का डमरू बजता है, कृष्ण की बांसुरी की धुन प्रारंभ हो जाती है। जहाँ ऐसे पुरुष रहते है, जहाँ ऐसी ज्योति होती है, यहीं आचरण की सभ्यता का सुनहरा देश है।''

इस धारा शैली में भावों का प्रवाह आदि से अंत तक एक – सा रहता है। उनमें उतार – चढ़ाव नहीं होता और उनको गति भी उखड़ी उखड़ी–सी दिखाई नहीं देती। जहाँ लेखक का विषय गंभीर है, यहाँ उन्होंने विधारात्मक शैली का प्रयोग किया है। इस शैली में भाषा संस्कृतनिष्ठ है तथा वाक्य लम्बे है। एक उदाहरण प्रस्तुत है – "यदि एक ब्राह्मण किसी डूबती कन्या की रक्षा के लिए, चाहे वह कन्या जिस जाति की हो, जिस किसी मनुष्य की हो, जिस किसी देश की हो अपने आपको गंगा में फेंक दे चाहे उसके प्राण, यह काम करने में रहें या जायें, तो इस कार्य में प्रेरक आचरण की मौनमयी भाषा किस देश में, किस जाति में और किस काल में कौन नहीं समझ सकता?

सरदार पूर्णसिंह ने प्रायः भावात्मक निबंध लिखे हैं। इसीलिए उनकी शैली में भावात्मकता तथा काव्यात्मकता स्थान–स्थान पर मिलती है। यहाँ तक कि उनके विचार भी भावकता में लिपटे हुए व्यक्त होते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त वर्णनात्मक एक उदाहरण प्रस्तुत है – ''मौन रूपी व्याख्यान की महत्ता इतनी बलवती, इतनी अर्थवती और इतनी प्रभावती होती है कि उसके सामने क्या मातृभाषा, क्या साहित्य भाषा और क्या अन्य देश की भाषा सब तुच्छ प्रतीत होती है।'' शैली अपेक्षाकृत अधिक सुबोध तथा सरल है। इसमें वाक्य छोटे–छोटे हैं। विषय

का चित्रण बड़ी मार्मिकता के साथ हुआ है। यह शैली अधिक प्रवाहमयी तथा हृदयग्राहिणी भी है अपने कथन को स्पष्ट करने से पहले लेखक उसे सूत्र रूप में कह देते हैं तथा फिर उसकी व्याख्या करते हैं। उनके ये सूत्र वाक्य सूरक्तियों का–सा आनंद प्रदान करते हैं। उन्होंने 'आचरण की सभ्यता' निबंध में लिखा है –"आचरण की सभ्यतामय भाषा सदा मौन रहती है। प्रेम की भाषा शब्द रहित है, आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊंचे कलश वाला मंदिर है।''

अध्यापक पूर्णसिंह के गद्य का लाक्षणिक रूप अद्वितीय है। उनकी भाषा जैसी लाक्षणिकता अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकती। उनके पूर्व के निबंधकारों में ऐसे प्रयोग दिखाई नहीं देते। इस प्रकार की शैली से भाषा में सहजता, प्रवाहमयता, रोचकता, रमणीयता, अर्थगत विलक्षणता तथा अभिव्यंजना का मौलिक और अनुपम दर्शन होता है। एक – एक वाक्य विचार को मूर्तिमान–सा कर देता है। जैसे – आचरण के नेत्र को एक अश्रु से जगत भर के नेत्र भीग जाते हैं। आचरण नेत्र के आनंद नृत्य से उन्म विष्णु होकर वृक्षों और पर्वतों तक के हृदय नृत्य करने लगते हैं।" उनकी शैली में जहाँ – तहाँ हास्य और व्यंग्य के भी दर्शन हो जाते हैं। इस प्रकार की शैली में निबंधकार का धार्मिक आडम्बर आदि के प्रति आक्रोश प्रबल रहा है। कभी वह हास्य रस के द्वारा गंभीर विषय को सहज तथा संवेध बना देता है। 'आचरण की सभ्यता' निबंध में हास्य – व्यंग्य रस का एक उदाहरण देखिए – ''परंतु अंग्रेजी भाषा का व्याख्यान चाहे वह कारलाइल का लिखा हुआ क्यों न हो – बनारस के पंडितों के लिए रामलीला ही है।'' एक अन्य उदाहरण देखिए – "पुस्तकों में लिखे नुस्खों से तो और भी अधिक बदहजमी हो जाती है। सारे वेद और शास्त्र भी यदि घोल कर पी लिये जाएँ तो भी आदर्श आचरण की प्राप्ति नहीं होगी।"

निष्कर्ष– निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि सरदार पूर्णसिंह की भाषा अत्यन्त सरल, मधुर और आकर्षक है। उसमें एक गति है, सौंदर्य है और हृदय व मस्तिष्क को बाँधने वाला अद्‌भुत आकर्षण है। वे अपनी साधारण बात से पाठकों को चमत्कृत कर देते हैं। उनके निबंध अभिव्यक्ति की सहजता, भावों का आवेग तथा शब्दों की कसावट से परिपूर्ण है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है। वे हिन्दी के शब्दों के साथ–साथ अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी, पंजाबी के शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। सूत्र रूप में अपनी बात कहने वे मंदिर है। उनके शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता यह हैं कि उन्होंने विचार प्रधान निबंधों को भी भावात्मक बना दिया है। लाक्षणिकता उनकी शैली का प्राण हैं। अपने विचारों और भाषा पर असाधारण अधिकार होने के कारण उनके निबंध पाठकों पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। अनेक समालचिको ने उनके सृजन एवं शिल्प की प्रशंसा की है। डॉ. जयनाथ नलिन के अनुसार, सरदार पूर्णसिह की भाषा शब्दों के नगीनों की तरह है।" डॉ. गुलाबराय ने उनकी भाषा को लक्षणा और व्यंजनाशक्ति से जुड़ा हुआ माना है। इस प्रकार सरदार पूर्णसिंह द्विवेदी युग एक महत्वपूर्ण निबंधकार हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'आचरण की सभ्यता' में किस भाषा को शब्द रहित कहा है?
2. 'न मैं किसी गिरजे जाता हूं, और न किसी मन्दिर में' किसका कथन है?

9.5 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि सरदार पूर्ण सिंह एक अलोचक, निबंधकार, भाषाशास्त्री, समाजचिंतक और इतिहासवेत्ता रहे हैं। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने कवि और आलोचक के रूप में पदार्पण किया। उनकी कुछ कविताएं अज्ञेय द्वारा संपादित तार सप्तक में संकलित है। हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना सुव्यवस्थित करने और उसे नई दिशा देने का महत्वपूर्ण काम उन्होंने किया। उनके साहित्य – चिंतन के केन्द्र में भारतीय समाज का जन – जीवन, उसकी समस्याएं और उसकी आकांक्षाएं रही है।

9.6 कठिन शब्दावली

चित्तवृत्ति – प्रकृति, झुकाव

अभिव्यक्ति – अभिव्यंजना, स्पष्टीकरण

9.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. सरदार पूर्ण सिंह
2. जापान

अभ्यास प्रश्न–2

1. प्रेम की भाषा
2. सरदार पूर्ण सिंह

9.8 संदर्भित पुस्तकें

1. सरदार पूर्ण सिंह, आचरण की सभ्यता, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
2. बच्चन सिंह, साहित्यिक निबंध आधुनिक दृष्टिकोण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

9.9 सात्रिक प्रश्न

1. कुबेरनाथ राय द्वारा रचित 'षोड़शी के चरण कमल' निबंध का सार अपने शब्दों में लिखिए।
2. कुबेरनाथ राय के जीवन परिचय पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई—10
व्याख्या भाग

संरचना

10.1 भूमिका
10.2 उद्देश्य
10.3 व्याख्या भाग
स्वयं आकलन प्रश्न—1
10.4 सारांश
10.5 कठिन शब्दावली
10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
10.7 संदर्भित पुस्तकें
10.8 सात्रिक प्रश्न

10.1 भूमिका

इकाई नौ में हमने 'सरदार पूर्ण सिंह' के जीवन परिचय एवं उनके निबंध 'आचरण की सभ्यता' का अध्ययन किया। इकाई दस में हम प्रमुख निबंधकारों के निबंधों की व्याख्या का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इकाई दस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. 'कौलिन्य और सद्‌वृत' निबन्ध की व्याख्या क्या है?
2. 'कविता क्या है' निबन्ध की व्याख्या क्या है?
3. 'नाखून क्यों बढ़ते है' निबंध की व्याख्या क्या है?
4. 'बात' निबंध की व्याख्या क्या है?

10.3 व्याख्या भाग

कौलीन्य और संद्‌वृत्त निबन्ध से

1. रूपया पैसा हाथ पांव........ फिकर कुछ भी उसे नहीं होती

प्रसंग

प्रस्तुत अनुच्छेवांश बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखित निबन्ध कौलीन्य और सद्‌वृत से लिया गया है। यह निबन्ध भट्ट निबंधावली भाग – 1, भाग– 2 में संकलित है। भट्ट जी ने इस निबन्ध के आरम्भ में 'न कल वृहीनस्य प्रमाणमित्ति में मतिः । अन्त्येष्वपिठि जातानं वृत्तमे विशिष्यते।

श्लोक उद्‌धृत कर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है। कि कुलीन वह है जिसमें नेक चलनी है। इसके विपरीत यह नहीं जिसके पास धन है परन्तु जिसमें चलन नहीं। सद्‌वृत होना जरूरी है। धनवान होना कोई मायने नहीं रखता।

व्याख्याः

निबन्धकार का कहना है कि धन से हीन व्यक्ति दरिद्र नहीं परन्तु सद्‌वृत नहीं तो दरिद्र है। धन तो आता, चला जाता हैं। वैसे भी रूपया, पैसा तो हाथ – पांव की मैल है, परन्तु चलन या चरित्र जो व्यक्ति रंगीला हो जाता

है उसका भले लोगों में आदर पाना मुशकिल हो जाता है। तभी तो श्रेष्ठ लोग सांसारिक तुच्छ क्षणिक सुखों को लात मार देता है। बेशक गरीबी में अनेक कष्ट झेल लेते हैं, अभावग्रस्त जीवन जी लेते हैं। परन्तु जो कार्य उनके पद प्रतिष्ठा के अनुकल नहीं होता उसे नहीं करते। वैसे सिद्धांत भी है – 'न शयानः पत्तयध' / गिरां क्या गिरेगा। गिरने का डर उसे ही रहता है जो उपर को चढ़ा है, सम्मानित व्यक्ति है। जो मैले कपड़े पहने है उसे मैली जगह बैठने में कोई संकोच नहीं होता। वैसे ही जो दंगीला होगा, या बेशरम, हो उसे शीलपन की चिंता कहां होती है। अतः कुलीनता धन से नहीं, श्रेष्ठ जाति में जन्म लेने में नहीं बल्कि सद्वृत में हैं, नेकचलनी में है, शील पालन में है।

2. कौलीनय ऐसी वस्तु .... कुलीनता का प्रधान अंग है।

प्रसंग–

प्रस्तुत अनुच्छेदागं बालकृष्ण भट्ट के निबन्ध 'कौलीन्य और सद्वृत' से लिया गया है। प्रस्तुत निबन्ध में निबन्धकार ने कुलीन और अकुलीन होने के गुणों का संकेत दिया है। भट्ट जी का माना है कि कुलीनता पैसे के कारण नहीं बल्कि सद्भूत के कारण होती है। शीलपालन ही कुलीनता का मुख्य लक्ष्ण है।

व्याख्या :

प्रस्तुत पक्तियों में निबन्धकार 'कौलीन्य' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते कहते है कि कौलीन्य या कुलीनता ऐसी वस्तु नहीं जो धन से बढ़ जाती है। अर्थात धनी होने पर कोई व्यक्ति कुलीन हो जाता है। और निर्धनता होने पर उसकी कुलीनता घट जाती है! यह अदूरदर्शियों का सिद्धांत हो सकता है। परन्तु कुलीनता तो मनुष्य के कर्म से ही निश्चित होती है। किसी निषिद घटिया, असामाजिक, आचरण करने से पहले कुलीन अवश्य सोचता है। सौ बार सोचता है। यदि वह आचरण उसके वृत के अनुकुल होगा तभी उस आचरण को करेगा अन्यथा नहीं। दूसरी और जिस व्यक्ति ने कौलीन्य की गंध भी नहीं है वह बेधडक उस आचरण को कर गुजरगा। निबन्धकार का कहना है कि इस उदाहरण से आप स्वय समझ गए होंगे की शील या वृत्त ही कुलीनता का प्रधान अंग हैं, अनिवार्यता है, श्रेष्ठ आचरण ही कुलीनता की पहचान है। इस निबन्ध द्वारा भट्ट जी ने उन दम्भी, अनाचारी, धनी लोगों का भ्रम भी तोड़ा है जो यह मानते है कि हम धनवान है हम कुलीन है, कर्म चाहे शीलता भी है, या अश्लीलता। जीवन की सार्थकता भी शील पालन में है, सद्वृत में है। यही कौलीन्य है।

3. ''कुल की रक्षा सर्वथा .... इसी पर निर्भर है।''

प्रसंग–

प्रस्तुत अनुच्छेदांश कौलीन्य और सद्वृत निबन्ध से लिया गया है। इसके लेखक बालकृष्ण भट्ट हैं। भट्ट भारतेन्दु कालीन निबन्ध कार हैं। राष्ट्रीय जनजागरण, राष्ट्रीय चेतना उस समय के साहित्य के मुखर स्वर थे। भट्ट जी ने अपनी पत्रिका के माध्यम से इस आन्दोलन में भरपूर योगदान दिया। प्रस्तुत निबन्ध 'कौलीन्य और सद्वृत' की मूल संवेदना भारतीयों का सद्वृत की और उन्मुख करना मुख्य रहा क्योंकि राष्ट्रीय सेवा हेतु नागरिकों का चरित्र शील होना जरूरी है। शीलवान नागरिक देश को हर संकट से उबारने के लिए तत्पर रहता है। अच्छे नागरिक, अच्छी संतान देना स्त्रियों का ही दायित्व है, धर्म है जो उन्हीं पर निर्भर करता है।

व्याख्याः

कौलीन्य और सद्वृत निबन्ध की प्रस्तुत पंक्तियों में निबंधकार बालकृष्ण भट्ट यह स्वीकारते हैं कि कुल की रक्षा सदैव स्त्रियों के अधीन है। इसलिए नीतिवादियों ने कहा है कि स्त्रियों का चरित्रवान होना कुलीनता की पहली सीढ़ी है। ये एक उदाहरण देकर अपने कथन की पुष्टि करते हैं कि उन्हें अपने चित्र का यह सिद्धांत बड़ा पसन्द आया कि जिस घर में लड़की दें उस घर की बहुत बड़ी जांच करने की आवश्यकता नहीं जितनी उसकी जिस घर की लड़की हमारे घर आनी हो। क्योंकि हमारे भविष्य सन्तान का भला या बुरा होना उसी पर निर्भर

है बाल विवाह से भी यह बड़ी हानि है कि आथाम्मा के अनुसार केवल हाड़ मात्र देखकर लड़का या लड़की के लिए लोग मरे मुहं गिरते है जैसे मुर्गी खाकार पर टूटती है। इसी कारण हम दामपत्य सुख से वंचित हो रहे हैं। अप्रत्यक्ष रूप से भट्ट जी ने उसी सत्य का संकेत किया है कि कुलीनता धन से नहीं सद्वृत से हैं। अतः हमें किसी दहेज आदि के प्रलोभन में, अपार धन पाने की इच्छा में गलत निर्णय नहीं लेना चाहिएं सद्वृत को, झील को प्राथमिकता देनी चाहिए। अच्छे कुल की सन्तति ही विपति की कसौटी में कसने पर कभी डगमागाती नहीं।

4. जितने तरह के अभियान .... देखते ही बनता है।

प्रसंग

प्रस्तुत अनुच्छेदांश बालकृष्ण भट्ट के निबन्ध 'कौलीन्य और सद्वृत' से लिया गया है। जो भट्ट निबन्धावली भाग – एक और दो से संकलित है। भट्ट जी निबन्ध लेखक के साथ अपने युग के श्रेष्ठ पत्रकार भी थे। पत्रिका के माध्यम से उन्होंने तत्कालीन निबन्धकारों को अपनी पत्रिका में स्थान ही नहीं दिया बल्कि उन्हें दिशाएं भी दिखायी। इस निबन्ध में भट्ट जी ने कुलीनता को अनेक प्रसंगों के माध्यम से व्याख्यायित करते हुए कहा है कि संसार में लोग धन, और हाड़ की उत्तमता के कारण भी ऐठतें रहते हैं।

व्याख्याः

निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट कहते हैं कि संसार में कई प्रधान के अभिमान हैं। परन्तु उन सब में कुल का अभिमान बड़ा छूछा लगता है, घटिया किस्म का लगता है, यदि व्यक्ति के पास किसी अच्छे गुण की गरिमा हो या अधिक धन पास हो तो उसे कुल का अभिमान भी जंचता है, सोडता है। परन्तु यहां कितने ही मुफलिश, बेकार कल्लाच, फाकेमस्त अपने बाढ़ के उत्तमता की शेखी में ऐंठे जाते हैं, अभिमानी बने फिरते है। जो देखते ही बनता है। जिसे आर्थोडक्स या आर्थोरा, कौलीन्य कहेंगे ये हमारी उन्नति में बड़ी बाधा डाल रहा है। और हमें स्वच्छंद नहीं होने देता। कहने का भाव कुलीनता का दठी अर्थ क्या है, इससे इन अबोध बने फिर रहे हैं। कुलीनता न तो धनी होने में है न ही शारीरिक उत्तमता पाने से, वह तो शील में है वृत में हैं। यही रहस्य स्पष्ट करना निबन्धकार का मूल उद्देश्य हैः;

अति लघुत्तरी प्रश्न :

1. किसी व्यक्ति को शिष्ट भले लोगों में आदर पाना कठिन हो जाता है?
2. कौन सी ऐसी वस्तु है जो धन से नहीं बढ़ती है?
3. कुलीन कैसे आचरण से रूकता है?
4. किन अभिमानों में सब से छूछा अभिमान कौन है ?
5. कुल में कुलीनता की पहली सीढ़ी कौन है?
6. सत्कुलाभिमान किसके निमित प्रशसनीय है?
7. लक्ष्मी जी किन तीन वस्तुओं को साथ लिए डोलती फिरती हैं ?
8. कैसी कुलीनता कौमियत को कलंक है?

नाखुन क्यों बढ़ते हैं?

व्याख्या भाग

1. नख–घर मनुष्य अब एटम–बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के नखदन्तावलम्बी जीव हो–पशु के साथ एक ही सतह पर विचरने वाले और चरने वाले।

शब्दार्थ – नख = नाखून। एटम = अणु । भरोसा = विश्वास। अस्त्र = फेंक कर चलाया जाने वाला हथियार। वंचित = रहित। नखदन्तावलम्बी = नाखुन और दांतों पर आश्रित।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' नामक निबंध से लिया गया है। इन पंक्तियों से पूर्व लेखक यह बता चुका है कि किस प्रकार मनुष्य ने अपने अस्त्र शस्त्र आदि से असुर, नाग, यज्ञ, यक्ष आदि जातियों को पराजित किया। परन्तु मनुष्य को इससे भी संतोष नहीं हुआ और उसने बन्दूक, बमवर्षक विमान, तोप आदि न जाने कैसे – कैसे अस्त्रों के प्रयोग से इतिहास को खून भरी कीचड़ से सराबोर कर दिया। इन पंक्तियों में वह कहता है –

व्याख्या– लेखक कहता है के यद्यपि मनुष्य ने विनाश के सैंकड़ों ही आस्त्र – शस्त्र बना लिए हैं। और अब तो उसने क्षण भर में सब कुछ नष्ट कर देने वाले परमाणु अस्त्र भी बना लिए है। उसे अब परमाणु बमों की मारक क्षमता पर पूरा भरोसा है, परन्तु वह अभी भी संतुष्ट नहीं हुआ है। अब वह अणु बम से भी घातक हाइड्रोजन बम बनाने के लिए प्रयास कर रहा है। लेखक कहता है कि इतना विकास करने पर भी मनुष्य के नाखून अभी अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं और वे निरन्तर बढ़ते रहते हैं। प्रकृति ने आदिम युग में मनुष्य को जिस प्राकृतिक हथियार अर्थात् नाखून से सुसज्जित किया था, उससे उसने मनुष्य को अभी भी वंचित नहीं किया है और वह अपने इस उपहार से मनुष्य को यह याद दिलाती रहती है कि वह आज भी वही लाखों वर्ष पूर्व वाला आदिम मनुष्य है, जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरे पशुओं, जीवों आदि को अपने नाखूनों और दाँतों से चीर – फाड़ कर खाया करता था। ये नाखून मनुष्य को याद दिलाते है कि उसमें अभी भी पशुता बाकी है और वह अभी भी अन्य पशुओं के समान पृथ्वी पर घूमने–फिरने वाला और चरने वाला पशु ही है।

विशेष–

1. लेखक मनुष्य के विनाशकारी हथियारों की खोज को उसमें छिपे पशुत्व से जोड़कर दिखाया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल प्रारंभिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है।
5. वाक्य –विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
6. वर्णनात्मक व विचारात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है।
7. अभिधा शब्द – शक्ति का प्रयोग किया गया है।

2. नाखून काटने से क्या होता है ? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है, वह तो बढ़ती जा रही है। मनुष्य इतिहास में हिरोशिमा का हत्याकाण्ड बार – बार थोड़े ही हुआ है? यह तो उसका नवीनतम रूप है! मैं मनुष्य के नाखून की और देखता हूँ, तो कभी – कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवन प्रतीक हैं। मनुष्य का पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

शब्दार्थ– बर्बरता = नृशंशता। हत्याकांड = नरसंहार। नवीनतम = नया। निराश : = भयानक। पाशवी पशुतापूर्ण। हताश = भयंकर।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते है' नामक निबंध से लिया गया है। इन पंक्तियों से पूर्व लेखक यह बता चुका है कि मनुष्य ने नाखूनों से करोड़ों घातक अस्त्र बना लिए हैं। अब वह नाखून इसलिए काटता है ताकि उसमें आदिम मानव बर्बरता जुड़ा कोई भी अवशेष न रह जाए।

व्याख्या– लेखक कहता है कि इतने भयानक अस्त्र – शस्त्र को इकट्ठा करके अब मनुष्य जो अपने नाखून काट रहा है उससे कोई लाभ होने वाला नहीं है। यद्यपि मनुष्य अपने नाखून काटकर यह दर्शाना चाहता है कि उसकी बर्बरता समाप्त हो गई है, परन्तु वास्तव में मनष्य की बर्बरता तो इन हथियारों की व उसके संग्रह

करने से बढ़ती ही जा रही है। हिरोशिमा पर जो परमाणु बम डाला गया था और उनसे लाखों निरपराध लोग कुछ एक क्षणों में ही मृत्यु का शिकार बन गए थे, वह मनुष्य की बर्बरता का ताजा उदाहरण है। लेखक कहता है के वह जब भी मनुष्य के इन नाखूनों की ओर देखता है तो निराश हो जाता है क्योंकि उसके नाखून यह दर्शाति हैं। कि उसमें अभी भी पाशविक प्रवृत्ति विद्यमान मनुष्य की पशुता को दर्शानि वाले इन नाखूनों को जितनी बार भी काटो, वह पुनः उपस्थित हो जाते है। अतः मनुष्य अपनी इस पाशविकता को समाप्त करने में असमर्थ है।

विशेष–

1. लेखक ने मनुष्य के हथियारों की संग्रह करने व उनको निरपराधों पर प्रयोग करने प्रवृत्ति की कटु आलोचना की है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल प्रारम्भिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है।
5. वाक्य – विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
6. वर्णनात्मक व विचारात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है।
7. अभिधा शब्द – शक्ति का प्रयोग किया गया है।

3. मेरा मन पूछता है – किस ओर ? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर ? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर? मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य जाति से ही प्रश्न किया है – जानते हो नाखून क्यों बढ़ाते है?

शब्दार्थ – मनुष्यता = मनुष्यत्व। निर्बोध = अबोध। बालिका = लड़की।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश ' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते है' से लिया है। इस निबंध में लेखक ने नाखूनों के माध्यम से मनुष्य की आदिम बर्बर प्रवृत्ति का वर्णन करते हुए उसे बर्बरता त्यागकर मानवतावादी बनने का संदेश दिया है। इन पंक्तियों में लेखक ने अपनी पुत्री के प्रश्न के संदर्भ में इस बात पर विचार किया है कि आज का मनुष्य किस तरफ बढ़ रहा हैं।

व्याख्या – लेखक कहता है कि आज भी मनुष्य के नाखूनों को बढ़त देखकर अर्थात् मनुष्य को घातक हथियार बनाते देखकर उसका मन बार – बार उससे यह पूछता है कि आज का मनुष्य किस तरफ बढ़ रहा है। वह घातक हथियारों का निर्माण करके पशुत्व की ओर बढ़ रहा बढ़ रहा है या मनुष्यता की ओर बढ़ रहा है, यह उसे समझ नहीं आता। लेखक समझ नहीं पाता कि आज का मनुष्य घातक अस्त्र – शस्त्र और अधिक एकत्र करने की ओर बढ़ रहा है या उन्हें कम करने की ओर बढ़ रहा है। ऐसे में उसे अपनी अबोध पुत्री द्वारा पूछा गया प्रश्न कि जानते हो नाखून क्यों बढ़ते हैं, सारी मानव जाति से ही पूछा गया प्रश्न प्रतीत होता है।

विशेष–

1. लेखक ने मनुष्य में बढ़ती अत्यधिक अस्त्र – शस्त्र एकत्र करने की प्रवृत्ति पर निराशा व्यक्त की है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकुल प्रारंभिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ।
5. वाक्य – विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
6. वर्णनात्मक व विचारात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ।
7. अभिधा शब्द – शक्ति का प्रयोग किया गया है।

4. मैं कभी–कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अंग्रेजी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष 'इण्डिपेन्डेन्स' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका ? उसने अपनी आजादी के जितने भी नामकरण किये स्वतन्त्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता – उन सबमें 'स्व' का बन्धन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परम्परा ही अनजान में हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है? मुझे प्राणी–विज्ञानी की बात फिर याद आती है – सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है।

शब्दार्थ – अनुवर्तिता = अनुवर्तन। स्वतंत्र = स्वयं का तंत्र। स्वाधीन स्वयं के अधीन। समूची = समस्त। सहजात = साथ ही उत्पन्न होने वाला। स्मृतियाँ = यादें।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश "आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी'' द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते है।' नामक निबंध से लिया गया है। इन पंक्तियों से पूर्व लेखक यह स्पष्ट कर चुका है कि विनाशकारी हथियारों का संग्रह करना और नाखून बढ़ना दोनों ही मनुष्य की पाशविकता के चिह है। इसके पश्चात् वह भारतीयों की ओर उन्मुख होने हुए कहता है कि हमने आजादी को अंग्रेजों की भाँति अनधीनता न कहकर स्वाधीनता कहकर पुकारा। स्वाधीनता का अर्थ होता है अपने ही अधीन। इन पंक्तियों में लेखक अपने इसी आशय को और अधिक पुष्ट करता है।

व्याख्या – लेखक कहता है कि इतने वर्षों तक अंग्रेज के अधीन रहे, उनका अनुकरण किया, फिर भी हमने अपने आप को उनकी तरह अन–अधीन क्यों नहीं कहा कहने का अभिप्राय यह है अंग्रेजी का शब्द 'इण्डिपेण्डेंस' मूलतः 'डिपेण्डेंस' शब्द के आगे 'इन' उपसर्ग लगा कर बना है, जिसका अर्थ होता है कि बिना रहित। अतः अंग्रेजी शब्द इण्डिपेण्डेंस का अर्थ निकलता है – 'बिना किसी अधीनता के' लेखक इसी तथ्य पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहता है कि आजाद होने के बाद हमने अपनी आजादी के लिए जितने भी नाम रखे जैसे स्वराज, स्वतंन्त्रता, स्वाधीनता उन सभी नामों में हमने 'स्व का बंधन अवश्य रखा अर्थात् हमारी आजादी 'स्व' के बंधन में बँधी गई है। यह केवल संयोग ही है कि हमारी भाषा में अनजान रूप से हमारी परम प्रकट हो जाती है। कहने का अभिप्राय यह है कि अपने बंधन में रहना हमारी परंपरा रही है। यह आजादी के दुरुपयोग को रोकने में मद्द करती है। यह सोचकर लेखक को प्राणी विज्ञानियों की यह बात याद आ जाती है कि जब हम किसी क्रिया को बार–बार करते है तो हमारा शरीर अपने आप में ऐसे गुण उत्पन्न कर लेता है, जिससे वह क्रिया स्वतः ही होती जाती है और उस क्रिया के करने के लिए मनुष्य को प्रयास नहीं करना पड़ता। हम इतने वर्षों तक गुलाम रहे है, अतः हमारे मन – मस्तिष्क में यह स्वीकार कर लिया है कि हमें किसी न किसी के अधीन तो रहना ही है।

विशेष–

1. लेखक ने हम भारतीयों की संकीर्ण व गुलामी की मानसिकता की ओर संकेत किया है
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकुल प्रारंभिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. अभिधा शब्द – शक्ति का प्रयोग किया गया है।

बात' निबंध

व्याख्या भाग

1. यदि हम वैद्य होते तो कफ और पित्त के सहवर्ती बात की व्याख्या करते तथा भूगोलवेत्ता होते तो किसी देश के जल बात का वर्णन करते। किंतु इन दो विषयों में हमें एक बात कहने का भी प्रयोजन नहीं है। इससे केवल उसी बात के ऊपर दो – चार बात लिखते हैं जो हमारे सम्भाषण के समय मुख से निकल –निकल के परस्पर हृदयस्थ भाव प्रकाशित करती रहती है।

शब्दार्थ – सहवर्ती = सहचर, साथ रहने वाला। वैद्य ज्ञता, जानकार, जानने वाला। बात वचन, शरीरस्थ वायु, वायु। जल बात = जलवायु। प्रयोजन = मतलब। सम्भाषण = वार्तालाप, बातचीत हवयस्थ हृदय में स्थित।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश पं. प्रताप नारायण मिश्र द्वारा रचित 'बात' नाम निबंध से उद्‌वृत है। बात मिश्रजी की हास्य–व्यंग्य शैली, जो इनकी प्रतिनिधि शैली कही जाती है, के अंतर्गत आने वाले प्रसिद्ध निबंधों में से एक है। इसमें लेखक ने बात के संबंध में सभी ज्ञातव्य बातों का सहज समावेश किया है। लेखक की स्वच्छंद कल्पना तथा शैली की रोचकता का समन्वित आकर्षक इस लेख की विशेषता है। यहाँ लेखक बात की महत्ता बताते हुए कहता है कि जिस प्रकार का व्यक्ति होता है वह उसी प्रकार की बात करता है।

व्याख्या – लेखक हमें इस तथ्य से अवगत कराते हुए कहता है कि एक व्यक्ति का जैसा स्वभाव होगा अथवा जो ज़िस प्रकार का कार्य करेगा वह स्वाभाविक रूप से उसी प्रकार के वातावरण में उनके कार्य के अनुसार बुद्धि वाला हो जाएगा। यदि हम वैद्यराज को लें तो अपने स्वभाव अनुसार और कार्य के अनुरूप किसी रोग जैसे पित्त, कफ और उससे संबंधित विषयों पर बात करेगा। इसी प्रकार यदि कार्य भूगोल को जानने वाला (ज्ञाता) होगा तो वह अपने स्वभाव अनुसार किसी देश की जलवायु अथवा प्राकृतिक विषयों पर बात करेगा। लेकिन लेखक कहता है कि दोनों विषयों में बात करने का हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। हम लोग उसी विषय पर बात करते हैं जो हृदय की भावनाओं को वाणी के माध्यम से प्रकाशित करती हैं हमारे मन की जो स्थिति है, हमारे हृदय में प्रतिपल जो भावनाएँ उठती हैं उसे हम मख से, वाणी के माध्यम से दूसरों को अवगत कराएँ तो वह बात कहलाती है।

विशेष–

1. यहाँ लेखक ने बताया है कि हम अपने हृदयस्थ भावों की अभिव्यक्ति बात माध्यम से करते हैं।
2. तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।
3. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
5. भाषा सहज, सरल एवम् भावान्कूल खड़ी बोली है।

2. जब परमेश्वर तक बात का प्रभाव पहुँचा हुआ है तो हमारी कौन बात रही? हम लोगों के तो 'गात माहिं बात करामात है।' नाना शास्त्र, पुराण, इतिहास, काव्य, कोश इत्यादि सब बात ही के फैलाव हैं जिनके मध्य एक – एक ऐसी पाई जाती है जो मन, बुद्धि, चित्त को अपूर्व दिशा में ले जाने वाली अथवा लोक परलोक में सब बात बनाने वाली है। यद्यपि बात का कोई रूप नहीं बतला सकता कि कैसी है पर बद्धि दौड़ाइये तो ईश्वर की भाँति इसके भी अगणित ही रूप पाइयेगा। बड़ी बात, छोटी बात, सीधी बात, टेढ़ी बात, मीठी बात, कड़वी बात, भली बात, बुरी बात, सुहाती बात, लगती बात इत्यादि सब बातें ही तो हैं।

शब्दार्थ – कोश = खजाना। सुहाना = अच्छा लगना।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश पं. प्रताप नारायण मिश्र द्वारा रचित 'बात ' नाम निबंध से उद्वृत है। बात मिश्रजी की हास्य–व्यंग्य शैली, जो इनकी प्रतिनिधि शैली कही जाती है, के अंतर्गत आने वाले प्रसिद्ध निबंधों में से एक है। इसमें लेखक ने बात के संबंध में सभी ज्ञातव्य बातों का सहज समावेश किया है। लेखक की स्वच्छंद कल्पना तथा शैली की रोचकता का समन्वित आकर्षक इस लेख की विशेषता है। यहाँ लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि बात का प्रभाव मनुष्य तक नहीं, बल्कि ईश्वर तक भी है।

व्याख्या – लेखक बात की महत्ता का बखान करते हुए कहता है कि बात का प्रभाव मनुष्य तक ही सीमित नहीं, ईश्वर तक इसके प्रभाव से बच नहीं पाए। यद्यपि ईश्वर के विषय में यह कहा जाता है कि उसकी न वाणी है, न हाथ है, न पाँव है, बल्कि वह तो निराकार निरंजन हैं तथापि उसे बिना वाणी का वक्ता कहा गया है। जब निराकार ब्रह्म पर भी बात का प्रभाव पड़ता है तो फिर हम शरीरधारी मनुष्यों का कहना ही क्या? हम सभी के शरीर में बात (भाषण, शक्ति या वायु) का ही चमत्कार है। अनेक शास्त्र, पुराण, इतिहास, काव्य, कोश आदि जितना भी साहित्य है, वह सब बात का विस्तार है। इन विभिन्न प्रकार के ग्रंथों में एक से बढकर एक बातें पाई जाती हैं। उनमें एक – एक बात ऐसी अमूल्य है कि जो हमारे मन, बुद्धि तथा चित्त को अपर्व आनंदमयी दृश्य की ओर अग्रसर करती है। इन ग्रंथों की बातें ही लोक तथा परलोक की सभी बातों का ज्ञान कराती हैं। लेखक बताता है कि बात का कोई ढंग या रूप नहीं होता। कोई कह नहीं सकता कि अमुक बात ऐसी है परंतु यदि बुद्धि से विचार करके देखा जाए तो हम पाएँगे कि जिस प्रकार ईश्वर के अनेक रूप होते हैं, ठीक उसी प्रकार बात के भी अनेक रूप होते हैं। जैसे – बड़ी बात, छोटी बात, सीधी बात, टेढ़ी बात, मीठी, कड़वी, भली, बुरी, सहाती और लगती बात आदि ये सब बात के ही रूप हैं।

विशेष–

1. यहाँ बात की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।
2. तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।
3. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
4. वाक्य – विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
5. भाषा सहज, सरल एवम् भावानुकूल खड़ी बोली है।
6. मुहावरों का प्रयोग किया गया है।

3. सच पूछिए तो इस बात की भी क्या बात है जिसके प्रभाव से मानव जाति समस्त जीवधारियों की शिरोमणि (अशरफ – उल – मखलूकात) कहलाती है। शुकसारकादि पक्षी केवल थोड़ी–सी समझने योग्य बातें उच्चरित कर सकते हैं, इसी से अन्य नभचारियों की अपेक्षा आदृत समझे जाते हैं। फिर कौन न मानेगा कि बात को बड़ी बात है। हाँ, बात की बात इतनी बड़ी है कि परमात्मा को लोग निराकार करते हैं, तो भी इसका संबंध उसके साथ लगाए रहते हैं। वेद, ईश्वर का वचन है, कुरआन शरीफ कलामुल्लाह है, होली बाइबिल वर्ड ऑफ गाड है। यह वचन, कलाम और वर्ड बात ही के पर्याय हैं जो प्रत्यक्ष मुख के बिना स्थिति नहीं कर सकती। पर बात की महिमा के अनुरोध से सभी धर्मावलंबियों ने 'बिन बानी वक्ता बड़ जोगी वाली बात मान रखी है।

शब्दार्थ– नभचर = आकाश में विचरने वाले, पक्षी। शिरोमणि = सर्वश्रेष्ठ। शुक = तोता। सारिका = मैना। आदृत = आदर किए हुए। बात की बात = बात की महत्ता।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश प. प्रताप नारायण मिश्र द्वारा रचित 'बात' नाम निबंध से उद्धत है। बात मिश्रजी की हास्य – व्यंग्य शैली, जो इनकी प्रतिनिधि शैली कही जाती है। के अंतर्गत आने वाले प्रसिद्ध निबंधों में से एक है। इसमें लेखक ने बात के संबंध में सभी ज्ञातव्य बातों का सहज समावेश किया है। लेखक की स्वच्छंद कल्पना

तथा शैली की रोचकता का समन्वित आकर्षक इस लेखक की विशेषता है। यहाँ लेखक ने बात की महत्ता का वर्णन किया है और बताया है कि बात के कारण ही जन मानस में व्यक्ति की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है।

व्याख्या– लेखक कहते हैं कि वास्तव में बात का महत्व इतना अधिक है कि उसका वर्णन करना कठिन हो जाता है। यदि बात की महत्ता को लेखनीबद्ध करते हैं तो एक ग्रंथ बन सकता है। संसार में मानव को सभी योनियों में श्रेष्ठ माना जाता है। इसका प्रमुख कारण भी बात ही मानव ही एकमात्र ऐसा प्राणी हैं जो बात करने में चतुर है। इसी कारण से वह सभी प्राणियों में शिरोमणि बना हुआ है। मानव की भाषा में तोता, मैना आदि पक्षी थोड़ी समझने योग्य बातों का उच्चारण कर लेते हैं जिसके कारण वे आकाश में घुमने वाले अन्य पक्षियों की तुलना में श्रेष्ठ माने जाते हैं और इसलिए उनका जनसामान्य में उनका आदर होता है। इतना सब कुछ होते हुए भी इस संसार में एसा कौन व्यक्ति होगा जो बात की महत्ता को स्वीकार नहीं करेगा। बात के महत्व के कारण ही लोग भगवान का संबंध उससे जोड़ते हैं। यद्यपि लोग ईश्वर को बिना आकार (शरीर) वाला मानते हैं, परंतु लोग उसे फिर भी श्रेष्ठ उपदेशवक्ता कहकर उसकी सर्वोच्च सत्ता को स्वीकारते हैं। ऐसा माना जाता है कि वेद ईश्वर की बोली हई चीज है, ईश्वर के ही वक्तव्य हैं। कुरान अल्लाह का ही वचन है, पवित्र बाइबिल भी, ईश्वर के शब्द हैं। वचन, कलाम, बात सबके प्रर्यायवाची एक हैं। लेखक बात की महत्ता का वर्णन करते हुए कहता है कि यदि यह कहा जाए कि ईश्वर तो निराकार होने के कारण सम्भाषण कर नहीं सकते तो वह मनुष्य से भी निम्न श्रेणी में आ जाता है क्योंकि मनुष्य तो सम्भाषण करने में समर्थ है। अतः बात ही ईश्वर को मनुष्य से श्रेष्ठ बनाती है। इसीलिए शायद समस्त धर्मावलंबी ईश्वर का संबंध भाषण शक्ति से जोड़ते हैं, चाहे वे उसके साकार रूप के समर्थक हो या निराकार रूप के।

विशेष –

1. यहाँ बात की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।
2. तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।
3. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
5. भाषा सहज, सरल है।

4. बात के काम भी इसी भांति अनेक देखने में आते हैं। प्रीति– वैर, सुख–दुख, श्रद्धा घृणा, उत्साह – अनुत्साह आदि जितनी उत्तमता और सहजता बात के द्वारा विदित हो सकते हैं, दूसरी रीति से वैसी सुविधा ही नहीं। घर बैठे लाखों कोस का समाचार मुख और लेखनी से निर्गत बात ही बता सकती है। डाकखाने अथवा डाकघर के सहारे से बात की बात में चाहे जहाँ की बात हो, जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात उखड़ती है। हमारे तुम्हारे भी सभी काम बात पर ही निर्भर करते हैं। 'बीतहि हाथी पाइये बातहि हाथी पाँव' बात ही से पराये अपने और अपने पराये हो जाते हैं। मक्खीचूस उदार तथा उदार स्वल्पव्ययी, का पुरुष युद्धोत्साही एवं युद्धप्रिय शांतिशील, कुमार्गी, सुपथगामी अथच सुपन्थी, कुराही इत्यादि बन जाते हैं।

शब्दार्थ– प्रीति = प्रेम। वैर = दुश्मनी। निर्गत = निकलना। कुमार्गी = बुरे मार्ग पर चलने वाला। अथच = इसके बाद और। कापुरुष = का्यर।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश पं. प्रताप नारायण मिश्र द्वारा रचित 'बात नाम निबंध से उद्धुत है। बात मिश्रजी की हास्य–व्यंग्य शैली, जो इनकी प्रतिनिधि शैली कही जाती है, के अंतर्गत आने वाले प्रसिद्ध निबंधों में से एक है। इसमें लेखक ने बात के संबंध में सभी ज्ञातव्य बातों का सहज समावेश किया है। लेखक की स्वच्छंद कल्पना तथा शैली की रोचकता का समन्वत आकर्षक इस लेख की विशेषता है। यहाँ लेखक ने बात के महत्व को स्पष्ट किया है।

व्याख्या– लेखक बात के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि बात का प्रभाव बहुत ही व्यापक होता है। बात वाणी के द्वारा ही हम किसी के प्रेम, दुश्मनी, सुख, दुख, श्रद्धा, घृणा, उत्साह, अनुत्साह आदि की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। वाणी के द्वारा ही हम किसी के अच्छे व बरे भावों को समझ सकते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई तरीका नहीं है। घर से काफी दूर बैठे लोगों के सुख – दुख के समाचार मुँह और लेखनी (कलम) से निकली हुई बात ही बता सकती है। बात के द्वारा ही कोई भी भाव या विचार सहजता और सरलता से विदित हो सकता है। हम डाकघर या तारघर के सहारे दूर बैठे लोगों की बात जान सकते हैं। निश्चय ही हमारे बात करने के ढंग से हमारा प्रत्येक कार्य प्रभावित होता है। बात के प्रभावशाली होने पर कवि अथवा चारण–भाट, राजाओं से पुरस्कार के रूप में हाथी तक प्राप्त कर लेते थे, परंतु कटु बात कहने से राजाओं द्वारा लोगों को हाथी के पाँवों के नीचे कुचल दिया जाता था। यह बात भी सिद्ध है कि बात (वायु प्रकोप) से 'हाथी पाँव' नामक रोग भी हो जाता है। किसी भी व्यक्ति की बात (वाणी) से प्रभावित होकर बड़े – बड़े कंजूस भी उदार हृदय वाले बन जाते हैं तथा मेहनत से कमाई हुई अपनी सम्पत्ति को परोपकार के लिए अर्पित कर देते हैं। इसके ठीक विपरीत कटु वाणी के प्रभाव से उदार हृदय वाला व्यक्ति भी अपने साधनों को समेट लेता है। युद्ध के मैदान में चारण और भाटों की ओजपूर्ण वाणी को सुनकर कायरों में भी वीरता का संचार हो जाता है। यदि कोई बात अच्छी लग भी जाए तो युद्ध चाहने वाला व्यक्ति भी शांतिप्रिय बन जाता है। बात के प्रभाव से बुरे रास्ते पर चलने वाला व्यक्ति अच्छे मार्ग पर चलने लगता है और बात की शक्ति के द्वारा अच्छे मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति भी दुष्टों जैसा व्यवहार करने लगता है। कहने का भाव है कि बात कहने का ढंग और शब्दों का प्रयोग व्यक्तियों पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालता है।

विशेष–

1. यहाँ बात की महत्ता का प्रतिपादन किया गया।
2. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
3. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
4. भाषा सहज, सरल एवम् भावानुकूल खड़ी बोली है।
5. मुहावरे का प्रयोग हुआ है।

5. बात का तत्व समझना हर एक का काम नहीं है और दूसरों की समझ पर अधिपत्य जमाने योग्य बात गढ़ सकना भी ऐसों वैसों का साध्य नहीं है। बड़े –बड़े विज्ञवरों तथा महा–महा कवीश्वरों के जीवन बात ही के समझने–समझाने में व्यतीत हो जाते हैं। सहृदयगण की बात के आनन्द के आगे सारा संसार तुच्छ हुंचता है। बालकों की तोतली बातें, सुंदरियों की मीठी–मीठी, प्यारी – प्यारी बातें, सत्कवियों की रसीली बातें, सुवक्ताओं की प्रभावशाली बातें जिसके जी को और का और न कर दें उसे पशु नहीं पाषण खंड कहना चाहिए, क्योंकि कत्ते, बिल्ली आदि को विशेष समझ नहीं होती तो भी पुचकार के 'तू–तू', 'पूसी–पूसी' इत्यादि बातें कह दो तो भावार्थ समझ के यथा सामर्थ्य स्नेह प्रदर्शन करने लगते हैं। फिर वह मनुष्य कैसा जिसके चित्त पर दूसरे हृदयवान की बात का असर न हो।

शब्दार्थ– विज्ञवर = ज्ञानी। कवीशवर = कवि। पाषाणखंड = पत्थर के टुकड़े। तत्व = सार। सवक्ता = श्रेष्ठ वक्ता।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश पं. प्रताप नारायण मिश्र द्वारा रचित 'बात नाम निबंध से उद्धृत है। बात मिश्रजी की हास्य – व्यंग्य शैली, जो इनकी प्रतिनिधि शैली कहीं जाती है, के अंतर्गत आने वाले प्रसिद्ध निबंधों में से एक है। इसमें लेखक ने बात के संबंध में सभी ज्ञातव्य बातों का सहज समावेश किया है। लेखक की स्वच्छंद कल्पना

तथा शैली की रोचकता का समन्वित आकर्षक इस लेख की विशेषता है। यहाँ लेखक ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि बात कहने की क्षमता यद्यपि सभी व्यक्तियों में होती है परंतु बात को सही ढंग से व्यक्त कर पाना या दूसरों की बातों को समझ पाना सभी के वश की बात नहीं होती।

व्याख्याः लेखक बताते हैं कि बात के असली तत्व को समझना हर व्यक्ति का काम नहीं है। विद्वानों की बात का अभिप्राय समझ पाना प्रत्येक व्यक्ति के लिए सरल कार्य नहीं है। साथ ही साथ दूसरों को प्रभावित कर सकने वाली बात भी गढ़कर कह देना साधारण मनुष्यों का काम नहीं है। संसार में बडे – बड़े ज्ञानियों और कवियों का जीवन बात के अभिप्राय को समझने तथा समझाने में ही व्यतीत हो जाता है। सुह्रदयगणों की बातों में जिस आनंद की प्राप्ति होती हैं, उसके सामने संसार के सारे सुख फीके पड़ जाते हैं। बालकों की तोतली बोली में, सुंदरियों की प्यारी–प्यारी और मीठी – मीठी बातों में कवियों की रसीली बातों में और सुंदर वक्ताओं की प्रभावशाली सशक्त बातों में जो आकर्षण होता है, वह सभी के चित्त को मंत्रमुग्ध कर देता है। जो इनमें प्रभावित नहीं होते वे पशु ही क्यों पत्थर की शिला की भाँति शुष्क तथा कठोर होते हैं। कुत्ते और बिल्ली की कोई नहीं होती, लेकिन उन्हें पुचकारने से तथा मीठे शब्द बोलने से वे प्रेम प्रदर्शित करने लग जाते है। फिर वह मनुष्य ही कैसा है जिसके मन पर दूसरों की बातों का प्रभाव न हों।

विशेष–

1. यहाँ बात की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।
2. तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।
3. प्रसाद ग्ण सर्वत्र व्याप्त है।
4. वाक्य –विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
5. भाषा सहज, सरल एवम् भावानुकूल–खड़ी बोली है।

6. मर्द की जबान (बात का उदय स्थान) और गाड़ी का पहिया चलता–फिरता ही रहता है। आज जो बात कल ही के वश हुजूरों की मरजी के मुवाफिक दूसरी बातें हो जाने में तनिक भी विलंब की संभावना नहीं है। यद्यपि कभी – कभी अवसर पड़ने पर बात के अंश का कुछ रंग–ढंग परिवर्तित कर लेना नीति –विरुद्ध नहीं है। पर कब ? जात्योपकार, देशोद्धार, प्रेम प्रचार आदि के समय न कि पापी पेट के लिए।

शब्दार्थ– मुवाफिक = के अनुसार। जात्योपकार = मानव जाति की भलाई। देशोद्वार = देश का उद्धार (भला)।

प्रसंग– प्रस्तुत, गद्यांश पं. प्रताप नारायण मिश्र द्वारा रचित 'बात' नाम निबंध से उद्धृत है। बात मिश्रजी की हास्य–व्यंग्य शैली, जो इनकी प्रतिनिधि शैली कही जाती है, के अंतर्गत आने वाले प्रसिद्ध निबंधों में से एक है। इसमें लेखक ने बात के संबंध में सभी ज्ञातव्य बातों का सहज समावेश किया है। लेखक की स्वच्छंद कल्पना तथा शैली की रोचकता का समन्वित आकर्षक इस लेख की विशेषत है। यहाँ लेखक ने यह बताया है कि प्राचीन काल में हमारे यहाँ के लोग वचन के पक्के होते थे, परंतु आजकल स्वार्थ में अंधे लोग तुरंत अपनी बात बदल देते हैं।

व्याख्या– लेखक कहता है के आजकल के भारत के अनेक कुपुत्रों ने यह तरीका अपनाया हुआ है। कि आदमी की जुबान तथा गाड़ी का पहिया तो चलते ही रहते हैं। जिस प्रकार गाड़ी का पहिया स्थिर नहीं रहता, ठीक उसी प्रकार जुबान का स्थिर रहना या बात का पक्का होना आवश्यक नहीं है। यह कथन उन्हीं स्वार्थी लोगों का है जिनके लिए जाति, देश तथा संबंधों का कोई महत्व नहीं होता। ऐसे लोगों की आज की जो बात है कल ही वह स्वार्थवश मालिक के मन के अनुसार बदलने में तनिक भी देर नहीं लगाते। लेखक आगे बताता है कि

किसी महान उद्देश्य की साधना या समय आने पर बात के रंग–ढंग या कहने का तरीका बदल लेने में किसी नियम का उल्लंघन नहीं है। यदि बात बदलने से मानव जाति की भलाई होती हैं, देश का कल्याण होता है या प्रेम – प्रसंग में प्रेमी – प्रेमिका का हित छिपा है तो कोई नियम विरुद्ध कार्य नहीं है। हमें स्वार्थ या पापी पेट को भरने के लिए कभी भी बात नहीं बदलनी चाहिए।

विशेष–

1. यहाँ बात की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।
2. तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।
3. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
4. वाक्य – विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
5. भाषा सहज, सरल एवम् भावानुकूल खड़ी बोली है।
6. शैली गंभीर और संयत है।

व्याख्या भाग – कुबेरनाथ राय

1. मेरी जन्मकुंडली के चतुर्थभाव में नभमंडल की खल–मंडली का दरबार लगा हुआ है, केतु, मंगल, गुलिक, असुरराज वरुण और सिंहस्थ 'क्रूर' बृहस्पति चतुर्थभाव जीवन का पादपीठ रचता है और उसके सम्मुख स्थित जीवन का शीर्षमंडल। ज्योतिष में इन्हें क्रमशः 'पाताल' और 'व्योम' भी कहते गृह, परिवार, भूमि, भावना, शिक्षा, डिग्री, यानी सब कुछ जिस पर जीवन खड़ा होता है चतुर्थभाव के द्वारा व्यक्त होता है और जीवन के कर्मयोग का द्योतक है दशम भाव। व्यक्ति की सारी सामाजिक भूमिका ये दोनों भाव ही रचते हैं।

शब्दार्थ – चतुर्थभाव –किसी भी व्यक्ति की जन्मकुंडली में चतुर्थभाव घर, वाहन, माता और सुख भाव होता है। नभमंडल = वह जगह जिसमें खगोलीय पिंड होते हैं। खलमंडली = दृष्टा की मंडली असुरराज = राक्षसों के राजा। पादपीठ पैरों से कमर तक। सम्मुख = सामने। व्योम = आकाशी दशमभाव = ज्योतिष में दशमभाव को कर्म का भाव कहा जाता है। यह भाव व्यक्ति की उपलब्धि खांति, प्रतिष्ठा, शक्ति, मान – सम्मान, विश्वसनीयता, आचरण, महत्त्वाकांक्षा आदि को दर्शाता है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश सुप्रसिद्ध ललित निबंधकार व इतिहासवेत्ता श्री कुबेरनाथ राय द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण निबंध 'षोड़शी के चरण कमल' से अवतरित है। यह निबंध उनके निबंध संग्रह 'किरात नदी में चन्द्रमधु' में संकलित है। इस निबंध में लेखक कामरूप की यात्रा पर जाता है। कामरूप भारत के असम राज्य के पश्चिमी भाग में एक भौगोलिक क्षेत्र है। यहाँ कामाख्या देवी का मंदिर है। इन पक्तियों में लेखक ने अपनी जन्मकुंडली के विषय में बताया है।

व्याख्या – लेखक कुबेरनाथ राय का कहना है कि मेरी जन्मकुडली में ग्रहों की चाल अच्छी नहीं है। मेरी जन्मकुंडली के चतुर्थभाव घर, वाहन, माता और सुख के भाव में खगोलोगो की दुष्ट मंडलों का दरबार लगा हुआ है। कहने का भाव है कि लेखक का भविष्य सुखद नहीं है। उसकी कुंडली में केतु, मंगल, शनि का भाव गुलिक, असुरराज वरुण और क्रूर बृहस्पति आदि ग्रह होता है। यह चतुर्थभाव ही व्यक्ति के पैरों से पीठ तक की रचना करता है तथा उसके सामने स्थित जीवन का शीर्षमण्डल। ज्योतिषों के हिसाब से इन्हें क्रमशः पाताल और व्योम की संज्ञा दी। परिवार, भूमि, भावना, शिक्षा, उपाधि यानी सभी कुछ जिस उसके द्वारा ही अभिव्यक्त होता है और दशमभाव को ज्योतिष में कर्म का भाव कहा जाता है। भाव और कुछ जिस पर हमारा जीवन खड़ा होता है। दशमभाव ही व्यक्ति की सारी सामाजिक भूमिका की रचना करते हैं। कहने का आशय है कि व्यक्ति के जीवन में चतुर्थ भाव और दशमभाव की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

विशेष –

1. लेखक ने ज्योतिष ज्ञान का वर्णन किया है।
2. भाषा सहज सरल तथा भावानुकृत खड़ी बोली है।
3. तत्सम शब्दों का प्रयोग हआ है।
4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
5. प्रसाद गुण सर्वत्र सशक्त है।
6. विवेचनात्मक शैली का प्रयोग हुआ हैं।

2. तू अपने गृह परिवार से जितना ही दूर रहेगा, उतना तेरे और तेरे परिवार के लिए कल्याणकारक होगा।' अतः आजीवन ठोकरें खाना युगधर्म की दृष्टि मंद कर्म, मद उपार्जन और सारी उपलब्धियों के बावजूद नेकी कर कुंए में डाले का चरम संतोष आदि को ही अपनी किस्मत मानकर मैं भटकता–भटकता कामरूप आ पहुंचा और देवी के चरणाम्बुजों का शरणापन्न हुआ। अकेले–अकेले नहीं अपने बहुगरूपी मन के साथ। मुझे चाहे जो कुछ मान–अपमान अभिनंदन – पदाधात भोगना पड़े, परंतु यह सहजन्मा मन यहां आकर बड़ी मौज में है इन देवी–चरणों का सानिध्य पाकर।

शब्दार्थ – कल्याणकारक = शभु या कल्याण करने वाला। ठोकरे खाता = मारे मारे फिरना, कष्ट उठाना। युगधर्म = समयानुकूल आचरण व व्यवहार। मंद धीमा, सुरता उपार्जन = कमाना। उपलब्धि = प्राप्ति। नेकी कर कुएं में डाल = भलाई करके भल जाना। चरम = अत्याधिक/अगिनंदत सराहना करना। पदाघात = पैरों को मारा। सान्निध्य = समीपता, निकटता।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश सुप्रसिद्ध ललित निबंधकार व इतिहासवेता श्री कुबेर नाथ राय द्वारा रचित उनके महत्वपूर्ण निबंध 'षोडशी के चरण कमल' से अवतरित है। यह निबंध उनके निबंध – संग्रह 'किरात नदी में चन्द्रमधु' में संकलित है। इस निबंध में लेखक कामरूप की यात्रा पर जाता है। कामरूप भारत के असम राज्य के पश्चिमी भाग में एक भौगोलिक क्षेत्र है। यहाँ कामाख्या देवी का मंदिर है। इन पंक्तियों में लेखक ने अपनी जन्मकुंडली के विषय में बताया है।

व्याख्या– लेखक का कहना है कि बचपन में मुझे एक पंडित जी ने बताया था कि तेरी जन्मकुंडली अच्छी नहीं है। इसलिए यदि तू अपने घर और परिवार से जितनी दूर रहेगा, उतना ही तेरे व तेरे परिवार के लोगों के लिए शुभ रहेगा अर्थात् तुझे अपनी भलाई के लिए परिवार में न रहकर दूर रहना पड़ेगा। इसलिए लेखक ने सोचा कि अब मुझे अपने परिवार से अलग रहकर मारे – मारे फिरना और कष्ट उठाने पढ़ेंगे। उसने ठान लिया था कि वह कम कमा लेगा, अच्छे कर्म करेगा और दूसरो की भलाई करके भूल जाएगा। वह अपनी किस्मत को बड़ा मानकर भटकता भारत के असम राज्य के पश्चिम भाग में एकक्षेत्र कामरूप पहुँच गया और देवी कामाख्या के चरण कमलों की शरण में चला गया। उसने सोचा कि देवी मां ही उसकी किस्मत को बदल सकती है। वह वहां अकेला नहीं था बल्कि उसके मन के अनेक रूप उसके साथ थे। वह देवी मां के चरण कमलों के निकट जाकर बहुत ख़ुश हुआ। उसने सोचा कि चाहे कोई मेरा मान करे या अपमान, मेरी प्रशंसा करें या पेरों की मार मारे लेकिन मुझे देवी की शरण में मौज – मस्ती के साथ रहना है अर्थात लेखक ने अपने आपको देवी की शरण में समर्पित कर दिया।

विशेष–

1. लेखक ने यहाँ अपने बचपन के बारे में बताया है।
2. सहज सरल तथा भावानुकूल खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्‌भव शब्दों का प्रयोग हआ है।

4. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।

5. प्रसाद गुण सर्वत्र व्यापक है।

6. विवेचनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

7. 'ठोकर खाना' मुहावरा तथा 'नेकीकर कुएं में डाल' लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है।

व्याख्या भाग 'आचरण की सभ्यता : सरदार पूर्णसिंह

1. विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन और राजस्व से भी आचरण की सभ्यता अधिक ज्योतिष्मती है। आचरण की सभ्यता को प्राप्त करके एक कंगाल आदम राजाओं के दिलों पर भी अपना प्रभुत्व जमा सकता है। इस सभ्यता के दर्शन से कला, साहित्य और संगीत को अद्‌भुत सिद्धि प्राप्त होती है। राग अधिक मृदु हो जाता है, विद्या का तीसरा शिव–नेत्र खुल जाता है, चित्र–कला का मौन राग अलापने लग जाता है, वक्ता चुप हो जाता है, लेखक की लेखनी थम जाती है, मूर्ति बनाने वाले के सामने नये कपोल, नये नयन और नयी छवि का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

शब्दार्थ– आचरण = चाल, चलन। राजस्व रुपया – पैसा (राज्य की आय)। ज्योष्मती = प्रकाशयुक्त कंगाल = गरीब। प्रभुत्व = शासन अधिकार।

प्रसंग– प्रस्तुत पक्तियाँ द्विवदी युग के श्रेषठ निबंधकार सरदार पूर्णसिंह द्वारा लिखित निबंध "आचरण की सभ्यता' से ली गई हैं। आलोच्य निबंध में लेखक ने विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन तथा राजस्व सभी से अधिक शुद्ध आचरण को अधिक महत्व दिया है। इसके लिए उन्होंने नम्रता, दया, प्रेम तथा उदारता को हृदय में स्थान देना आवश्यक बताया है। अच्छे आचरण वाले व्यक्त के प्रेम तथा धर्म से समस्त जगत का कल्याण होता है। यहाँ लेखक ने आचरण की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है और इसे ही सर्वोतम बताया है।

व्यारव्या – लेखक सरदार पूर्णसिंह का कथन है कि आचरण की सभ्यता विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन–सम्पदा से अधिक प्रकाशयुक्त है। आचरण की सभ्यता को प्राप्त करने वाला एक गरीब व्यक्ति भी बड़े – बड़े राजाओं और महाराजाओं के दिलों पर अपना प्रभुत्व (शासन, अधिकार) स्थापित कर सकता है। कहने का अर्थ है कि वह आपना सदाचरण से उन्हें प्रभावित कर सकता है और सम्मान का भाजन बन जाता है। आचरण में वह अपूर्व शक्त होती है, जो व्यक्ति को कुछ बना देती है। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन में आचरण का पालन करता हो तथा कला, साहित्य व संगीत में भी रुचि रखता हो तो केवल आचरण की पवित्रता के कारण ही उसे उन सभी कलाओं में उल्लेखनीय सफलता हासिल हो जाती है। उसके इन समस्त गुणों में चार चाँद लग जाते हैं। आचरण की स्वच्छता के कारण ही उसका स्वर अधिक मधुर हो जाता है, उसके ज्ञन का तीसरा नेत्र हुन जाता है अर्थात् व्यक्ति अधिक ज्ञानवान (प्रकांड विद्वान) हो जाता है तथा चित्रकार के चित्र भूख से कुछ भी न कहते हुए भी सब कुछ कह देते हैं और उस समय एक ऐसी स्थिति उत्पन्न जाती है कि वक्ता (बोलने वाला) कुछ नहीं कह पाता और लिखने वाले की कलम भी रुक जाती है। लेखक के कहने का आशय है कि आचरण की सभ्यता के प्रभाव को वाणी और लेखनी (कलम) के द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। आचरण की सभ्यता से युक्त मूर्तिकार के समक्ष सदा नयी छवि उपस्थित रहती हैं। आचरण की सभ्यता के कारण व्यक्ति अपने आपको सृजनात्मक और रचनात्मक कार्यों में लगा देता है।

विशेष–

1. यहाँ लेखक ने आचरण की सभ्यता का प्रतिपादन किया है।

2. भाषा शुद्ध प्रवाहपूर्ण एवं परिमार्जित खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्‌भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य विन्यास संगठित एवं रोचक है।

5. शब्दों का चयन विषयवस्तु के अनुरूप हुआ है।

6. भावात्मक शैली का प्रयोग हुआ।

2. आचरण की सभ्यतामय भाषा सदा मौन रहती है। इस भाषा का निघण्टु शुद्ध श्वेत पत्रों वाला है। इसमें नाममात्र के लिए भी शब्द नहीं है। यह सभ्याचरण नाव करता हुआ भी मौन है, व्याख्यान देता हुआ भी व्याख्यान के पीछे छिपा है, राग गाता हुआ भी राग के सुर के भीतर पड़ा है। मृदु वचनों की मिठास में। आचरण की सभ्यता मौन रूप से खुली हुई है। नम्रता, दया, प्रेम और उदारता सबके सब सभ्याचरण की भाषा के मौन व्याख्यान है। मनुष्य के जीवन पर मौन व्याख्यान का प्रभाव चिरस्थायी होता है और उसकी आत्मा का एक अंग हो जाता है।

शब्दार्थ – आचरण = चाल –चलन। सभ्यतामय = सभ्यतापूर्ण मौन = चुप। निघण्टु = शब्दकोष। श्वेत = सफेद। सभ्याचरण = सदाचार। नाद = आवाज, ध्वनि। व्याख्यान = भाषण। राग = संगीता। सुर = स्वर। मृदु = मूदुल, कोमल। उदारता = ह्रदय का विशाल होना। चिरस्थायी = बहुत समय – तक टिकाऊ, लम्बे समय तक स्थायी।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियाँ द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबंधकार सरदार पूर्णसिंह द्वारा लिखित निबंध 'आचरण की सभ्यता' से ली गई हैं। आलोच्य निबंध में लेखक ने विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन तथा राजस्व सभी से अधिक शुद्ध आचरण को अधिक महत्व दिया है। इसके लिए उन्होंने नम्रता, दया, प्रेम तथा उदारता को ह्रदय में स्थान देना आवश्यक बताया है। अच्छे आचरण वाले व्यक्ति के प्रेम तथा धर्म से समस्त जगत का कल्याण होता है। यहाँ लेखक ने आचरण की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है और इसे ही सर्वोत्तम बताया है।

व्याख्या– लेखक का कथन है कि आचरण की भाषा का कोई लिखित ग्रंथ नहीं है तथा न ही इसका कोई शब्दकोष उपलब्ध है। आचरण की भाषा सदैव मूक बनी रहती है तथा इसका प्रयोग व्यवहार के माध्यम से ही किया जा सकता है। आचरण के कोष में नाममात्र के लिए भी शब्द नहीं है। कहने का अभिप्राय है कि आचरण कहने – सुनने या समझने – समझाने की बात नहीं है। दुनिया में ऐसा कोई शब्दकोश नहीं बना जिसके शब्दों से सदाचरण का वर्णन किया जाए। जो मनुष्य सदाचारी होता है उसका प्रभाव बिना कहे बिना किसी भाषण या उपदेश के अपने आप पड़ता है। वस्तुतः आचरण के कोश के सभी पृष्ठ कोरे हैं। इसकी ध्वनि मूक है। सभ्यता का आचरण स्वयं को व्यक्त करता हुआ अव्यक्त तथा मान रहता है, आकर्षक राग गाता हुआ भी राग के अंदर विद्यमान होता है। इसके मीठे वचनों में उसी प्रकार की मूक भावना मिलती है, जिस प्रकार किसी बच्चे की तोतली बोली में एक आकर्षक मौन छिपा हुआ रहता है। उसकी बोली स्पष्ट होने पर भी उसकी सभी बातें स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है। सभ्य आचरण की भाषा के चार प्रमुख मौन व्याख्यान (भाषण) हैं – नम्रता, दया, प्रेम तथा उदारता व्यवहार में लाने पर इन सभी तत्वों का जितना अधिक तथा स्थायी प्रभाव पड़ता है, उतना इन तत्वों के वर्णन से नहीं पड़ सकता। इस प्रकार आचरण की भाषा मौन होकर भी आत्मा का एक अनन्य अंग बन जाती है। कहने का आशय हैं कि सदाचरण मनुष्य की आत्मा को स्थायी रूप से प्रभावित करता है।

विशेष–

1. यहाँ लेखक ने आचरण के प्रभाव को बड़े ही सशक्त रूप से दर्शाया है।

2. भाषा शुद्ध, प्रवाहपूर्ण एवं परिमार्जित खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. वाक्य – विन्यास संगठित एवं रोचक है।

5. शब्दों का चयन विषयवस्तु के अनुरूप हुआ है।

6. भावात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

3. मौन रूपी व्याखत्यान की महत्ता इतनी बलवती, इतनी अर्थवती और इतनी प्रभाववती होती है कि उसके सामने क्या मातृभाषा, क्या साहित्यभाषा और क्या अन्य देश की भाषा सब की सब तुच्छ प्रतीत होती है। अन्य कोई भाषा दिव्य नहीं, केवल आचरण की मौन भाषा ही ईश्वरीय है। विचार करके देखों, मौन व्याख्यान किस तरह आपके हृदय की नाड़ी नाड़ी में सुंदरता को पिरो देता है। वह व्यारव्यान ही क्या, जिसने हृदय की धुन की, मन के लक्ष्य को ही न बदल दिया। चंद्रमा की मंद — मंद हँसी का तारागण के कटाक्षपूर्ण प्राकृतिक मौन व्याख्यान का प्रभाव किसी कवि के दिल में घुसकर देखो।

शब्दार्थ — व्याख्यान = भाषण। महत्ता = महानता। बलवती = शक्तिशाली अर्थवती = अर्थयुक्त।

प्रसंग — प्रस्तुत पंक्तियाँ द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबंधकार सरदार पूर्णसिंह द्वारा लिखित निबंध 'आचरण की सभ्यता' से ली गई हैं। आलोच्य निबंध में लेखक ने विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन तथा राजस्व सभी से अधिक शुद्ध आचरण को अधिक महत्व दिया है। इसके लिए उन्होंने नम्रता, दया, प्रेम तथा उदारता को हृदय में स्थान देना आवश्यक बताया है। अच्छे आचरण वाले व्यक्ति के प्रेम तथा धर्म से समस्त जगत का कल्याण होता है। यहाँ लेखक ने आचरण में निहित मौन भाषा की तुलना सामान्य भाषा से करते हुए उच्च आचरण की श्रेष्ठता सिद्ध की है।

व्याख्या— लेखक का कहना है कि आचरण की मन भाषा का संबंध हृदय से है, आत्मा से है। आचरण के मौन कथन का महत्व बहुत अधिक है। इसकी भाषा बहुत अधिक शक्तिशाली, अर्थयुक्त तथा प्रभावशाली होती है। इसके प्रभाव तथा बल के सामने कोई भी मातृभाषा, साहित्य की भाषा या किसी भी देश की भाषा तुच्छ व कमजोर हो सिद्ध होती है। संसार की प्रत्येक लोकिक भाषा की तुलना में आचरण की मौन भाषा का अलौकिक स्थान है। इसका कारण यह है कि संसार को अन्य भाषाए तो मानव द्वारा निर्मित हैं, लेकिन आचरण की भाषा प्राकृतिक है। यदि थोड़ा — सा विचार करके देखा जाए तो हम पाएँगे कि आचरण की मौन भाषा का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से हमारे हृदय पर पड़ता है। इसका रुप चाहि प्रकट ने ही, परंतु संबंधित व्यक्ति पर इसका चुम्बकीय प्रभाव अवश्य पड़ती है। वास्तव में वहीं कथ्य व्याख्यान (भाषण) कहलाने का अधिकारी होता है जो सभी के हृदय की सोच, लग्न व मन के लक्ष्य को परिवर्तित कर देने की शक्ति रखता हो। इस मौन व्याख्यान का महत्व व्यक्ति को तब नजर आता है, जब वह पूर्ण गंभीरता के साथ अपने या किसी दूसरे के आचरण की तटस्थ विवेचना करता है। उस वक्त व्यक्ति को यह अनुभव होता है मानो उसकी नाड़ी की एक — एक धड़कन उसके हृदय में आचरण की महत्ता के एक —एक फूल को परोकर उसे अलंकृत कर देना चाहती है। चन्द्रमा की मौन हँसी और तारों का मौन कटाक्ष का प्रभाव तभी लगाया जा सकता है, जब किसी कवि के दिल में घुसकर देखा जाए कि इतना मौन व्यवहार एक कवि के मन में कितने भाव और विचार उत्पन्न करता है।

विशेष—

1. यहाँ लेखक ने लिखित भाषा और आचरण की मौन भाषा का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।
2. भाषा शुद्ध, प्रवाहपूर्ण एवं परिमार्जित खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. वाक्य — विन्यास संगठित एवं रोचक है।
5. शब्दों का चयन विषयवस्तु के अनुरूप हुआ है।
6. भावात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. यहाँ मानवीय प्रेम के महत्व का प्रतिपादन हुआ है।

4. बर्फ का दुपट्टा बाँधे हुए हिमालय इस समय तो अति सुंदर, अति ऊँचा और अति गौरवान्वित मालूम होता है, परंतु प्रकृति ने अगणित शताब्दियों के परिश्रम से रेत का एक–एक परमाणु समुद्र के जल में डूबो डूबोकर और उनको अपने विचित्र हथौड़े से सुडौल करके इस हिमालय के दर्शन कराए हैं। आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊँचे कलश वाला मंदिर है। यह वह आम का पेड़ नहीं जिसको मदारी एक क्षण में, तुम्हारी आँखों में मिट्टी डालकर अपनी हथेली पर जमा दे।

शब्दार्थ– दुपट्टा = ओढनी, यहाँ साफा। कलश = गुम्बज शिखर

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियाँ द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबंधकार सरदार पूर्णसिंह द्वारा लिखित निबंध 'आचरण की सभ्यता' से ली गई हैं। आलोच्य निबंध में लेखक ने विद्या, कला, कविता, साहित्य धन तथा राजस्व सभी से अधिक शुद्ध आचरण को अधिक महत्व दिया है। इसके लिए उन्होंने नम्रता, दया, प्रेम तथा उदारत्ता को ह्रदय में स्थान देना आवश्यक बताया है। अच्छे आचरण वाले व्यक्ति के प्रेम तथा धर्म से समस्त जगत का कल्याण होता है। यहाँ लेखक ने यह स्पष्ट किया हैं कि आचरण का निर्माण आकस्मिक रूप नहीं होता बल्कि लम्बी तथा कठिन साधना के बाद ही आचरण की सभ्यता का निर्माण ठीक उसी प्रकार होता है जिस प्रकार प्रकति ने शताब्दियों की साधना के पश्चात् हिमालय का निर्माण किया है।

व्याख्या– लेखक कहते हैं कि जिस प्रकार हिमालय अपनी ऊँची चोटी पर बर्फ रूपी साफा पगड़ी बाँधकर अपने महिमामय स्वरूप की घोषणा करता है तथा जिस प्रकार अपनी ऊँची चोटी पर पवित्र कलश धारण करने वाला मंदिर अपनी दिव्यता का उद्घोष करता है, ठीक उसी प्रकार आचरण भी महिमामय तथा दिव्य है। जिस प्रकार हिमालय तथा ऊँचे मंदिर का निर्माण एक दिन में सम्भव नहीं है, उसी प्रकार श्रेष्ठ आचरण भी लंबी साधना के पश्चात ही प्राप्त होता है। श्रेष्ठ आचरण का निर्माण किसी मदारी अथवा जादमगर द्वारा दर्शकों को धोखा देकर क्षण भर में उगाए हुए आम के वृक्ष की भाति नहीं होता, इसके निर्माण में शताब्दियों का समय लगता है। लेखक के कहने का अभिप्राय है कि आचरण हिमालय के समान है। जैसे– हिमालय पर ऊँचे – ऊंचे शिखर हैं, वैसे ही आचरण भी ऊँचे – ऊँचे कलशों वाला एक मंदिर है। हिमालय के बनने में अनंत काल लगता है, ठीक उसी प्रकार से आचरण के बनने में भी बहत समय लगता है। यह किसी के उपदेश से या नियम संयम आदि के अभ्यास से एकदम निर्मित नहीं होता है। यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि जैसे कोई जादूगर आपकी आँखों को जादू को धोखा देकर हथेली पर आम का पेड़ जमा दे।

विशेष–

1. यहाँ आचरण की तुलना मंदिर एवं हिमालय से की गई है।
2. भाषा शुद्ध, प्रवाहपूर्ण एवं परिमार्जित खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. वाक्य विन्यास संगठित एवं रोचक हैं।
5. शब्दों का चयन विषयवस्तु के अनुरूप हुआ हैं।
6. भावात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

5. किसी की आचरण वायु के झोंके से हिल जाए तो हिल जाए, परंतु साहित्य और शब्द की गोलन्दाजी और आँधी से उसके सिर के एक बाल तक का बांका न होना एक साधारण बात है। पुष्प की कीमत पंखुडी के स्पर्श से किसी को रोमांच हो जाए, जल की शीतलता से क्रोध और विषय–वासना शांत हो जाए, बर्फ के दर्शन से पवित्रता आ जाए, सूर्य की ज्योति से नेत्र खुल जाएँ परंतु अंग्रेजी भाषा का व्याख्यान चाहे वह कारलायल ही का लिखा हुआ क्यों न हो, बनारस में पंडितों के

लिए रामलीला ही है। इसी तरह न्याय और व्याकरण की बारीकियों के विषय में पंडितों के द्वारा की गई चर्चाएँ और शास्त्रार्थ संस्कृत ज्ञानहीन पुरुषों के लिए स्टीम इंजिन के फप् –फप् शब्द से अधिक अर्थ नहीं रखते।

शब्दार्थ– गोलन्दाजी = तोप से गोली चलाने के काम, कला। कारलायल = अंग्रेज़ी भाषा का कोई विद्वान। स्टीम = भाप।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियाँ द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबंधकार सरदार पूर्णसिंह द्वारा लिखित –निबंध 'आचरण की सभ्यता' से ली गई हैं। आलोच्य निबंध में लेखक ने विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन तथा राजस्व सभी से अधिक शद्ध आचरण को अधिक महत्व दिया हैं। इसके लिए उन्होंने नम्रता, दया, प्रेम तथा उदारता को ह्रदय में स्थान देना आवश्यक बताया है। अच्छे आचरण वाले व्यक्ति के प्रेम तथा धर्म से समस्त जगत का कल्याण होता है। यहाँ लेखक सरदार पूर्णसिंह ने यह स्पष्ट किया है कि किसी महापुरुष के सदाचरण या किसी आकस्मिक व्यक्तिगत अनुभूति के प्रभाव के कारण ही व्यक्ति के आचरण में परिवर्तन होता है।

व्याख्या– लेखक कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति का आचरण किसी भी परिस्थिति के झोंके से टकराकर बदल सकता है। परंतु किसी साहित्य और उपदेशात्मक शब्दों के निरंतर प्रयोग व्यक्ति के आचरण पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। हाँ, यह बात अवश्य है कि किसी भो आकस्मिक अनुभूति से व्यक्ति का आचरण प्रभावित हो सकता है। आचरण का यह प्रभाव ठीक उसी प्रकार होता है जिस प्रकार फूलों की कोमल पंखुड़ियों के स्पर्श से आनंदपर्ण रोमांच उत्पन्न हो जाता है या जल को शीतलता क्रोध और विषय– वासनाओं को कर देती है अथवा सूर्य की किरणें किसी सोए हुए व्यक्ति को जगा देती है किंतु आचरण के लिए कोई उपदेश या कोई नीति वाक्य ठीक वैसा ही निरर्थक होता है जैसे अंग्रेजी भाषा में कारलावल जैसे विद्वान का लिखा कोई व्याख्यान बनारस के पंडितों के लिए शोरगुल से अधिक नहीं होगा। उसी प्रकार ज्ञानहीन व्यक्तियों के लिए भाप के इंजन से निकलने वाली फप्–फप् की आवाज कोई महत्व नहीं रखती है। यह आवाज तो इसका अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों के लिए ही अर्थ व महत्व रखती है।

विशेष–

1. यहाँ लेखक ने बताया है कि प्रकृति से तो सदाचरण की प्रेरणा मिल सकती है। किन्त उपदेशों से नहीं।
2. भाषा शुद्ध, प्रवाहपूर्ण एवं परिमार्जित खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. वाक्य विन्यास संगठित एवं रोचक है।
5. शब्दों का चयन विषयवस्तु के अनुरूप हुआ है।
6. भावात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. 'बाल भी बांका न होना' मुहावरे का तथा 'स्टीम' 'इंजन' आदि अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया गया है।
8. प्रस्तुत गद्यांश में सटीक उदाहरणों का प्रयोग करके आचरण को प्रभावित करने वाले तत्वों पर प्रकाश ड़ाला गया है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

1. 'कौलिन्य और सद्वृत' किस प्रकार का निबंध है?
2. 'करुणा' सेंट का सौदा नहीं है, किसका कथन है?
3. 'अशोक के फूल' किसका निबंध है ?
4. 'ब्राह्मण' पत्रिका संपादन किसने किया ?
5. भाषा और समाज किसकी कृति है ?

10.4 सारांश

निबंध गद्य की एक महत्वपूर्ण विद्या है। यह अत्यंत परिष्कृत और प्रौढ़ता का प्रतीक है। इसे आधुनिक चेतना का परिणाम माना जाता है। अतः स्पष्ट है कि बालकृष्ण भट्ट, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुबेरनाथ राय तथा आचार्य सरदार पूर्ण सिंह हिन्दी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। इनका हिंदी निबंध साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान हैं।

10.5 कठिन शब्दावली

अनुच्छेद – कट जाने पर भी अलग या नष्ट न होना, प्रस्तर

कुलीनता – शालीनता और अभिजात्य

कल्लोलित – लहराता हुआ, तरंगित

सुसज्जित – शोभायमान

सद्भाव – हित की भावना

10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. सामाजिक निबंध
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. प्रतापनारायण मिश्र
4. रामविलास शर्मा

10.7 संदर्भित पुस्तकें

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
2. प्रतापनरायण मिश्र, बात, संजय प्रकाशन, दिल्ली।
3. निर्मला जैन, निबंधों की दुनिया, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
4. बच्चन सिंह, साहित्यिक निबंध, आधुनिक दृष्टिकोण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

10.8 सात्रिक प्रश्न

1. 'कौलीन्य और सद्वृत' नामक निबंध का सारांश लिखें।
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'करूणा' नामक निबंध की शैली लिखिए।
3. 'छितवन की छांह' नामक निबंध का प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।

*****

इकाई–11
हिन्दी कहानी का भौगोलिक विस्तार

संरचना

11.1 भूमिका
11.2 उद्देश्य
11.3 हिन्दी कहानी का भौगोलिक विस्तार
11.3.1 हिन्दी कहानी का स्वरूप
स्वयं आकलन प्रश्न
11.4 सारांश
11.5 कठिन शब्दावली
11.6 स्वय आकलन प्रश्नों के उत्तर
11.7 संदर्भित पुस्तकें
11.8 सात्रिक प्रश्न

11.1 भूमिका

इकाई दस में हमने हिन्दी के प्रमुख निबन्धकारों के निबन्धों की व्याख्या का अध्ययन किया। (इकाई ग्यारह में हम हिन्दी कहानी के उद्‌भव एवं विकास का अध्ययन करेंगे। इसके अन्तर्गत हम हिन्दी कहानी के भौगोलिक विस्तार एवं हिन्दी कहानी के स्वरूप का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

11.2 उदेश्य

इकाई ग्यारह का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. हिन्दी कहानी का अरम्भ कब से हुआ?
2. हिन्दी की प्रथम कहानी कौन–सी है?
3. हिन्दी कहानी का विकास कहां से शुरू हुआ है?
4. हिन्दी कहानी का भौगोलिक विकास कैसे हुआ?
5. हिन्दी कहानी का स्वरूप क्या है ?

11.3 हिंदी कहानी का भौगोलिक विस्तार

साहित्य समाज की चित्तवृतियों को अभिव्यक्त करने का एक माध्यम है। साहित्य और समाज परस्पर सम्बद्ध है। समसामयिक परिस्थितियां और साहित्य आपस में दूसरे के निकट बिन्दु पर देखे जाते हैं। समाज में जो भी घटित होता है उसे साहित्यकार ही अपनी स्वतंत्र एवं पैनी दृष्टि से देख भिन्न विधाओं पर समय– समय पर लिखता रहता है। जिसमें कहानी भी एक महत्वपूर्ण गद्य विधा है। साहित्य की अनेकानेक गद्य विधाएं हैं जिनमें 'कहानी' लोकप्रिय एवं मनोरंजक गद्य – विधा कही जाती है। जिसमें कहानीकार स्वंतंत्रता से जीवन एवं जीवन – दर्शन तथा अपने अनुभवों के आधार पर समस्त पक्षों पर अभिव्यक्ति कर सकता है। समाज में व्याप्त लगभग सभी परिस्थितियों, घटनाओं, असंतोष, आंतक, नैतिक मूल्य, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, आर्थिक विपन्नता, सरकारी तंत्र की दुरावस्था, असुरक्षा, शोषण और न जाने कितने ही विषयों पर कहानियां रची जाती रही हैं और रची भी जा रही हैं।

वास्तविक आरम्भ 'प्रेमचंद की कहानियों से ही हुआ। इससे पूर्व भी हिन्दी साहित्येतिहास में कहानी लिखी जा रही है। लेकिन केवल आधुनिक काल में ही यह चर्चित विधा अपने पूर्ण रूप दिखाई दी।

हिन्दी कहानी कहने और सुनने की प्रथा – प्राचीन है। आत्माभिव्यक्ति मानव की सहज प्रवृति है। अपने अनुभव के आधार पर लेखक किसी भी विधा में लिखने के लिए तत्पर होता है।

कहानी या 'कथा' शब्द का शाब्दिक अर्थ है – कहना। इसके अनुसार जो कुछ भी कहा जाए वो कहानी है। लेकिन विशिष्ट अर्थ में किसी विशेष घटना के रोचक ढंग से कौतुहलपूर्ण वर्णन करना कहानी है। रोचक तथ्य ही कहानी या किसी भी विधा को सम्प्रेषणीय बनाते हैं।

भारतीय साहित्य में वैदिक साहित्य से ही आगे पुराणों – उपनिषदों जातक कथाओं और पंचतंत्र आदि में कहानी के पुराने स्वरूपन को देखा जा सकता है। इन कहानियों में या तो उपदेश देने का भाव है या धार्मिक सिद्धान्तों का रोचकतापूर्ण निरूपण। आधुनिक अर्थ में इन्हें कहानी के रूप में नहीं लिया जा सकता। आज कहानी का अर्थ है जिन्दगी के एक हिस्से से अन्तरंग पहचान जताना। अनुभव की दराजों से सही वस्तु चुनना और उसे शिल्प की तल्खी देना। आचार्य रामदेव का ऐसा कहने से भाव है कहानी 19वीं शती की वस्तु है जो 19वीं शती के अन्तिम चरण में सामने आई।

हिन्दी की पहली कहानी किसे माना जाए इस पर विद्वानों का भारी मतभेद है। में संक्षेप में यहां भिन्न मत उद्धृत हैं: –

हिन्दी की पहली कहानी किसे माना जाए वास्तव में यह निर्णय करना कठिन है।

कहानी नाम से प्राप्त पहली रचना 'रानी केतकी की कहानी' (ईशा अल्ला खां) है जो 1803 के आसपास रचित स्वीकारी जाती है। डॉ. रामरतन भटनागर भी इसे ही हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। लेकिन बहुत से विद्वान इसके अतिमानवीय तत्वों का होना आधुनिक कहानी को ग्राहय नहीं है, ऐसा स्वीकार करते हैं।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे प्रारम्भिक कहानी नहीं अपितु मुस्लिम प्रभाव से ग्रसित परम्परा की अन्तिम कहानी स्वीकारते हैं।

"किशोरीलाल गोस्वामी' द्वारा सृजित "प्रणयिनी परिणय' (सन् 1887) हिन्दी की पहली कहानी है। डॉ. बच्चन सिंह ने इस कहानी के रूपबंध पर आख्यान पद्धति का पूरा प्रभाव माना है। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली, भाव गहरा और प्रेम की सुखद परिणति दिखाई देती है।

डॉ. सुरेश सिन्हा ने एवं बहुत से अन्य विद्वानों ने किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' को पहली कहानी माना है। उनके अनुसार प्रथम कहानी का निर्धारण समयक्रम से ही होना चाहिए।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल की दृष्टि में शिल्प विधि की दृष्टि से प्रथम मौलिक कहानी रामचन्द्रशुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903) है।

डॉ. श्रीकृष्णलाल और सुधाकर पाण्डेय ने बंग महिला की 'दुलाईवाली' (सन् 1907) को यथार्थवादी चित्रण की सर्वप्रथम रचना माना है।

प्रो. वासुदेव 'इन्दू' में प्रकाशित 'ग्राम ' (1911) को हिन्दी की पहली कहानी होने का गौरव प्रदान करते हैं। माधव राव स्प्रे. कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी', (सन् 1901) को हिन्दी की प्रथम कहानी माना जाना चाहिए। इसमें आर्थिक चेतना और आधुनिक अर्थमूल कहानी है। डॉ. रामदरश मिश्र का ऐसा मानना है।

शिवदानसिंह चौहान तो कहानी का प्रारम्भ प्रेमचन्द और प्रसाद से मानना चाहिए ऐसा विचार रखते हैं।

राजेन्द्र यादव चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था। (सन् 1916) को आधुनिक कहानी की प्रथम कहानी मानते हैं।

बहुत से मत हैं लेकिन जब तक पूर्ण शोध नहीं हो जाता तब तक रोवरेट जे. न्यूटन की कहानी जमींदार का दृष्टांत' (सन् 1871 ई०) को हिन्दी की पहली कहानी कह सकते हैं।

हिन्दी कहानी की प्रगति के चार चरण स्वीकार किए गए हैं –

1. प्रथम चरण (सन् 1870 से 1915 तक)
2. द्वितीय चरण (सन् 1915 से 1935 तक)
3. तृतीय चरण (सन् 1935 से 1950 तक)
4. चतुर्थ चरण (सन् 1950 से आज तक)

मूलतः 'प्रेमचन्द' को केन्द्र में रखकर पूर्व प्रेमचंद युग, प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्द्रोतर युग में कहानी के विकास को आंका जा सकता है।

प्रथम चरण में प्रारम्भिक कहानियों में डॉ. रामदरश मिश्र की सोच सही है कि यथार्थ, आदर्श लक्ष्य के रूप में विद्यमान है। इस युग की कहानियां भावुकता एवं संयोगों की बहुलत को लिए हुए है। इस युग में मास्टर भगवानदास माधवप्रसाद मिश्र, विश्वंभरनाथ आदि ने कुछ कहानियां लिखी हैं।

दूसरे चरण में व्यक्ति की दिशा और व्यक्ति के सत्य पर आधारित दो दिशाओं में कहानी लिखी गई। जिसमें प्रसाद, राम कृष्णदास, विनोदशंकर व्यास आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

डॉ. इन्द्रनाथ मदान का महत्वपूर्ण मत देना में आवश्यक समझती हूं कि, "हिन्दी कहानी के विकास की दूसरी दिशा जिसमें समष्टि सत्य की संवेदना है, समष्टि विकास की संचेतना है, समष्टि मंगल की भावना है, समष्टि यथार्थ को आत्मसात करने की प्रेरणा है, प्रेमचन्द के कहानी – साहित्य से आरम्भ होती है।

प्रेमचन्द के समकालीन सुदर्शन एवं विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कोशिक' श्री प्रेमचन्द की कथा दृष्टि को समर्थन देते हैं।

तीसरे चरण में तीन प्रकार की रचनाएं मुरव्य रूप से सामने आई। प्रथम स्थान पर व्यक्ति सत्य का उद्घाटन मनोवैज्ञानिक धाराणाऐं जिसमें जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी लेखक आते हैं। दूसरे स्थान पर समाज सापेक्ष प्रश्नों से सम्बन्धित कहानियां लिखने वाले यशपाल, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद आदि लेखक माने जाते हैं और तीसरे स्थान पर व्यक्ति सत्य और समष्टि सत्य पर चर्चा करने वाले कहानीकार 'अश्क भगवतीचरण वर्मा आदि हैं।

चौथे स्थान पर स्वातंत्रयोत्तर कहानी आती है। इसमें तीन पीढ़ियों की लिखी कहानियां आती हैं। जिसमें यशपाल, जनेन्द्र से लेकर आजादी के बाद के कहानीकार राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, अन्नू भंडारी, मोहन राकेश आदि और 19 के अन्त में युवा पीढ़ी ने भी लिखना आरम्भ किया जिसमें ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, कामतानाथ, हिमांशु जोशी एवं महीप सिंह जैसे महान् लेखक गिने जाते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात विभिन्न आन्दोलन चले तो कहानी ने कई रूप धारण किए जैसे नयी कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, सहज एवं समानान्तर कहानी जैसे नामों से जाना गया। बहुत से कहानीकार इन आन्दोलनों से अलग रहकर कहानी लिखते रहे उनमें रामदरश मिश्र, विवेकीराय, मृदुल गर्ग, ललित शुक्ल, मैत्रेयी पुष्पा आदि ने महत्वपूर्ण कहानी लेखन किया है।

नवें दशक की कहानी में भी परिवर्तन आया जिसमें जनधर्मी परम्परा पर ईमानदारी से लिखा गया।

कहानी की कहानी के पश्चात् कहानी की परिभाषा को जानना आवश्यक है।

कहानी साहित्य की सशक्त एवं लोकप्रिय गद्य–विधा है। व्यक्ति, समाज, क्रिया –कलाप, विधियां, सुख–दुःख, नैतिक – अनैतिक, मूल्य, मनोविज्ञान की सर्वग्राहय मार्मिक तस्वीर कहानी में मिल सकती है।

पाश्चात्य विद्वान एड़गर एलिन, के अनुसार, "कहानी एक छोटा सा आख्यान है, जो एक ही बैठक में पढ़ा जा सके और जो पाठक पर एक ही प्रभाव उत्पन्न करने के लिए लिखा गया हो।'' कहानी सक्षिप्त एवं प्रभावपूर्ण होनी आवश्यक है। एड़गर एलिचन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 187 सर हयूवालपोल के अनुसार कहानी एक कहानी होनी चहिए, उसमें घटनाओं और आकस्मिकता का लेखा – जोखा होना चाहिए, उसमें क्षिप्रगति के साथ अप्रत्याशित विकास होना चाहिए जो कौतूहल द्वारा चरणबिन्दु और असन्तोषजनक अंत तक ले जायेगा।' (सर हयूवालपोल, हिन्दी वाङ्मय, बीसवीं शती पृ. 249)

कहानी कोतुहलपूर्ण होती है और पढ़ने पर अंत तक कौतुहल बना रहता है।

डॉ. गलाबराय के अनुसार, "छोटी कहानी स्वतः एक पूर्ण रचना है। जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली शक्ति केन्द्रीय घटना या घटनाओं के आवश्यकता परन्तु कुछ–कुछ अप्रत्याशित ढंग से उत्थान–पतन और मोड के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतुहलपूर्ण वर्णन है।'' (डा. गुलाबराय, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 187)।

अज्ञेय के अनुसार, "कहानी मानव जीवन की प्रतिच्छाया है। और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है, एक शिक्षा है जो उम्र भर मिलती है और समाप्त नहीं होती।'' (अज्ञेय, कहानी स्वरूप और संवेदना पृ० 62)। अतः स्पष्ट है कि कहानी मानव जीवन से निर्मित होती है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के मतानुसार, ''घटनात्मक इकहरे चित्रण का नाम कहानी है और साहित्य के अंगों को समान रस इसका आवयश्क मूल है।'' (चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, समकालीन कहानी की पहचान, पृ० 16)। अतः कहानी में घटना तो होती है लेकिन साथ – साथ पाठक रसास्वादन भी करता है।

मनुष्य ने जब से वाणी का व्यापार आरम्भ किया तब से कहानी उसके साथ है। जब से उसने लिपि से परिचय प्राप्त किया, सब से कहानी का लिखत रूप मिलता है। भारतीय साहित्य में वैदिक वाङ्मय से लेकर पुराणों, उपनिषदों, जातक कथाओं और पंचतन्त्र आदि से कहानी का पुराना स्वरूप देखा जा सकता है।

कहानीनुमा पुरानी रचनाओं में उपदेशामकता निहित रहती है लेकिन आज की कहानी कला में भिन्न उद्देश्य निहित रहता है। भिन्नता तो आई है।

अगर यूं कहा जाए कि "जीवन की वास्तविकताओं व यथार्थ का उद्घाटन ही आज की कहानी का संहार है। इसी से इसे जीवन का एक टुकड़ा (A slice of life) कहा जाता है। (डॉ. मंगल मेहता, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी, पृ० 16)

'समकालीन साहित्य में कहानी विधा अपनी उपलब्धियों में किसी भी अन्य विधा से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। जीवन के बहुरंगी, गहन, जटिल अनुभवों की पहचान कहानी के माध्यम से हुई।" (उषा प्रियम्वदा 'स्वीकृति' कितना बड़ा झूठ', कहानी स. से पृ. 80–95)।

''कहानी का मानव सभ्यता और उसके विकास के साथ गहरा सम्बन्ध है। सभ्यता के आदिकाल में भी कहानी सुनने – सुनाने की परम्परा थी। (उषा प्रियम्बदा 'कितना बड़ा झूठ, पृ0 44–52)।

कहानी का व्युतपतिपरक अर्थ के अर्तगत डा. पुष्पा बंसल 'अनुसार, '"आख्यायिका', 'गल्प', 'कथा' कहानी के पर्यायवाची शब्द हैं – "कहानी के मूल में कहने का भाव ही है। कहानी के अन्य पर्यायवाची– 'आख्यायिका' 'गल्प' व कथा का शब्दार्थ भी सही है। 'आख्यायिका अर्थात् आख्यान करना, कहना 'कथा' अर्थात् बोलना – कहना, कहानी सम्बन्धी किसी शब्द को देखें, उसका अर्थ यही सिद्ध होता है।

डॉ. की पुस्तक 'नवम दशक की हिन्दी महिला 'कथाकारों की नारी – चेतना' के अन्तर्गत कहानी की परिभाषा सुगम एवं सुलभ शब्दों में की गई जिनका अर्थ पाठकों को आसानी से समझ आ सकेगा। जो निम्नलिखित हैः –

कहानी को भली भांति समझने के लिए यह ज्ञान होना आवश्यक है कि –

1. आकार की दृष्टि से कहानी 20 मिन्ट से अधिक न हो।
2. उपन्यास यदि पूर्ण जीवन का चित्र है तो कहानी जीवन के एक पक्ष की झांकी है।
3. लघुकथा में केवल एक ही मूलभाव होता है। उस मूल भाव का विकास तार्किक निष्कर्षों के साथ लक्ष्य की एकनिष्ठता से सरल स्वाभाविक गति से किया जाना चाहिए।
4. आख्यायिका का एक निश्चत लक्ष्य या प्रभाव को लेकर लिखा गया नाटकीय व्याख्यान है।
5. गल्प ऐसी रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसका चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा–विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं।
6. छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है।
7. कहानी आधुनिक साहित्य की वह लघ्वाकार–गद्यात्मक विधा है जिसने कलाकार जीवन या जगत की किसी एक घटना, वस्तु व्यक्ति, परिस्थिति, भावना या विचार को लेकर एक निश्चित कला – विधि का अनुसरण करता हुआ ऐसी संवेदना और सभावान्विति का सजन करता है जो पाठक को भाव – विभोर कर रससिक्त करने में असमर्थ होती है।

ऊपर किए गए वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि विद्वानों ने कहानी में आकार की लघुता, एक भाव, एक घटना का चित्रण, गद्य में रचित होना तो माना है, लेकिन कहानी का मूल लक्षण कि यह घटित दृष्टांत हो इसे स्पष्ट नहीं किया।

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि एक घटना, एक मनोभाव, एक घटना को लेकर लिखे गए, अल्प समय में पढ़े जाने वाले घटित गद्यात्मक वृतान्त को कहानी कहा जा सकता है।

11.3.1 कहानी का स्वरूप

कहानी का अपना एक रचना विधान है, जिसके अन्तर्गत 6 तत्वों को गिना जाता है।

कथानक – कहानी में एक मनोभाव, एक घटना की अभिव्यक्त होती है, अतः कथानक में कसावट होती है साथ ही उसमें संजीवता, स्वाभाविकता एवं भोजकता होनी चाहिए।

कथोपकथन– कथोपकथनों या संवादों के माध्यम से कहानी में नाटकीयता पैदा होती हैं एंव पात्रों को समझने में सहायता मिलती है। कथोपकथन स्वाभाविक, सरल एवं पात्रानुकूल होने चाहिए।

पात्र चरित्र– चित्रण – वास्तव में कहानी में एक मुख्य पात्र और अन्य सहायक पात्र होते हैं। पात्र संवाद –घटनाएं इन तीनों के द्वारा ही कहानी को गति मिलती है।

वातावरण– कहानी के कथ्य को सजीव एवं मनोरंजक बनाने के लिए वातावरण या देशकाल सहायक सिद्ध होता है। पृष्ठभूमि में ही वातावारण निहित रहता है। कहानी में इसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता।

भाषा–शैली – कहानी को सम्प्रेषणीय एवं प्रभावशाली बनाने के लिए भाषा का रोचकर होना आवश्यक है। भाषा में रोचकता, सजीवता सरलता, संकेतात्मकता एवं नाटकीयता जैसे गुण निहित रहने चाहिए। कृत्रिम एवं अलंकृत भाषा कहानी को बोधगम्य नहीं बनाती।

उद्देश्य – कहानी केवल उद्देश्य मनोरंजन नहीं अपितु उद्देश्य का पाना भी है जिमसें सत्य की स्थापना चाहे वह सामाजिक हो, धार्मिक हो या मानव मन से जुड़ा हो। कहानी वैचारिक वातावरण बनाती है। मनोरंजन भी आवश्यक है लेकिन उद्देश्य का अधिक महत्व है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि एक प्रभाव, एक धटना, एक मनोभाव को लेकर लिखी जाने वाली विधा कहानी है– जिसका अर्थ है कथन अथवा कहना।

सन् 1960 से नई कविता के समान कहानी क्षेत्र में भी असामाजिक भावनाओ, अनास्था, कुंठा, क्षणवाद, सत्र, घुटन, निराशा तथा जीवन के प्रति वितृष्णा को वाणी मिली। ऐसी कहानियों को नई कहानी कहा गया।

नई कहानी भी नई कविता के समान ही अकहानीं, सचेतन कहानी, अचेतन कहानी:, लम्बी कहानी जैसे केंचुली बदलती रही।

साहित्य बदलते हुए जीवन की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गया है। प्रो० धनंजय वर्मा ने नई कहानी के भावा – बोध में लिखा है, "जो संशयग्रस्तता और व्यर्थता, जो सत्रांस और निर्वासन, जो अजनबीपन और अकेलापन, जो मृत्यु, ऊब और घुटन इन दिनों के वातावरण में फैली और फैल रही है, उसी का उद्‌घाटन इधर के कहानीकार पूरी बोल्डनेस के साथ कर रहे हैं। मुमकिन है कुछ लोगों को ये मनोदशायें आरोपित लगती हैं। ये स्थितियां किंचित अतिरंजित भले लगे इन्हें निराधार नहीं कहा जा सकता है।

निःसदेह नई कहानी में चित्रण एवं स्थितियां निराधार तो नहीं हैं लेकिन किसी ठोस एवं स्वस्थ मन की विक्षुब्ध स्थिति का एकांगी आधार लेकर उभरी हैं।

डॉ. रमेश पाण्डेय एवं डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने भी नई कहानी के विषय में कहा है कि चरित्र की असंगति, सस्पेंस, चरमसीमा का अभाव अन्तद्वन्द्वों का सायास चित्रण नहीं करता, शिल्प में नवीनता है, सांकेतिकता, बिम्ब, प्रतीकों का बाहुल्य है। ऐसा डॉ. रमेश पाण्डेय का मानना है।

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने कथा तत्व का ह्रास माना है। शहरी जीवन के कलुषित, अस्वस्थ एवं कुंठाग्रस्त रूप को विषय बनाया है। वास्तविक अनुभूति का अभाव नजर आता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने देहात की कटु यथार्थता से इन कथाकारों को कोई प्रयोजन नहीं था। देहात में जो अनाचार अत्याचार से किसी को गरज नहीं थी। देहात की उस धरती में उन्होंने शहर के पेचीदा मन वाले लोग बसा दिये।

नए कहानीकारों में मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, धर्मवीर, भारती, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, अमरकांत, शेखर जोशी, रेणु, नार्कण्डेय, अमृतराय, रघुवीर सहाय, मनु भंडारी, श्रीकांत वर्मा, राजकमल चौधरी, गंगाप्रसाद विमल, तथा ऊषाप्रियंवदा आदि।

डॉ. रमेश पाण्डेय का कहना है, "आज नए कहानीकार साहित्य की निरन्तर प्रवाहमान स्वस्थ साहित्यिक परम्परा को ठुकरा कर विदेशी ढंग पर विसंगति बोध और विद्वान्सवाद के आग्रह से भरी हुई कहानियों का निर्माण कर रहे हैं ये वर्तमान की विकृति की कहानियां है। इन्होंने नई कहानियों पर प्रश्न चिहन लगा दिया है।'

प्रिय छात्रो ! कहानी के विषय में सम्भावित चर्चा की जा चुकी है। आपको इन्हीं तथ्यों, विचारों एवं सत्यों के आधार पर ही पाठ्यक्रम में निर्धारित कहानियों की समीक्षा करनी होगी। यहां केवल मार्गदर्शन ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

गद्य साहित्य के अन्तर्गत आठ कहानीकारों की कहानियां आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित की गई हैं। जिसमें पं. माधव राव स्प्रे, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार, निर्मल वर्मा, मन्नु भण्डारी ऊषाप्रियंवदा, शेखर जोशी तथा एस. आर. हरनोट की प्रसिद्ध कहानियों का चयन किया गया है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

1. आचार्य शुक्ल ने हिन्दी की पहली कहानी किसे माना है?
2. ग्यारह वर्ष का समय किसकी रचना है?
3. 'उसने कहा था' कहानी के लेखक कौन है?

11.4 सारांश

कहानी शब्द हमारे लिए अपरिचित शब्द नहीं है, क्योंकि बचपन में हम जिसे कथा कहते थे, कहानी उसी कथा का साहित्यक रूप है। इस कहानी को हम दादी – नानी के मुख से लोककथा के रूप में सुना तो कभी पंडित जी के मुख से धार्मिक कथा के रूप में। कहानी की प्राचीन नाम संस्कृत में गल्प या आख्यायिक मिलता है। आधुनिक हिन्दी कहानी का जन्म वर्तमान युग की आवश्यकताओं के कारण हुआ। हिन्दी कहानी का उद्भव द्विवेदी युग में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन से आरंभ होता है।

11.5 कठिन शब्दावली

तत्पर – आमदा, उत्साही

असाधारण – असामान्य, उल्लेखनीय

11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. इन्दुमती
2. शुक्ल
3. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

11.7 संदर्भित पुस्तकें

1. मधुरेश, नयी कहानी : पुनर्विचार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. नरेन्द्र मोहन, समकालीन कहानी की पहचान, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली।

11.8 सात्रिक प्रश्न

1. हिन्दी कहानी के उद्भव एवं विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए।
2. हिन्दी कहानी के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई—12
पं० माधव राव स्प्रे जीवन और साहित्य

संरचना

12.1 भूमिका

12.2 उद्देश्य

12.3 पंडित माधव राव स्प्रे जीवन और साहित्य

12.3.1 जीवन परिचय

12.3.2 साहित्यिक परिचय

स्वयं आकलन प्रश्न—1

12.4 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का सार

12.4.1 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का उद्देश्य

स्वयं आकलन प्रश्न—2

12.5 सारांश

12.6 कठिन शब्दावली

12.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

12.8 संदर्भित पुस्तकें

12.9 सात्रिक प्रश्न

12.1 भूमिका

इकाई ग्यारह में हमने हिन्दी कहानी के भौगोलिक विस्तार एवं हिन्दी कहानी के स्वरूप का अध्ययन किया। इकाई बारह में हम पंडित माधव राम स्प्रे के जीवन और साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। 'एक टोकरी भर मिटटी' कहानी के सार और उद्देश्य का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

12.2 उद्देश्य

इकाई बारह का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होगे कि –

1. पंडित माधव राव स्प्रे का जीवन परिचय क्या है?
2. पंडित माधव राम स्प्रे का साहित्यिक परिचय क्या है?
3. 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का सार क्या है?
4. 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का उद्देश्य क्या है ?

12.3 पंडित माधव राव स्प्रे : जीवन और साहित्य

12.3.1 जीवन परिचय

माधवराव स्प्रे (जून 1871—26 अप्रैल 1926) के जन्म दमोह के पथरिया ग्राम में हुआ था। बिलासपुर में मिडिल तक की पढ़ाई के बाद मैट्रिक शासकीय विद्यालय रायपुर से उत्तीर्ण किया। 1899 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी.ए. करने के बाद उन्हें तहसीलदार के रूप में शासकीय नौकरी मिली लेकिन स्प्रे जी ने भी देश भक्ति प्रदर्शित करते हुए अंग्रेजों की शासकीय नौकरी की परवाह न की। सन् 1900 में जब समूचे छत्तीसगढ़ में प्रिंटिंग प्रेस नहीं था तब इन्होंने बिलासपुर जिले के एक छोटे से गांव पेंड्रा से "छत्तीगढ़ मित्र" नामक मासिक

पत्रिका निकाली। हालांकि यह पत्रिका सिर्फ तीन साल ही चल पाई। स्प्रे जी ने लोकमान्य तिलक के मराठी केसरी को यहाँ हिंदी केसरी के रूप में छापना प्रारंभ किया तथा साथ ही हिंदी साहित्यकारों व लेखकों को एक सूत्र में पिरोने के लिए नागपुर से हिंदी ग्रंथमाला भी प्रकाशित की। उन्होंने कर्मवीर के प्रकाशन में भी महती भूमिका निभाई।

स्प्रे जी की कहानी "एक टोकरी मिट्टी" (जिसे बहुधा लोग "टोकरी भर मिट्टी" भी कहते हैं) को हिंदी की पहली कहानी होने का श्रेय प्राप्त है। स्प्रे जी ने लेखन के साथ – साथ विख्यात संत समर्थ रामदास के मराठी दासबोध व महाभारत की मीमांसा, दत्त भार्गव, श्री राम चरित्र, एकनाथ चरित्र और आत्म विद्या जैसे मराठी ग्रंथों, पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद भी बखूबी किया। 1925 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के देहरादून अधिवेशन में सभापत्ति रहे सप्रे जी ने 1921 में रायपुर में राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना की और साथ ही रायपुर में ही पहले कन्या विद्यालय जानकी देवी महिला पाठशाला की भी स्थापना की। यह दोनों विद्यालय आज भी चल रहे हैं।

रायपुर में अध्ययन के दौरान पं. माधवराव सप्रे, पं. नंदलाल दुबे जी के समर्क में आये जो इनके शिक्षक थे एवं जिन्होंने अभिज्ञान शाकुन्तलम और उत्तर रामचरित मानस का हिन्दी में अनुवाद किया था व उद्यान मालिनी नामक मौलिक ग्रंथ भी लिखा था। पं. नंदलाल दुबे ने ही पं. माधवराव सप्रे के मन में साहित्यिक अभिरुचि जगाई जिसने कालांतर में पं. माधवराव सप्रे को 'छतीसगढ़ मित्र' व 'हिन्दी केसरी' जैसे पत्रिकाओं के संपादक के रूप में प्रतिष्ठित किया और राष्ट्र कवि माखनलाल चतुर्वेदी जी के साहित्यिक गुरु के रूप में एक अलग पहचान दिलाई।

प. माधवराव सप्रे सन् 1889 में रायपुर के असिस्टेंट कमिश्नर की पुत्री से विवाह के बाद श्वसुर द्वारा अनुशंसित नायब तहसीलदार की नौकरी को ठुकराकर अपने कर्मपथ की ओर बढ़ गए। पहले रार्बटसन कालेज जबलपुर फिर 1894 में विक्टोरिया कालेज ग्वालियर एवं 1896 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एफ. ए. पास किया। इसी बीच उनकी पत्नी का देहावसान हो गया और शिक्षा में कुछ बाधा आ गई। पुनः 1989 में इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी.ए. की डिग्री ली एवं एल.एल.बी. में प्रवेश ले लिया किन्तु अपने वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण इन्होंने विधि की परीक्षा को छोड छत्तीसगढ़ वापस आ गए।

माधवराव सप्रे के जीवन संघर्ष, उनकी साहित्य साधना, हिन्दी पत्रकारिता के विकास में उनके योगदान, उनकी राष्ट्रवादी चेतना, समाजसेवा और राजनीतिक सक्रियता को याद करते हुए माखनलाल चतर्वेदी ने 11 सितम्बर 1926 के कर्मवीर में लिखा था– पिछले पच्चीस वर्षों तक प. माधवराव सप्रे जी हिन्दी के एक आधार स्तम्भ, साहित्य, समाज और राजनीति की संस्थाओं के साहित्यिक उत्पादक तथा उनमें राष्ट्रीय तेज भरने वाले, प्रदेश के गाँवों में घूम घूम कर अपनी कलम को राष्ट्र की जरूरत और विदेशी सता से जकड़े हुए गरीबों का करुण क्रंदन बना डालने वाले, धर्म में धँस कर उसे राष्ट्रीय सेवा के लिए विवश करने वाले तथा अपने अस्तित्व को सर्वथा मिटा कर, सर्वथा नगण्य बना कर अपने आसपास के व्यक्तियों और संस्थाओं के महत्त्व को बढ़ाने और चिरंजीवी बनाने वाले थे।

विवाह

पं. माधवराव सप्रे सन् 1889 में रायपुर के असिस्टेंट कमिशनर की पुत्री से विवाह के बाद श्वसर द्वारा अनुशंसित नायब तहसीलदार की नौकरी को ठुकराकर अपने कर्मपथ की ओर बढ़ गए। पहले रार्बट्सन कालेज जबलपुर फिर 1894 में विक्टोरिया कालेज गव्वालियर एवं 1896 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एफ. ए. पास किया। इसी बीच उनकी पत्नी का देहावसान हो गया और शिक्षा में कुछ बाधा आ गई। पुनः 1989 में इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी. ए. की डिग्री ली एवं एल.एल.बी. में प्रवेश ले लिया किन्तु अपने वैचारिक प्रतिबद्धता के कारण इन्होंनें विधि की परीक्षा को छोड़ छत्तीसगढ़ वापस आ गए। छत्तीसगढ में आने के बाद परिवार के द्वारा

इनका दूसरा विवाह करा दिया गया जिसके कारण इनके पास पारिवारिक जिम्मेदारी बढ़ गई तब इन्होंने सरकारी नौकरी किए बिना समाज व साहित्य सेवा करने के उद्देश्य को कायम रखने व भरण पोषण के लिए पेंड्रा के राजकुमार के अंग्रेजी शिक्षक के रूप में कार्य किया। जिसके सहयोग से 'छात्र सहोदर', 'तिलक', हितकारिणी', 'श्री शारदा' जैसे हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण पत्रिकाओं का प्रकाशन संभव हआ जिसका आज तक महत्व विद्यमान है।

12.3.2 साहित्यिक परिचय

स्वदेशी आंदोलन और बॉयकाट, यूरोप के इतिहास से सीखने योग्य बातें, हमारे सामाजिक ह्रास के कुछ कारणों का विचार, माधवराव सप्रे की कहानियाँ (संपादन : देवी प्रसाद वर्मा)

अनुवादः हिंदी दासबोध (समर्थ रामदास की मराठी में लिखी गई प्रसिद्ध), गीता रहस्य (बाल गंगाधर तिलक), महाभारत मीमांसा (महाभारत के उपसंहार : चिंतामणी विनायक वैद्य द्वारा मराठी में लिखी गई प्रसिद्ध पुस्तक)

संपादन : हिंदी केसरी (साप्ताहिक समाचार पत्र), छत्तीसगढ़ मित्र (मासिक पत्रिका)

एक टोकरी भर मिट्टी : माधवराव सप्रे की

किसी श्रीमान जंमीनदार के महल के पास एक गरीब अनाथ विधवा की झोंपड़ी थी। जंमीनदार साहब को अपने महल का हाता उस झोंपड़ी तक बढ़ाने की इच्छा हुई। विधवा से बहुतेरा कहा कि अपनी झोंपड़ी हटा ले, पर वह तो कई जमाने से वहीं बसी थी। उसका प्रिय पति और एकलौता पुत्र भी उसी झोपड़ी में मर गया था। पतोहू भी एक पाँच बरस की कन्या को छोड़कर चल बसी थी। अब यही उसकी पोती इस वृद्धापकाल में एक मात्र आधार थी। जब कभी उसे अपनी पूर्वस्थिति की याद आ जाती, तो मारे दुःख के फूट – फूट कर रोने लगती थी, और जब से उसने अपने श्रीमान पड़ोसी की इच्छा का हाल सुना, तब से तो वह मृतप्राय हो गई थी। उस झोंपड़ी में उसका ऐसा कछ मन लग गया था कि बिना मरे वहाँ से वह निकलना ही नहीं चाहती थी। श्रीमान के सब प्रयत्न निष्फल हुए, तब वे अपनी जंमीनदारी चाल चलने लगे। बाल की खाल निकालने वाले वकीलों की थैली गरम कर उन्होंने अदालत से उस झोंपडी पर अपना कब्जा कर लिया और विधवा को वहाँ से निकाल दिया। बिचारी अनाथ तो थी ही। पाँडा – पड़ोस में कहीं जाकर रहने लगी। एक दिन श्रीमान उस झोंपडी के आस – पास टहल रहे थे और लोगों को काम बतला रहे थे कि इतने में वह विधवा हाथ में एक टोकरी लेकर वहाँ पहुँची। श्रीमान ने उसको देखते ही अपने नौकरों से कहा कि उसे यहाँ से हटा दो। पर वह गिड़गिड़ा कर बोली कि "महाराज अब तो झोंपड़ी तुम्हारी ही हो गई है। मैं उसे लेने नहीं आई हूँ। महाराज छिमा करें तो एक विनती है।'' जंमीनदार साहब के सिर हिलाने पर उसने कहा कि "जबसे यह झोंपडी छूटी है, तब से पोती ने खाना – पीना छोड़ दिया है। मैंने बहुत कुछ समझाया, पर एक नहीं मानती। कहा करती है कि अपने घर चल, वहीं रोटी खाऊँगी। अब मैंने सोचा है कि इस झोंपड़ी में से एक टोकरी भर मिट्टी लेकर उसी का चूल्हा बनाकर रोटी पकाऊँगी। इससे भरोसा है कि वह रोटी खाने लगेगी। महाराज कृपा करके आज्ञा दीजिये तो इस टोकरी में मिट्टी ले जाऊँ।" श्रीमान ने आज्ञा दी।

विधवा झोंपड़ी के भीतर गई। वहाँ जाते ही उसे पुरानी बातों का स्मरण हुआ और आंखों से आंसू की धारा बहने लगी। अपने आंतरिक दुःख को किसी तरह सम्हाल कर उसने अपनी टोकरी मिट्टी से भर ली और हाथ से उठाकर बाहर ले आई। फिर हाथ जोड़कर श्रीमान से प्रार्थना करने लगी कि, "महाराज कृपा करके इस टोकरी को जरा हाथ लगायें जिससे कि में उसे अपने सिर पर धर लूँ।' जंमीनदार साहब पहले तो बहुत नाराज हुए, पर जब वह बारबार हाथ जोड़ने लगी और पैरों पर गिरने लगी तो उनके भी मन में कुछ दया आ गई। किसी नौकर से न कहकर आप ही स्वयं टोकरी उठाने को आगे बढे। ज्योंही टोकरी को हाथ लगाकर उपर उठाने लगे,

त्योही देखा कि यह काम उनकी शक्ति से बाहर है। फिर तो उन्होंने अपनी सब ताकत लगाकर टोकरी को उठाना चाहा, पर जिस स्थान में टोकरी रखी थी, वहाँ से वह एक हाथ भर भी ऊँची न हुई। तब लज्जित होकर कहने लगे कि "नहीं, यह टोकरी हमसे न उठाई जाएगी।"

यह सुनकर विधवा ने कहा, "महाराज! नाराज न हों। आपसे तो एक टोकरी भर मिट्टी उठाई नहीं जाती और इस झोंपड़ी में तो हजारों टोकरियाँ मिट्टी पड़ी है। उसका भार आप जन्म भर क्यों कर उठा सकेंगे! आप ही इस बात का विचार कीजिये।'

जमीनदार साहब धन– मद से गर्वित हो अपना कर्तव्य भूल गये थे, पर विधवा के उपरोक्त वचन सुनते ही उनकी आँखें खुल गई। कृतकर्म का पश्चात्ताप कर उन्होंने विधवा से क्षमा मांगी और उसकी झोपड़ी वापस दे दी।

कहानी का सारांश : यह कहानी वर्ग भेद पर आधारित कहानी है। संपन्न वर्ग के लोग हमेशा से गरीबों और अनाथों का शोषण करते रहे हैं। इस कहानी में जमीदार भी अपने महल को बढ़ाने के लिए अनाथ विधवा के झोंपडी पर कब्जा करता है। पर अनाथ विधवा का मार्मिक कथन जमींदार की आँखें खोल देती हैं। जमींदार का हृदय परिवर्तित हो जाता है। और वह अपने कर्म पर पश्चाताप करते हुए, विधवा को झोंपड़ी वापस कर देता है।

जमींदार के महल के पास एक गरीब अनाथ विधवा की झोंपड़ी थी। जमींदार साहब को अपने महल का छाता उस झोपड़ी तक बढ़ाने की इच्छा हुई। जमींदार ने विधवा से बहुत बार कहा कि अपनी झोंपड़ी हटा ले पर वह तो कई जमाने से वहीं बसी थी।

उसका प्रिय पति और इकलौता पुत्र भी उसी झोपड़ी में मर गया था। पतोहू भी एक पांच बरस का कन्या को छोड़कर चल बसी थी। अब यही पोती उसकी वृद्धकाल में एकमात्र सहारा थी। जब कभी भी उसे अपनी पहले की स्थिति याद आ जाती तब वह मारे दुःख से फूट–फूट कर रोने लग जाती थी। जबसे उसने अपने श्रीमान पड़ोसी का हाल सूना है, तब से वह मृत सी हो गई थी। उस झोंपड़ी से उसे इतना लगाव था कि वह वहाँ से निकलना नहीं चाहती थी। जमींदार की इच्छा को सुनकर उसकी अवस्था मृतक सी हो गई थी। पर वह झोंपड़ी छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी। जमींदार के सभी प्रयत्न विफल हो गए। तब जमींदार ने अदालत का सहारा लिया और झोंपड़ी पर कब्जा कर विधवा को वहाँ से निकलवा दिया। झोंपड़ी छोड़ने के बाद बुढ़िया वही पड़ोस में ही रहने लगी।

एक दिन जमींदार मजदूरों को लेकर झोंपड़ी के पास कुछ काम करवा रहा था। उसी समय अनाथ विधवा हाथ में एक टोकरी लेकर वहां पहुँचती है। जमींदार उसे देखते ही नौकरों को हटाने के लिए कहा। पर वह गिड़गिड़ाकर बोली, महाराज, अब तो यह झोंपड़ी तुम्हारी हो गई है। मैं उसे लेने नहीं आई हूँ। महाराज क्षमा करे तो एक विनती है। जमींदार साहब के सर हिलाने पर उसने कहा, "जब से यह झोंपड़ी छूटी है तब से मेरी पोती ने खाना–पीना छोड़ दिया है। मैनें उसे बहुत समझाया पर वह एक नहीं मानती है। वह कहा करती है कि मुझे अपने घर ले चलो, वहीं रोटी खाऊँगी। अब मैंने सोचा है कि इस झोंपड़ी में से एक टोकड़ी भर मिट्टी लेकर उसी का चूल्हा बनाकर रोटी पकाऊंगी। कहने से भरोसा है कि वह रोटी खाने लगेगी। महाराज, कृपा करके आज्ञा दीजिये तो इस टोकरी में मिट्टी ले जाऊ।' श्रीमान ने आज्ञा दे दी।

विधवा झोंपड़ी के भीतर गई। वहाँ जाते ही उसे पुरानी बातें याद आने लगी और उसके आँखों से आँसू की धारा बहने लगा। अपने आतंरिक दुःख को किसी तरह संभालकर टोकरी में मिट्टी भर ली। टोकरी बहुत भारी हो गई थी। जिसे वह उठा नहीं पा रही थी। बुढ़िया श्रीमान से हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी। ''महाराज, कृपा करके इस टोकरी को हाथ लगाइए जिससे कि मैं अपने सिर पर धर लूँ' जमींदार इच्छा के विरुद्ध टोकरी उठाने

लगता है। पर टोकरी हाथ भर भी ऊपर नहीं उठती है। यह देखकर अनाथ विधवा कहती है, ''महाराज नाराज न हो आपसे तो एक टोकरी मिट्टी नहीं उठाई जाती है। और इस झोंपड़ी में तो हजारों टोकरियाँ मिट्टी पड़ी हैं। उसका भार आप जन्म भर कैसे उठा सकेंगे ? आप ही इस पर विचार कीजिएगा।" अनाथ विधवा का यह कथन बहुत सहज है पर तत्कालीन समय में वह जमींदार की वृति के खिलाफ विद्रोह ही करती है।

'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का कथानक बहुत सरल और सहज है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने यथार्थ और आदर्श को बड़े ही सहजता से पाठकों के सामने रखा है। कहानी में अनाथ विधवा द्वारा सामाजिक संवेदना को वाणी भी दी गई है। मनुष्य को अपनी जरूरतों से अधिक लालसा होने लगती है, जिसके फलस्वरूप वह अपने पथ से भ्रष्ट हो जाता है। अतः लेखक ने बड़ी ही कुशलता से इस छोटे से कथानक को प्रभावी बना दिया है। यही मजबूत पक्ष ने इस कहानी को हिन्दी के आरंभिक कहानियों में स्थान दिया है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. पं. माधव राव स्प्रे का जन्म कहां हुआ था?
2. 'छत्तीसगढ़ मित्र' मासिक पत्रिका का संपादन किसने किया?

12.4 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का सार

"एक टोकरी भर मिट्टी' पं. माधव राव सप्रे द्वारा रचित एक मौलिक कहानी है। यह कहानी वर्ग भेद पर आधारित है। सम्पन्न वर्ग के लोग हमेशा से गरीबों और अनाथों का शोषण करते रहे हैं। यह आज के यथार्थ से जड़ी हुई कहानी है। इस कहानी में अहंकार और यथार्थ का चित्रण जमींदार के रूप में किया गया है। कहानी के प्रमुख पात्र जमींदार अपने महल को बढ़ाने के लिए एक अनाथ विधता की झोंपड़ी पर कब्जा करता है, परंतु अनाथ विधवा का मार्मिक कथन– "महाराज नाराज न हों, आपसे एक टोकरी – भर मिट्टी नहीं उठाई जाती और इस झोंपड़ी में तो हज़ारों टोकरियाँ मिट्टी पड़ी है। उसका भार आप जन्म – भर क्योंकर उठा सकेंगे ? आप ही बात ही इस बात पर विचार कीजिए। जमींदार की आँखें खोल देता है और यह अपने कर्म पर पश्चाताप करता हुआ विधवा की झोंपड़ी वापस कर देता है। इस कहानी का सार इस प्रकार है –

जमींदार के महल के पास एक बहुत गरीब अनाथ विधवा की झोंपड़ी थी। जमींदार साहब को अपने महल को झोंपड़ी तक बढ़ाने की इच्छा पैदा हुई। उसने विधवा से बहुत बार कहा कि वह अपनी झोंपड़ी वहाँ से हटा ले, परंतु वह काफी समय से वहाँ बसी हई थी। उसका प्रिय पति और एकमात्र पुत्र भो उसी झोंपड़ी में मर गए थे। उसकी पुत्रवधु भी पाँच वर्ष की एक कन्या को छोड़कर चल बसी थी। अब वह पोती उसके जीवन का एकमात्र सहारा थी। जब कभी भी उसे अपनी पहले की स्थिति याद हो आती थी तो वह दुख के मारे फूट–फुटकर रोने लग जाती थी। जब उसने अपने पड़ोसी जमींदार की बात सुनी, तब से वह मृत – सी हो गई थी। उस झोपड़ी से उसका इतना लगाव था कि वह यहाँ से जाना नहीं चाहती थी। जमींदार की इच्छा को सुनकर वह मृतक के समान हो गई थी, पर वह अपनी झोंपड़ी छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी। जमींदार के सभी प्रयास विफल हो गए। तब उसने अदालत का सहारा लिया और रिश्वत देकर वकीलों को अपने कब्जे में कर लिया। उसने झोंपडी पर अपना अधिकार करके विधवा को वहाँ से निकलवा दिया। वह पहले ही बेचारी अनाथ थी, अब उसकी झोंपड़ी भी जाती रही। झोंपड़ी टूटने के बाद वह बुढ़ियां अपनी पोती के साथ पड़ोस में जाकर रहने लगी।

एक दिन जमींदार मजदूरों को साथ लेकर झोंपड़ी के पास कुछ काम करवा रहा था। उसी समय वह अनाथ विधवा हाथ में एक खाली टोकरी लेकर वहाँ आ पहुँची। जमींदार ने उसे देखते ही नौकरों को वहां से हटाने के लिए कहा। परंतु वह गिड़ – गिड़ाकर बोली – "महाराज, अब तो यह झोंपड़ी तुम्हारी ही हो गई है।

में उसे लेने नहीं आई हूँ। महाराज क्षमा करें तो एक विनती है।' जमींदार साहब के सिर हिलाने पर उसने कहा, "जब से यह झोंपड़ी छूटी है, तब से मेरी पोती ने खाना – पीना छोड़ दिया है। मैंने उसे बहुत समझाया परंतु वह एक नहीं मानती। वह यही कहा करती है कि अपने पर बल वहीं रोटी खाऊँगी।'' इस प्रकार अपने माता–पिता का स्वर्गवास हो जाने तथा झोंपड़ी छूट जाने के कारण विधवा की पोती ने खाना छोड़ दिया। विधवा अपनी पोती को खाना खिलाने के लिए चुल्हा बनाने हेतु एक टोकरी मिट्टी ले जाना चाहती थी। उसे पूरा विश्वास था कि उसके ऐसा करने पर वह रोटी खाने लगेगी। इसलिए उसने जमींदार से कहा, "महाराज, कृपा करके आज्ञा दीजिए तो एक टोकरी में मिट्टी ले आऊँ।'

जमींदार के आज्ञा देने को पश्चात् बुढ़िया झोंपड़ी के अंदर गई। वहाँ आते ही उसे पुरानी बातें याद आने लगीं तथा उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। किसी तरह उसने अपने अंदर के दुःख को संभाला और टोकरी में मिट्टी भर ली। टोकरी बहुत भारी हो गई थी जिसे वह उठा नहीं पा रही थी। वह जमींदार से हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी, "महाराज, कृपा करके इस टोकरी को हाथ लगाइए जिससे कि मैं उसे अपने सिर पर धर लूं।' जमींदार पहले तो बहुत नाराज हुए, लेकिन उसके द्वारा बार–बार हाथ जोड़ने, पाँव पड़ने से उसके मन में कुछ दया की भावना पैदा हो गई थी जिसके कारण वह नौकर को न कहकर खुद टोकरी उठाने लगे। ज्योंही वे टोकरी को हाथ लगाकर उठाने लगे त्योंही उन्होंने देखा कि यह काम उनकी शक्ति से बाहर है। इस प्रकार जमींदार एक विधवा के आगे एक टोकरी मिट्टी को उठा नहीं पाया जिसके कारण उसे विधवा के सामने लज्जित हो पड़ा। जमींदार एक टोकरी मिट्टी को टस से मस न कर सके तो विधवा ने कहा, "महाराज, नाराज न हो, आपसे एक टोकरी भर मिट्टी नहीं उठाई जाती और इस झोंपड़ी में तो हजारों टोकरियाँ मिट्टी पड़ी है। उसका भार आप जन्म भर क्योंकर उठा सकेंगे? आप ही इस बात पर विचार कीज़िए।' अनाथ विधवा का यह कथन बहुत सहज हैं परंतु तत्कालीन समय में वह जमींदार की वृत्ति के खिलाफ विद्रोह ही करती है।

इस प्रकार 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का कथानक बहुत सरल और सहज है। इसके माध्यम से लेखक ने यथार्थ और आदर्श को बड़ी ही सहजता से पाठकों के सामने रखा है। कहानी में अनाथ विधवा द्वारा सामाजिक संवेदना को वाणी भी दी गई है। मनुष्य को अपनी जरूरतों से ज्यादा लालसा करने लगा है जिसके फलस्वरूप वह पथ से भ्रष्ट हो जाता है। अतः लेखक ने बड़ी ही कुशलता से इस छोटे से कथानक को प्रभावी बना दिया है। यही मजबूत पक्ष इस कहानी को हिन्दी की आरंभिक कहानियों में स्थान दिया है।

12.4.1 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी का उद्देश्य

हिन्दी की पहली कहानी पं. माधवराव सप्रे ने लिखी थी। 'एक टोकरी भर मिट्टी' नामक यह कहानी 'छत्तीसगढ़ मित्र' नाम की पत्रिका में अप्रैल, 1901 के अंक में प्रकाशित हुई थी। 'छत्तीसगढ़ मित्र प्रदेश की पहली पत्रिका थी जिसका प्रकाशन सन् 1900 में बिलासपुर जिले से शुरू हुआ था। इस कहानी को बहुत सारे आधुनिक समीक्षकों ने हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है। डॉ. गोपाल राय ने इस कहानी को "संवेदना के क्षण की अभिव्यक्ति की दृष्टि से हिंदी की पहली कहानी के रूप में मान्यता देते हुए इसकी भाषा को ठेठ देशी हिन्दी भाषा बताया है।

डॉ. सत्यकाम इसे प्रतीकात्मक कहानी मानते हैं – "ऊपरी तौर पर यह एक जमींदार के कहानी लगती है, किंतु असल में यह मातृभूमि से लगाव के प्रति कहानी है। यह एक टोकरी भर मिट्टी पूरे देश की मिट्टी बन गई।'

'एक टोकरी भर मिट्टी ' एक बहुत ही छोटी और कर्तव्य श्रेष्ठ कहानी है। यह आज के यथार्थ से जुड़ी हुई है। यह कहानी वर्गभेद पर आधारित है इसमें गरीब के शोषण का चित्रण है। इस कहानी में अहंकार और स्वार्थ का चित्रण जमींदार के रूप में किया गया है। एक गरीब बजुर्ग महिला द्वारा जमींदार का हृदय परिवर्तन

होता दिखाया गया है। इस कहानी के माध्यम से यह बताया है कि उच्च वर्ग के लोग जिनके पास धन बल की कोई कमी नहीं, वे निर्धन लोगों के जीने का हक तक छीन लेना चाहते हैं। अपनी शानो–शौकत के लिए वे किसी निर्धन के रहने का आवास तक छीनने में कोई संकोच नहीं करते। उन्हें केवल अपने ही सुख–साधनों की परवाह होती है। भले ही उसके लिए किसी निर्धन और असहाय का जीवन छिन्न–भिन्न क्यों न हो जाए। यह कहानी समाज के उच्च–निम्न वर्ग भेद वाली समस्या की ओर ध्यान केन्द्रित करती है। इस कहानी का मुख्य उद्देश्य सम्पन्न वर्ग के लोगों द्वारा निर्धनों और असहायों का शोषण किए जाने की ओर सबका ध्यान आकृष्ट कराना है।

"एक टोकरी भर मिट्टी' एक प्रभावी कहानी है जिसमें वृद्धा की निम्नलिखित मार्मिक उक्ति जमींदार की वृत्ति ही परिवर्तित कर देती है –

''महाराज, नाराज न हों, आपसे एक टोकरी भर मिट्टी नहीं उठाई जाती और इस झोंपड़ी में तो हजारों टोकरियाँ मिट्टी पड़ी है। उसका भार आप जन्म – भर क्योंकर उठा सकेंगे? आप ही इस बात पर विचार कीजिए।' एक गरीब विधवा अपनी पौत्री के साथ अपनी झोंपड़ी में रहती थी। यह झोंपड़ी उसकी पुश्तैनी झोंपड़ी थी। इसी झोंपड़ी में उसके पति, पुत्र, पुत्रवधू की मृत्यु भी हो गई थी। जमींदार को अपने महल पर बहुत घमंड था। यह झोंपड़ी उसकी यादों में समाई हुई थी। इसलिए वह झोंपड़ी से अलग नहीं होना चाहती थी। उसने अपने आलीशान महल के पास वद्धा की झोंपड़ी ऑखों में खटकती थी। इसलिए अदालत में उसने वकीलों को खिला – पिलाकर उसे झोंपड़ी से निकलवा दिया। इस कहानी में वकीलों पर भी कटाक्ष किया गया है।

वकीलों का यह कर्तव्य होता है कि जहाँ अन्याय हो रहा है वहाँ न्याय दिलाना लेकिन यहां वकीलों ने अन्याय का साथ दिया। हमारा कर्तव्य बनता है कि हम गरीबों और असहायों के प्रति दया की भावना रखे। उन्हें कभी भी अपनों से अलग की नजर से नहीं देखना चाहिए। उनके प्रति सहयोग की भावना रखनी चाहिए और उनकी भावनाओं एवं सम्मान का हमेशा ध्यान रखना चाहिए।

लेखक ने इस कहानी के माध्यम से यह बताया है कि इंसान का अहंकार उसे अन्याय तथा विद्वेष करने को प्रेरित करता है। इस हेतु वह छल, झूठ और षड्यत्र करने से भी नहीं चूकता, परंतु सत्य और ईमानदारी की एक चोट उसे हकीकत के धरातल पर ला पटकती है। परिणामस्वरूप उसका जमीर जाग जाता है। उसे सत्य की पहचान होती है। प्रस्तुत कहानी में एक जमींदार द्वारा एक असहाय और विधवा की झोंपड़ी को हथिया लेने के बाद की स्थिति का प्रभावपूर्ण चित्रांकन हुआ है। यह कहानी मानवीय सवेदनाओं से जुड़ी हुई है। विधवा के मार्मिक कथन से उसका हृदय परिवर्तन होना तथा विधवा की झोंपड़ी को जमींदार द्वारा लौटा देना यही इस कहानी का सारतत्व है।

'एक टोकरी भर मिट्टी कहानी में मानव मन की भावनाओं का सहज चित्रण हुआ है। विधवा बुढ़िया का अपनी झोंपड़ी से लगाव था। झोपड़ी खाली करने के पश्चात् उसकी पोती ने खाना – पीना छोड़ दिया था। अपनी पोती को खाना खिलाने के लिए तथा जमींदार के हृदय की भावनाओं को बदलने के लिए वह एक टोकरी मिट्टी ले जाना चाहती थी। जमींदार विधवा के आगे एक टोकरी मिट्टी को उठा नहीं पाया जिसके कारण उसे विधवा के सामने लज्जित होना पड़ा। फिर बुढ़िया के मर्म वचन सुनकर जमींदार की आंखें खुल गई। उन्हें अपने किए हुए पर पछतावा हुआ और बुढ़िया से क्षमा मांगते हुए उसे उसकी झोंपड़ी लोटा दी।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी किस पर आधारित है?
2. गरीब अनाथ विधता की झोपड़ी कौन हटाना चाहता था?

12.5 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि पंड़ित माधवराव स्प्रे हिन्दी के साहित्यकार एवं पत्रकार थे। वे हिन्दी के प्रथम कहानी लेखक के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने राष्ट्रीय कार्य के लिए अनेक प्रतिभाओं को परख कर उनका उन्नयन किया। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी उनकी अग्रणी भमिका थी। प्रखर संपादक के रूप में लोक प्रहरी व सुधी साहित्यकार के रूप में उनकी भूमिका लोक शिक्षक की है। कोशकार और अनुवादक के रूप में उन्होंने हिन्दी भाषा को समृद्ध किया।

12.6 कठिन शब्दावली

असाधारण – असामान्य

स्वर्गवास – मरण, जीवन का अंत

12.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. पथरिया गांव में
2. पं. माधवराव स्प्रे

अभ्यास प्रश्न–2

1. वर्ग भेद पर
2. जमींदार

12.8 संदर्भित पुस्तकें

1. माधवराव स्प्रे, 'एक टोकरी भर मिट्टी, निर्मल प्रकाशन, दिल्ली।
2. रामदरश मिश्र, हिन्दी कहानी अतरंग पहचान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

12.9 सात्रिक प्रश्न

1. माधवराव स्प्रे की कहानी कला पर प्रकाश डालिए।
2. माधवराव स्प्रे, की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी, का सार अपने शब्दों में लिखिए।

*****

इकाई—13
प्रेमचंद : जीवन और साहित्य

संरचना

13.1 भूमिका

13.2 उद्देश्य

13.3 प्रेमचंद : जीवन और साहित्य

13.3.1 जीवन परिचय

13.3.2 साहित्यिक परिचय

स्वयं आकलन प्रश्न—1

13.4 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कहानी का उद्देश्य

13.4.1 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कहानी का सार

13.5 सारांश

13.6 कठिन शब्दावली

13.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

13.8 संदर्भित पुस्तकें

13.9 सात्रिक प्रश्न

13.1 भूमिका

इकाई बारह में हमने माधवराव स्प्रे के जीवन परिचय एवं उनकी कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' के सार एवं उद्देश्य का अध्ययन किया। इकाई तेरह में हम प्रेमचंद के जीवन परिचय और साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कहानी के सार एवं उद्देश्य का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

13.2 उद्देश्य

इकाई तेरह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. प्रेमचंद का जीवन परिचय क्या है ?
2. प्रेमचंद का साहित्यिक परिचय क्या है ?
3. 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कहानी का सार क्या है?
4. 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कहानी का उद्देश्य क्या है?

13.3 प्रेमचन्द : जीवन और साहित्य

13.3.1 जीवन परिचय

मुंशी प्रेमचंद का जन्म सन् 1880 में वाराणसी जिले के लमही ग्राम में हुआ था। उनका बचपन का नाम धनपत राय था, किन्तु वे अपनी कहानियाँ उर्दू में 'नवाबराय' के नाम से लिखते थे और हिन्दी में मुंशी प्रेमचंद के नाम से। उनके दादाजी गुर सहाय राय पटवारी थे और पिता अजायब राय डाक विभाग में पोस्ट मास्टर थे। बचपन से ही उनके जीवन बहुत ही, संघर्षों से गुजरा था।

गरीब परिवार में जन्म लेने तथा 7 बर्ष की अल्पाय में ही मुंशी प्रेमचंद की माता आनंदी देवी की मृत्य एवं 9 वर्ष की उम्र में सन् 1897 में उनके पिताजी का निधन हो जाने के कारण, उनका बचपन अत्यधिक कष्टमय रहा। किन्तु जिस साहस और परिश्रम से उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा, यह साधनहीन एवं कुशाग्रबुद्धि और परिश्रमी छात्रों के लिए प्रेरणाप्रद है।

प्रेमचंद का पहला विवाह पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में उनके पिताजी ने करा दिया। उस समय मुंशी प्रेमचंद कक्षा 9 के छात्र थे। पहली पत्नी को छोड़ने के बाद उन्होंने दूसरा विवाह 1906 में शिवारानी देवी से किया जो एक महान् साहित्यकार थीं। प्रेमचंद की मृत्यु के बाद उन्होंने "प्रेमचंद घर में" नाम से एक प्रसिद्ध पुस्तक लिखीं।

प्रेमचंद की प्रारम्भिक शिक्षा सात वर्ष की उम्र में एक स्थानीय मदरसे से शुरू हुई। जहां उन्होंने हिन्दी के साथ उर्दू और अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। 1898 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद, प्रारम्भ में वे कुछ वर्षो तक स्कूल में अध्यापक रहे। नौकरी के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी। 1910 में अंग्रेजी, दर्शन, फारसी और इतिहास लेकर इण्टर किया और 1919 में अंग्रेजी, फारसी और इतिहास लेकर बीए. किया। बी ए. पास करने के बाद वे शिक्षा विभाग के सब – डिप्टी इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए।

1921 में असहयोग आन्दोलन से सहानुभूति रखने के कारण मुंशी प्रेमचंद ने सरकारी नौकरी छोड़ दी और आजीवका साहित्य – सेवा करते रहे। उन्होंने कई पत्रिकाओं का सम्पादन किया। इसको बाद उन्होंने अपना प्रेस खोला तथा 'हंस' नामक पत्रिका निकाली। लम्बी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 में उनका देहावसान हो गया।

13.3.2 साहित्यिक परिचय

मुंशी प्रेमचंद जी ने लगभग एक दर्जन उपन्यासों एवं तीन सौ कहानियों की रचना की उन्होंने 'माधुरी एवं 'मर्यादा' नामक पत्रिकाओं का सम्पादन किया तथा 'हंस' एवं 'जागरण' नामक पत्र भी निकाले। मुंशी प्रेमचंद उर्दू रचनाओं में 'नवाब राय' के नाम से लिखते थे। उनकी रचनाएँ आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं, जिनमें सामान्य जीवन की वास्तविकताओं का सम्यक् चित्रण किया गया है। समाज सुधार एवं रष्ट्रीयता उनकी रचनाओं के प्रमुख विषय से हैं।

प्रेमचंद जी ने हिन्दी कथा–साहित्य में युगान्तर उपस्थित किया। उनका साहित्य समाज –सुधार और राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है। वह अपने समय की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का पूरा प्रतिनिधित्व करता है। उसमें किसानों की दशा, सामाजिक बन्धनों में तड़पती नारियों की वेदना और वर्णव्यवस्था की कठोरता के भीतर संत्रस हरिजनों की पीड़ा का मार्मिक चित्रण मिलता है।

प्रेमचंद की सहानभूति भारत की दलित जनता, शोषित किसानों, मजदूरों और उपेक्षिता नारियों के प्रति रही है। सामयिकता के साथ ही उनके साहित्य में ऐसे तत्त्व भी विद्यमान हैं, जो उसे शाश्वत् और स्थायी बनाते हैं। मंशी प्रेमचंद जी अपने युग के उन सिद्ध कलाकारों में थे, जिन्होंने हिन्दी को नवीन युग की आशा – आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनाया।

प्रेमचंद की रचनाएँ

मुंशी प्रेमचंद की रचनाओं में प्रसिद्ध उपन्यास 18 से अधिक हैं, से अधिक हैं, जिनमें 'सेवासदन, निर्मला, रंगभुमि, कर्मभूमि, 'गोदान' आदि प्रमुख हैं। उनकी कहानियों का विशाल संग्रह आठ भागों में 'मानसरोवर' नाम से प्रकाशित है। जिससे लगभग तीन सौ कहानियों संकलित हैं। 'कर्बला', 'संग्राम' और 'प्रेम की वेदी' उनके नाटक हैं। साहित्यिक निबंध कुछ विचार' नाम से प्रकाशित हैं। उनकी कहानियों का अनुवाद संसार की अनेक भाषाओं में हआ है। 'गोदान' हिन्दी का एक श्रेष्ठ उपन्यास है।

भाषा

मुंशी प्रेमचंद जी उर्दू से हिन्दी में आए थे, अतः उनकी भाषा में उर्दू की चुस्त लोकोक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग की प्रचुरता मिलती है।

प्रेमचंद जी की भाषा सहज, सरल, व्यावहारिक, प्रवाहपूर्ण, मुहावरेदार एवं प्रभावशाली है तथा उसमें अद्भुत व्यंजना शक्ति भी विद्यमान है। मुंशी प्रेमचंद जी की भाषा पात्रों के अनुसार परिवर्तित हो जाती हैं।

प्रेमचंद की भाषा में सादगी एवं आलंकारिकता का समन्वय विद्यमान है। 'बड़े भाई साहब', 'नमक का दारोगा', 'पूस की रात' आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियों है।

शैली

मुंशी प्रेमचंद जी की शैली आकर्षक है। इसमें मार्मिकता है। उनकी रचनाओं में चार प्रकार की शैलियाँ उपलब्ध होते है। वे इस प्रकार हैं — वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, भावात्मक तथा विवेचनात्मक। चित्रात्मकता मुंशी प्रेमचंद की रचनाओं की विशेषता है।

'मन्त्र' मुंशी प्रेमचंद की एक मर्मस्पर्शी कहानी है। इसमें विरोधी घटनाओं, परिस्थितियों और भावनाओं का चित्रण करके मुंशी प्रेमचंद जी ने कर्तव्य–बोध का अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न किया है। पाठक मंत्र — मुग्ध होकर पूरी कहानी को पा जाता है। भगत की अन्तर्द्वन्द्वर्ण मनोदशा, वेदना एवं कर्तव्यनिष्ठा पाठकों के मर्म को लेती है।

प्रेमचंद के उपन्यास

मुंशी प्रेमचंद के 18 उपन्यासः गोदान, सेवा सदन, प्रेमाश्रय, निर्मला, रंगभूमि, कर्मभूमि, कालाकल्प, गबन, प्रेमा, रूठी रानी (प्रेमचंद का एक मात्र ऐतिहासिक उपन्यास), प्रतिज्ञा (अपने उर्दू उपन्यास 'हमखुशी एक हमसुबाब' के हिन्दी रूपान्तर 'प्रेमा अर्थात् 'दो सखियों का विवाह' को परिष्कृत तथा नये रूप में प्रकाशित कराया), वरदान (अपने उन उपन्यास 'जलवए ईसार' का हिन्दी रूपान्तर), मंगल सूत्र (प्रेमचंद का अतिम और अपूर्ण उपन्यास)।

प्रेमचंद की कहानी संग्रह

इनकी पहली कहानी 'ममता' है। प्रेमचंद' नाम से उनकी पहली कहानी बड़े घर की बेटी जमाना पत्रिका के दिसम्बर 1910 के अंक में प्रकाशित हुई। मुंशी प्रेमचंद ने 300 से अधिक कहानियाँ मानसरोवर नामक पुस्तक द्वारा आठ भागों में प्रकाशित हुई हैं जिनमें– नवविधि, प्रेम पूर्णिमा, लाल फीता, नमक का दारोगा, प्रेम पचीसी, प्रेम प्रसुन, प्रेम द्वादशं, प्रेम तीर्थ, प्रेम प्रतिज्ञा, सप्त सुमन, प्रेम पंचगी, प्रेरणा, समरयात्रा, पंच प्रसून, नव जीवन, बड़े घर की बेटी, सप्त सरोज आदि प्रमुख हैं।

प्रतिनिधि कहानियां

प्रेमचंद की प्रतिनिधि कहानियों में — पंच परमेश्वर, सज्जनता का दंड, ईश्वरी न्याय, दुर्गा का मंदिर, आत्माराम, बूढ़ा काकी, सवा सेर गेहूं, शतरंज के खिलाड़ी, माता का हृदय, सुजान भगत, इस्तीफा, अलग्योझा, पूस की रात, बड़े भाई साहब, होली का उपहार, ठाकुर का कआं, बेटों वाली विधवा, ईदगाह, प्रेम प्रमोद, नशा, दफन आदि प्रमुख हैं।

कहानियों की सूचीः मुंशी प्रेमचंद की मानसरोवर के आठ भागों में प्रकाशित होने वाली 300 से अधिक कहानियों से 118 के नाम निम्न हैं —

1. अनाथ लड़की	2. अन्धेर	3. अपनी करनी
4. अमृत	5. अलग्योझा	6. आखिरी तोहफा
7. आखिरी मंजिल	8. आत्म– संगीत	9. आत्माराम
10. आल्हा	11. इज्जत का खून	12. इस्तीफा
13. ईदगाह	14. ईश्वरीय न्याय	15. उद्धार
16. एक आँच की कसर	17. एक्ट्रेस	18. कप्तान साहब
19. कफन	20. कर्मों का फल	21. कवच
22. कातिल	23 कोई दुख न हो तो बकरी खरीद लो	24.कौशल
25. क्रिकेट मैच	26. खुदी	27. गुल्ली डण्डा

28. गृह – दाह	29. गैरत की कटार	30. घमण्ड का पुतला
31. जुलूस	32. जेल	33. ज्योति
34. झाँकी	35. ठाकुर का कुआँ	36. तांगेवाले की बड़
37. तिरसूल	38. तेंतर	39. त्रिया– चरित्र
40. दण्ड	41. दिल की रानी	42. दुर्गा का मन्दिर
43. दूध का दाम	44. दूसरी शादी	45. देवी
46. देवी – एक और कहानी	47. दौ बैलों की कथा	48. दो सखियाँ
49. धिक्कार	50. धिक्कार– एक और कहानी	51. नबी का नीति–निर्वाह
52. नमक का दोगा	53. नरक का मार्ग	54. नशा
55. नसीहतों का दफ्तर	56. नाग–पूजा	57. नादान दोस्त
58. निर्वासन	59. नेउर	60. नेकी
61. नैराश्य	62. नैराश्य लीला	63. पंच परमेश्वर
64. पत्नी से पति	65. परीक्षा	66. पर्वत–यात्रा
67. पुत्र–प्रेम	68. पूस की रात	69. पैपुजी
70. प्रतिशोध	71. प्रायश्चित	72. प्रेम–सूत्र
73. बड़े घर की बेटी	74. बड़े बाबू	75. बड़े भाई साहब
76. बन्द दरवाजा	77. बाँका जमींदार	78. बेटों वाली विधवा
79. बैंक का दिवाला	80. बोहनी	81. मनावन
82. मन्त्र	83. मन्दिर और मस्जिद	84. ममता
85. माँ	86. माता का ह्रदय	87. मिलाप
88. मुक्तिधन	89. मुबारक बीमारी	90. मैकू
91. मोटेराम जी शास्त्री	92. राजहठ	93. राष्ट्र का सेवक
94. स्वर्ग की देवी	95. लैला	96. वफा का खंजर
97. वासना की कड़ियां	98. विजय	99. विश्वास
100. शंखनाद	101. शराब की दुकान	102. शादी की वजह
103. शान्ति	104. शान्ति	105. शूद्र
106. सभ्यता का रहस्य	107. समर यात्रा	108. समस्या
109. सवा सेर गेहूँ नमक का दरोगा	110 सिर्फ एक आवाज	111. सैलानी बन्दर
112. सोहाग का शव	113. सौत	114. स्त्री और पुरूष
115. स्वर्ग की देवी	116. स्वांग	117. स्वामिनी
118. होली की छुट्टी		

निबंध संग्रह

मुंशी प्रेमचंद के निबंधः पुराना जमाना नया जमाना, स्वराज के फायदे, कहानी कला (तीन भागों में), कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार, हिन्दी –उर्दू की एकता, महाजनी सभ्यता, उपन्यास, जीवन में साहित्य का स्थान आदि प्रमुख हैं।

प्रेमचंद के अनुवाद

मुंशी प्रेमचंद ने 'टॉलस्टॉय की कहानियाँ' (1923), गाल्सवर्दी के तीन नाटकों का हड़ताल (1930), चाँदी की डिबिया (1931) और न्याय (1931) नाम से अनुवाद किया। उनका रतननाथ सरशार के उर्दू उपन्यास फसान – ए – आजाद का हिन्दी अनुवाद आजाद कथा बहुत मशहूर हुआ।

प्रेमचंद के नाटक

मुंशी प्रेमचंद ने तीन नाटकों की रचना कीः संग्राम (1923) कर्बला (1924) और प्रेम की वेदी (1933)। इन रचनाओं के अतिरिक्त प्रेमचंद ने बाल साहित्य और अपने 'कुछ विचार' भी रचनाओं के के माध्यम से व्यक्त किये हैः

- बाल साहित्य के अंतर्गत रामकथा, कुत्ते की कहानी, दुर्गादास;
- कुछ विचार में – प्रेमचंद विविध प्रसंग, प्रेमचंद के विचार (तीन भागों में) आते हैं।

संपादन

मुंशी प्रेमचन्द ने 'माधुरी' एवं 'मर्यादा' नामक पत्रिकाओं का सम्पादन किया। तथा अपना प्रेस खोलकर "जागरण'' नामक समाचार पत्र तथा 'हंस' नामक मासिक साहित्यिक पत्रिका भी निकाली। उनके प्रेस का नाम 'सरस्वती' था। वे उर्दू की पत्रिका 'जमाना' में नवाब राय के नाम से लिखते थे।

विचारधारा

अपनी विचारधारा को प्रेमचंद ने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहा है। प्रेमचंद साहित्य की वैचारिक यात्रा आदर्श से यथार्थ की ओर उन्मुख है। सेवासदन के दौर में वे यथार्थवादी समस्याओं को चित्रित तो कर रहे थे लेकिन उसका एक आदर्श समाधान भी निकाल रहे थे। 1936 तक आते– आते महाजनी सभ्यता, गोदान और कफन जैसी रचनाएँ आधिक यथार्थपरक हो गई, किंतु उसमें समाधान नहीं सुझाया गया।

प्रेमचंद स्वाधीनता संग्राम के सबसे बड़े कथाकार हैं। इस अर्थ में उन्हें राष्ट्रवादी भी कहा जा सकता है। प्रेमचंद मानवतावादी भी थे और मार्क्सवादी भी। प्रगतिवादी विचारधारा उन्हें प्रेमाश्रम के दौर से ही आकर्षित कर रही थी।

1936 में मुंशी प्रेमचन्द ने प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन को सभापति के रूप में संबोधन किया था। उनका यही भाषण प्रगतिशील आंदोलन के घोषणा पत्र का आधार बना। इस अर्थ में प्रेमचंद निश्चत रूप से हिंदी के पहले प्रगतिशील लेखक कहे जा सकते हैं।

विरासत

प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाने में कई रचनाकारों ने भूमिका अदा की है। उनके नामों का उल्लेख करते हुए रामविलास शर्मा "प्रेमचंद और उनका युग' में लिखते हैं कि– प्रेमचंद की परंपरा को 'अलका', 'कुल्ली भाट', बिल्लेसुर बकरिहा' के निराला ने अपनाया। उसे 'चकल्लस' और 'क्या – से – क्या' आदि कहानियों के लेखक पढ़ीस ने अपनाया। उस परंपरा की झलक नरेंद्र शर्मा, अमृतलाल नागर आदि की कहानियों और रेखाचित्रों में मिलती है।

स्मृतियाँ

प्रेमचंद की स्मृति में उनके गाँव लमही में उनके एक प्रतिमा भी स्थापित की गई है। भारतीय डाक विभाग ने 30 जुलाई 1980 को उनकी जन्मशती के अवसर पर 30 पैसे मूल्य का एक डाक टिकट जारी किया गया। गोरखपुर के जिस स्कूल में वे शिक्षक थे, वहाँ प्रेमचंद साहित्य संस्थान की स्थापना की गई है। प्रेमचंद की 125वीं सालगिरह पर सरकार की ओर से घोषणा की गई कि वाराणसी से लग इस गाँव में प्रेमचंद के नाम पर एक स्मारक तथा शोध एवं अध्ययन संस्थान बनाया जाएगा।

हिन्दी साहित्य के सम्राट लोकप्रिय साहित्यकार प्रेमचन्द का जन्म सन 1880 ई० में बनारस जिले के लमही ग्राम में हुआ था। उनका वास्तविक नाम धनपतराय था। प्रेमचंद के पिता अजायब लाल डाकखाने में कलर्क थे। बचपन से ही आप अपने माता – पिता दोनों का खों बैठे। प्रेमचन्द की प्रारंभिक शिक्षा वाराणसी में हुई। दसवां दर्जा पास कर अठारह रुपये मासिक पर स्कूल में अध्यापक हो गये। प्राईवेट परीक्षा देकर बी.ए. पास किया। अपनी प्रतिभा और परिश्रम के बल पर 15 वर्ष में वे डिप्टी इन्स्पैक्टर ऑफ स्कूल के पद पर पहुंच गए। पन्द्रह वर्ष की आयु में इनका विवाह एक कुरुप लड़की से कर दिया गया। जिससे प्रेमचन्द्र का निर्वाह न हो सका। उन्होंने दूसरा विवाह एक बाल विधवा शिवरानी देवी से कर लिया। सन् 1896 ई० में इनके पिता का देहांत हो गया और परिवार का सारा बोझ इन पर आ गया। प्रेमचन्द को बचपन से ही कहानियां और उपन्यास पढ़ने का शौक था। इनकी पहली कहानी 'संसार का सबसे अनमोल रत्न' उर्दू के 'जमाना' में छपी। हिन्दी में पहली कहानी 'पंच परमेश्वर' सन् 1913 में छपी। उनकी कहानियों का संग्रह 'सोजे पतन' अंग्रेजी सरकार ने जब्त भी किया था। प्रारंभिक रचनाओं में देश प्रेम का पुट होने के कारण अधिकारी वर्ग के कोप भोजन भी हुए। असहयोग आन्दोलन में सरकार नौकरी छोड़कर सम्पूर्णतया साहित्य सेवा में रत हो गए। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, अनुवाद लेखन के अतिरिक्त आपने सम्पादन और प्रकाशन भी किया। प्रेमचन्द ने लगभग 300 कहानियां लिखीं जो आठ भागों में 'मानसरोवर' शीर्षक संघ में संकलित है। बलिदान, आत्माराम, पूस की रात, बूढ़ी काकी, सवा सेर गेहूं ईदगाह, कफन, पंच परमेश्वर, बूढ़े भाई साहब, तावान, अलग्यो आदि उनकी कुछ प्रसिद्ध कहानियां है। उन्होंने कई दर्ज़न भर उपन्यास लिखे हैं। जिनमें प्रसिद्ध हैं – सेवा सदन, प्रेमाश्रम, निर्मला, रंगभूमि, कर्मभूमि और गोदान इनके कर्बला, संग्राम, प्रेम की वेदी, हडताल आदि प्रमुख नाटक हैं। इनके द्वारा रचित कुछ विचार, विविध प्रसंग (तीन भाग) सामाजिक राजनीतिक निबन्ध संग्रह हैं। यद्यपि प्रेमचन्द के साथ – ही – साथ कहानी क्षेत्र में 'प्रसाद', 'गुलेरी' और कशिक भी आये फिर भी प्रेमचन्द को ही आधुनिक कथा – साहित्य का आदि पुरुष कहा जाता है। कुछ समय प्रेमचन्द बम्बई में फिल्म कम्पनियों से भी सम्बद्ध रहें। 19 ई० में जलोदर की भयंकर बीमारी से बनारस में ही आपका स्वर्गवास हुआ। प्रेमचन्द की भाषा बोलचाल के सबसे निकट थी, दृष्टिकोणः लोकपरक था और सामाजिक चेतना उनमें सबसे अधिक जागरुक थी। उनकी रचनाओं में हमें आदर्शोन्मुख यथार्थ शैली के दर्शन होते हैं।

आधुनिक काल में गद्य विधाओं के विकास के अन्तर्गत कहानी विधा को महत्वपूर्ण योगदान मिला। और इसे गति देने वाला महत्वपूर्ण कहानीकार प्रेमचन्द प्रतिनिधि कथाकार के रूप में जाने जाते हैं। सर्वप्रथम उर्दू में लिखने वाले प्रेमचन्द ने बाद में हिन्दी में लिखना आरम्भ किया। आजीवन बहुत सी कहानियां लिखीं जिनमें यथार्थ जीवन की समस्याएं और मनोवैज्ञानिक सत्य की चर्चा है। प्रेमचन्द की अधिकतर कहानियां मानसरोवर संग्रह के आठ भागों में संकलित एवं प्रकाशित हैं। प्रेमचन्द की कहानियों में विभिन्न विषय, हैं, जिसमें व्यक्ति, परिवार, समाज, इतिहास सभी का योगदान है। ऐतिहासिक भाव क्षेत्र सीमित रूप में दिखाई देता है लेकिन राष्ट्रीय भावधारा पर लिखी कहानियां कलात्मक है। प्रेमचन्द ने साहित्य को मनोरंजक न मानकर सामाजिक परिवर्तन शस्त्र के रूप में प्रयोग किया जिसमें शहर का मध्यम वर्ग और ग्रामीण समाज वर्ग की चर्चा अधिक हुई। विशेषतः सहानुभूति ग्रामीण समाज के चित्रण पर की। रीति रिवाज, जाति, धर्म और परम्परा का यथार्थ चित्रण पर प्रेमचंद की कहानियों में पाया जाता है। प्रेमचंद की कहानियों की भाव भूमि व्यापक है। जिससे सम्बन्धित सभी विषयों पर यथार्थवादी चित्रण किया है। शिल्प की दृष्टि से भी कहानियां रोचक एवं प्रभावशाली हैं। कुल मिलाकर कहानीकार, आदर्श, यथार्थ का सुन्दर समन्वय शैली की चित्रमयता, भाषा पर साधारण अधिकार, चरित्र चित्रण कौशल के साथ – साथ विशालता हृदयता तथा मानव का प्रेम, प्रेम को प्रभावशाली कहानीकार सिद्ध करता है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. प्रेमचंद का मूल नाम क्या था?
2. 'सेवा सदन' किसका उपन्यास है?

13.4 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कहानी का सार

"दुनिया का अनमोल रत्न' प्रेमचंद की पहली कहानी मानी जाती है। हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, बांग्ला, गुजराती और मराठी के जानकार मुंशी दयानारायण निगम कानफर से प्रकाशित होने वाली उर्दू पत्रिका 'जमाना' के संपादक थे। उन्होंने ही मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' को सन् 1907 में प्रकाशित किया था। प्रेमचंद पहले 'नवाब राय' के नाम से ही कहानियाँ लिखते थे। आगे चलकर नवाबराय को 'प्रेमचंद नाम मुंशी दयानारायण निगम ने ही दिया था। यह कहानी 'जमाना' पत्रिका के बाद उनके उर्दू कहानी संग्रह 'सोजे वतन' में भी प्रकाशित हुई। इस 'सोजे वतन' कहानी संग्रह में पाँच कहानियाँ हैं, जो निम्नलिखित है– 'दनिया का सबसे अनमोल रतन', 'शेख मखमूर', "यहीं मेरा वतन है', 'शोक का फरस्कार' तथा 'सांसारिक प्रेम'। इस कहानी संग्रह में सारी कहानियाँ उर्दू में प्रकाशित थीं। इस कहानी संग्रह के कारण प्रेमचंद को अंग्रेजी सरकार का कोप भाजन बनना पड़ा।

इसके संदर्भ में मुंशी प्रेमचंद ने बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रश्नों के उत्तर देने के क्रम में लिख हैं–"मेंने 1907 में गल्प लिखना शुरू किया। सबसे पहले 1908 में मेरा "सोजे वतन'' जो पांच कहानियों का संग्रह है, 'जमाना' प्रेस से निकला था, पर उसे हमीरपर के कलेक्टर ने मुझसे लेकर जलवा डाला था। उनके ख्याल में वह विद्रोहात्मक था, हालांकि तब से उसका अनुवाद कई संग्रहों और पत्रिकाओं में निकल चुका है।''

'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' कहानी वर्णनात्मक कथा शैली में लिखी गई, उर्दू शब्दावली की बहुलता वाली कहानी है। इस कहानी का सार इस प्रकार है – 'दुनिया का अनमोल रतन' कहानी में मुख्यतः दो ही पात्र हैं –1 दिलफिगार (घायल दिल वाला/दुखी) और 2. दिलफरेब (दिल को फरेब देने वाली/सुंदर नायिका)। कहानी के शुरुआत में प्रेमचंद जी कहते हैं कि दिलफिगार एक कंटीले पेड़ के नीचे दामन चाक किए बैठा हुआ खून के आँसू बहा रहा था। वह सौंदर्य की देवी यानी मलका दिलफरेब का सच्चा तथा जान तक देने वाला प्रेमी था। वह उन प्रेमियों में नहीं था, जो इत्र – फुलेल में बसकर और शानदार कपड़ों से सजकर एक आशिक के वेश में माशूकियत का दम भरते हैं, बल्कि उन सीधे – सादे और भोले – भाले फिदाइयों में जो जंगल व पहाड़ों से सिर टकराते हैं तथा फरियाद मचाते फिरते हैं। दिलफरेब ने दिलफिगार से कहा था– "अगर तू मेरा सच्चा प्रेमी है, तो जा और दुनिया की सबसे अनमोल चीज लेकर पेरे दरबार में आ तब मैं तुझे अपनी गुलामी में कबूल करूंगी अगर तुझे वह चीज न मिले तो खबरदार इधर रूख न करना, वर्ना सूली पर खिंचवा दूंगी।'' दिलफरेब ने ज्यों ही यह फैसला सुनाया, उसके चोबदारों ने गरीब। दिलफिगार को धक्के देकर बाहर निकाल दिया और आफत का मारा आज तीन दिन से उसी कटीले पेड़ के नीचे उसी भयानक मैदान में बैठा हआ सोच रहा है कि क्या करू? वह कारू का खजाना है, आवे हयात है, खुसरो का ताज है, जाये – जम है, तख्ते ताउस है परवेज की दौलत है? नहीं यह चीज हरगिज नहीं हो सकती। दुनिया में जरूर इनसे भी महंगी, इनसे भी अनमोल चीजें हैं मगर वह क्या है। कैसे मिलेगी? वह खुदा को याद करते हुए कहता है कि या खुदा, मेरी मुश्किल कैसे आसान होगी ?

अब प्रस्तुत कहानी में कहानीकार प्रेमचंद दिलफिगार द्वारा दुनिया का सबसे अनमोल रत्न खोजकर लाने को तीन अलग–अलग घटनाओं की चर्चा करते हैं। इन तीनों ही घटनाओं में वह तीन अनमोल रतन अलग – अलग लेकर आता है।

दिलफिगार द्वारा खोजे गए अनमोल रत्न की पहली घटना दिलफिगार कई दिनों से सोच रहा है कि आखिर यह अनमोल रत्न क्या है और वह कहां मिलेगा। इसे प्राप्त करने के लिए वह भटक रहा है। भटकते –भटकते वह एक ऐसे स्थान पर पहुँच जाता है जहां पर एक मैदान था तथा वहाँ हजारों आदमी गोल बांधे खड़े थे। वहाँ पर कुछ दढ़ियल काजी बैठकर कुछ बातें कर रहे थे और उनसे कुछ दूरी पर एक सूली खड़ी थी। फिर कुछ देर के पश्चात् दिलफिगार देखता है कि कई लोग नंगी तलवार लेकर एक कैदी को जिसके हाथ– पाँवों में जंजीरें थीं, पकडे चले आ रहे हैं। उस कैदी की सब बेड़ियां व हथकड़ियां उतारकर उसे सूली के तख्ते पर खड़ा कर दिया। मौत की फाँसी उसकी गर्दन में डाल दी गई और जल्लादों ने जैसे ही तरख्ता खींचने का फैसला किया तो वह अभागा मुजरिम काला चोर चिल्ला उठता है– ''खुदा के वास्ते मुझे एक पल के लिए फाँसी से उतार दो ताकि अपने दिल की आखिरी आरज़ू निकाल सकूं। उसकी इस प्रार्थना पर वहाँ पर मौजूद काजियों ने उसको एक अवसर दे दिया। फिर यह काला चोर जिसके आस – पास भारी भीड लगी हुई है उसी भीड में उपस्थित एक भोले – भाले लड़के के पास जाता है जो कि एक छड़ी पर सवार होकर अपने पैरों पर उछल –उछलकर फर्जी घोड़ा दौडा रहा था। वह लड़का इतना खुश था जैसे वह सचमुच हो वह किसी अरबी घोड़े पर सवार हो। यह लडका अभी तक पाप की गर्द व धूल से अछूता था। उसने उस बच्चे को गोदी में लिया और प्यार करने लगा। इस वक्त काले चार के दिल पर बीते हुए दिनों की याद का इतना प्रभाव हुआ के उसकी आँखों से जिन्होंने दम तोडती हई लाशों को तड़पते देखा और न ही झपकों, आँसू का एक कतरा टपक पड़ा। दिलफिगार ने जब आंसू का कतरा ट्पकते देखा तो उसने लपकर उस अनमोल मोती को अपने हाथ में ले लिया और वह सोचने लगा कि यह दुनिया की सबसे अनमोल चीज है। वह खुश होता हुआ कामयाबी की उम्मीद में अपनी माशूका दिलफरेब के शहर 'मीनोसवाद' को चलाद पहाड़ तथा दिया तय करते हुए मीनोसवाद में दिलफिगार आ पहुँचा और दिलफरेव की दहलीज पर जाकर प्रार्थना की। दिलफेरब ने तुरंत अपने सामने बुला भेजा। दिलफेरब ने आशा और भय की एक विचित्र मनःस्थिति में वह बूंद पेश की तथा सारी बातों को बता डाला। दिलफेरब ने उसकी पूरी कहानी बहुत ध्यान से सुनी और वह भेंट हाथ में लेकर कुछ देर तक गौर करने के बाद दिलफिगार से बोली, "दिलफिगार बेशक तूने बुनिया की एक बेशकीमती चीज ढूंढ निकाली, तेरी हिम्मत और तेरी सूझबूझ की दाद देती हूँ। मगर यह दुनिया की सबसे बेशकीमती चीज नहीं, इसलिए तू यहाँ से जा और फिर कोशिश कर शायद अब की तेरे हाथ वह मोती लगे और तेरी किस्मत में मेरी गुलामी लिखी हो। जैसा कि मैंने पहले ही बतला दिया था मैं तुझे फाँसी पर चढ़वा सकती हूँ मगर मैं तेरी जॉबखशी करती हूँ इसलिए कि तुझमें वह गुण मौजूद है, जो में अपने प्रेमी में देखना चाहती हूँ और मुझे यकीन है कि तू जरूर कभी – न– कभी कामयाब होगा।''

इस प्रकार कुछ देर तक दिलफिगार अपनी निष्ठुर प्रेमिका की इस कठोरता पर आँसू बहाता रहा तथा सोचना लगा कि मैं अब कहां जाऊँ। दिलफिगार इधर से उधर भटक रहा है और ऊपर बाले से फरियाद कर रहा है लेकिन अभी उसे कोई सफलता नहीं मिलती।

13.4.1 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कहानी का उद्देश्य

"दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कहानी प्रेमचंद की लिखी पहली लघु कथा है। यह कहानी वर्ष 1907 में उर्दू की पत्रिका 'जमाना' में छपी थी। वह उर्दू कहानी संग्रह 'सोने वतन' में जून, 1908 में संकलित और प्रकाशित हुई। इस कहानी संग्रह को ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। यह कहानी संग्रह 'नवाब राय' के नाम से लिया गया था। उन दिनों ये "धनपत राय' के नाम से सरकारी नौकरी करते थे। जब सरकार को इस बात का पता चला तो उन्होंने प्रेमचंद से पूछताछ की और फिर उन्हें चेतावनी दी गई। उसके बाद उन्होंने प्रेमचंद' नाम से लिखना आरंभ कर दिया। बड़े घर की बेटी' कहानी उनके इस नाम से लिखी पहली कहानी थी।

'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कहानी में एक देशभक्त के खून को दुनिया का सबसे अनमोल रत्न बताया गया है। इसका प्रमुख उद्देश्य कहानी के माध्यम से परतंत्र भारत देश के निवासियों में देशभकित को जगाना था। इस कहानी में एक ऐसे सच्चे प्रेमी का जिक़र है जो कि अपनी प्रेमिका को अपने रूप –रंग से नहीं बल्कि कछ भी गजरने के जज्बे से अपनी ओर आकृर्षित करता है। इस कहानी का मुल कहें तो एक प्रेमी जोकि अपनी प्रेमिका से बेशुमार मुहब्बत करता है और उसे यह जताने के लिए कुछ भी कर सकता है। इस कहानी में निम्नलिखित विषयों को उभारा गया है –

1. प्रेम – परीक्षा का चित्रण
2. प्रेम के लिए संघर्ष का चित्रण।
3. एक अलग ढंग से प्रेम के आदर्श रूप की झलक।
4. अनमोल रत्न के रूप में देशभक्ति का चित्रण।
5. तत्कालीन स्वत्रता आंदोलन को एक नई दिशा प्रदान करना।

प्रस्तुत कहानी में दो ही प्रमुख पात्र हैं दिलफिगार' और 'दिलफरेब'। दिलफिगार कहानी का प्रमुख पात्र अथवा नायक है जोकि दिलफरेब से बेपनाह प्रेम करता है। वह अपने प्रेम को सिद्ध करने है लिए कुछ भी करने को तैयार है। दिलफरेब एक बेहद खूबसूरत स्त्री और कहानी की नारी पात्र है। वह एक महल की मल्लिका है। दिलफिगार अपनी प्रेमिका दिलफरेब से सच्चा प्रेम करता है। प्रेमचन्द ने भी अपने शब्दों में उसके बारे में कहा है – उन प्रेमियों में नहीं, जो इत्र – फुलेल में बसकर और शानदार कपड़ों से सजकर आशिक के वेश में माशकियत का दम भरते हैं। बल्कि उन सीधे – सादे भोले – भाले फिदाइयों में जो जंगल और पहाड़ों से सर टकराते हैं और फरियाद मचाते फिरते हैं।' उसके इसी प्रेम को परखने के लिए प्रेमिका उसकी परीक्षा लेती है तथा इस दुनिया का सबसे अनमोल रत्न लाने को कहती है। साथ में वह यह भी कहती है– अगर तुझे ...... इधर रूख न करना, वरना सूली पर खिंचवा दूंगी।' दिलफिगार अपने प्रेम को सिद्ध करने के लिए उस अनमोल चीज को ढूंढने निकल पड़ता है। यह सोचता है कि दुनिया का सबसे अनमोल रतन क्या हो सकता है और यह मिलेगी कहां? इसी सोच में वह हैरान – परेशान कई दिनों तक इधर–उधर भटकता रहता है। तभी वह भटकते –घटकते एक मैदान में जा पहुँचता है जहाँ बहुत भीड़ जमा थी। वहाँ एक काला और नामक कैदी को कई मासूमों –बेगुनाओं को मौत के घाट उतार देने के कारण फाँसी दी जानी थी। तभी उसने एक खूबसूरत और भोले–भाले लड़के को खेलते हुए देखा। उस समय बच्चे का चेहरा कमल की भांति खिला हुआ था। तभी उसे अपनी बचपन की यादें ताजा हो आई जब वह भी एक बेगुनाह और निष्कपट था। उसे बीते हुए दिनों की वे भी बातें याद हो आई जब उसने दम तोड़ती हुई लाशों को तड़पते हुआ देखा और उसकी आँखें नहीं झपकी थी? उसी समय उसकी आंखों से आँसू का एक कतरा टपक पड़ा। दिलफिगार ने उस आँसू को अपने हाथ में ले लिया, इस सोच के साथ कि एक मरते हुए व्यक्ति के ऑसू से अनमोल क्या हो सकता हैं। वह अपनी कामयाबी पर खुश होता हुआ। दिलफरेब के पास जाता है परंतु उसके मन में यह संशय भी बना रहता है कि यदि यह वह अनमोल चीज न हुई तो उसे फांसी पर चढ़वा दिया जाएगा। उस आंसू को देखकर दिलफरेब ने दिलफिगार की हिम्मत और सुझ–बुझ की तारीफ की और कहा कि वह आंसू की एक बूँद को अनमोल रत्न नहीं मानती। वह उसकी जान बक्श देती है और फनः कोशिश करने की सलाह देती है। वह कहती है –"तू यहाँ से जा और फिर कोशिश कर, शायद अब की तेरे हाथ यह मोती लगे और तेरी किस्मत में मेरी गुलामी लिखी हो। जैसा कि मैंने पहला ही बतला विया था में तुझे फाँसी पर चढ़ा सकती हूँ मगर मैं तेरी जाँबख्शी करती हूँ इसलिए कि तुझमें वह गुण मौजूद हैं, जो में अपने प्रेमी में देखना चाहती हूँ और मुझे यकीन है कि तू जरूर कभी – न–कभी कामयाब होगा।'' इस प्रकार दिलफरेब दिलफिगार को अनमोल रत्न दोबारा खोजने के लिए भेजती है।

कुछ दिनों के बाद दिलफिगार ने चंदन की लकड़ी की चिता पर सोलह शृंगार किए एक स्त्री को देखा जो अपने मृत पति का सिर अपनी गोदी में लिए हुई थी। तभी अचानक खुद ही आग को लपटें उठती हैं और क्षण भर में दोनों के शरीर राख में परिवर्तित हो जाते हैं। दिलफिगार ने सोचा कि पत्नी ने अपने पति प्रेम के लिए खुद भी दुनिया को अलविदा कह दिया। इस सती की चिता की उख ही सबसे अनमोल रत्न है। वह एक मुट्ठी राख को लेकर दिलफरेब को शहर "मीनोसवाद'' जा पहुंचा। परन्तु पिछली बार की तरह दिलफरेब ने उसकी कोशिश की तारीफ की और उस तोहफे की भी पर। साथ ही यह भी कह दिया कि वह उसे भी अनमोल नहीं मानती।

इस बार दिलफिगार बेहद मायूस हो जाता है और आत्महत्या करने के लिए पहाड़ की चोटी पर चला जाता है। तभी एक बुजुर्ग आकर उसे रोकता है और वह दिलफिगार की हौंसला अफजाई करता। है तथा कहता है – ''दिलफिगार, नावान दिलफंगार, यह क्या बुजदिलों जैसी हरकत है। तू मुहब्बत का दावा करता है और तुझे इतनी भी खबर नहीं कि मजबूत इरादा मुहब्बत के रास्ते की पहली मंजिल है ? मर्व वन और यों हिम्मत न हार। पूरब की तरफ एक देश है जिसका नाम हिंदोस्तान है, वहाँ जा और तेरी आरजू पूरी होगी।' हिन्दुस्तान पहुँचने पर उसे एक लड़ाई के मैदान में कई लाशें पड़ी मिलती हैं। वहाँ उसे एक राजपूत सैनिक मिलता है जो खून से लथपथ है और कराह रहा है। यह उसके पास जाता है और देखता है कि अभी उसमें प्राण बाकी हैं। वह दिलफिगार को अपनी गुलामी और वतन – परस्ती की सारी बातें बताता है। वह कहता है – क्या में अपने ही देश में गुलामी करने के लिए जिंदा रहूँ? नहीं, ऐसी जिन्दगी से मर जाना अच्छा। इससे अच्छी मौत मुमकिन नहीं।' इस प्रकार वह अपने देश के लिए अपने प्राणों का बलिदान दे देता है। मरते हुए वह 'भारतमाता की जय' बोलता है। दिलफिगार समझ जाता है कि इस देशभक्त के खून की कीमत अमूल्य है। अतः उसके रक्त की अंतिम बूँद लेकर अपनी प्रेमिका दिलफरेब के पास पहुँचता है। वह उस राजपूत सिपाही की बहादुरी के विषय में बताता है और उस रक्त को दिलफरेब को सौंप देता है। प्रेमिका उसकी इस भेंट को सहर्ष स्वीकार कर लेती है और यह उसे गले लगा लेती है। यह कहती है – "तू मेरा मालिक है और में तेरी लौंडी।' अंत में प्रेमिका एक तख्ती निकालती है जिस पर स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया है– "खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।' इस प्रकार कहानी का कथानक संक्षिप्त है, परंतु घटनाओं के विस्तार के कारण थोड़ा लंबा अवरण हो गया है। मुख्य कथा को आगे बढ़ाने के लिए कैदी, सती तथा घायल सैनिक का प्रसंग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आलोच्य कहानी का मुख्य उद्देश्य लोगों में देशप्रेम एवं देशभक्ति की भावना को जगाना है। देश की रक्षा करते हुए शहीद होने वाले सैनिक के खून के सम्मुख सभी चीजें तुच्छ हैं – यही बताना लेखक का उद्देश्य है। घायल सिपाही द्वारा देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर देना उसके सच्चे देशभक्त होने का परिणाम है। गुलामी में जीने से अच्छा देश की रक्षा करते हुए मर जाना अधिक उचित है। घुट–घुटकर जीना कोई जीना नहीं है – यही संदेश लेखक ने इस कहानी के माध्यम से दिया है।

निष्कर्ष– कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कहानी में वीर सिपाही की वीरता और जज्बे को दिखाया गया है जिसने अंतिम क्षण तक अपने वतन की रक्षा करने के लिए जंग के मैदान में दुश्मनों से यद्ध करता रहा। इस कहानी में मानवीय उदात्त संबंधों को भी बड़े मार्मिक ढंग से उजागर किया गया है। इसके अतिरिक्त शिशु के प्रति वत्सलता एवं पति के प्रति सारे समर्पण और निष्ठा के मुकाबले अपने देश पर कर्बान हो जाने की भावना को ही सर्वोपरि ठहराया गया है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' कहानी कब प्रकाशित हुई?
2. 'दुनिया का सबसे रत्न' कहानी की नायिका कौन है?

13.5 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रेमचंद जी का जन्म सन 1880 में वाराणसी जिले के लमही ग्राम में हुआ था। उनका बचपन का नाम धनपतराय था। किंतु वह उर्दू में अपनी कहानियां नवाबराय के नाम से लिखते थे। प्रेमचंद जी ने लगभग एक दर्जा उपन्यासों और 300 कहानियों की रचना की, उन्होंने माधुरी एवं मर्यादा नाम की पत्रिकाओं का संपादन किया तथा हंस एवं जागरण नाम के पत्र भी लिखे। समाज सुधार एवं राष्ट्रीयता का स्वर उनकी रचनाओं के प्रमुख विषय है।

13.6 कठिन शब्दावली

ख्याति – प्रसिद्धि, यश

अमगल – अशुभ, अकल्याण

13.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. धनपत राय
2. प्रेमचंद

अभ्यास प्रश्न–2

1. 1907 में
2. दिल फरेब

13.8 संदर्भित पुस्तकें

1. प्रेमचंद, सोजे वतन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

2 मधुरेश, नयी कहानी : पुनर्विचार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

13.9 सात्रिक प्रश्न

1. प्रेमचंद के जीवन एवं साहित्य पर प्रकाश डालिए।
2. प्रेमचंद की कहानी कला पर विस्तारपूर्वक लिखिए।

*****

इकाई–14
जैनेन्द्र : जीवन और साहित्य

संरचना

14.1 भूमिका

14.2 उद्देश्य

14.3 जैनेन्द्र का जीवन और साहित्य

14.3.1 जीवन परिचय

14.3.2 साहित्यिक परिचय

स्वयं आकलन प्रश्न–1

14.4 'पत्नी' कहानी का सार

14.4.1 "पत्नी' कहानी का प्रतिपाद्य

स्वयं आकलन प्रश्न–2

14.5 सारांश

14.6 कठिन शब्दावली

14.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

14.8 संदर्भित पुस्तकें

14.9 सात्रिक प्रश्न

14.1 भूमिका

इकाई तेरह में हमने प्रेमचन्द के जीवन परिचय एवं उनकी कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' का अध्ययन किया। इकाई चौदह में हम जैनेन्द्र के जीवन एवं साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। जैनेन्द्र द्वारा रचित 'पत्नी' कहानी के सार एवं उद्देश्य का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

14.2 उद्देश्य

इकाई चौदह का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. जैनेन्द्र का जीवन परिचय क्या है?
2. जैनेन्द्र का साहित्यिक परिचय क्या है?
3. 'पत्नी' कहानी का सार क्या है ?
4. 'पत्नी' कहानी का उद्देश्य क्या है?

14.3 जैनेन्द्र : जीवन और साहित्य

14.3.1 जीवन परिचय

जैनेंद्र कुमार बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। इन्होंने उपन्यास में प्रेमचंदोत्तर के रूप में एक विशिष्ठ स्थान बनाया है। इनके उपन्यास इतिहास में मनोविश्लेषण परंपरा के प्रवर्तक के रूप में माने जाते हैं। इनके उपन्यास, कहानी, निबंध, संस्मरण आदि गध विधाओं के रूप में है। जैनेंद्र कमार जी अपने साहित्य के पात्रों को अपने अनुसार और अपनी कुशलता अनुरूप प्रस्तुत करते थे।

जैनेंद्र कुमार का जन्म

प्रेमचंदोत्तर युग के श्रेष्ठ कथाकार जैनेंद्र जी का जन्म 1905 ई० में उत्तर प्रदेश, अलीगढ़ के कोडियागंज नामक गांव में हुआ था। जैनेंद्र कुमार जी के पिता जी का नाम प्यारेलाल जी था। और उनकी माता जी का नाम श्रीमती रमादेवी जी था। इनके जन्म के दो वर्ष बाद ही इनके पिताजी का देहांत हो गया था। तब इनका पालन पोषण इनके मामा जी और इनकी माता जी ने किया था। जैनेंद्र कमार जी गांधीजी की विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित थे। इनके साहित्य में अहिंसावादी और दर्शनिकता का प्रभाव झलकता है। और अपने अंत समय तक जैनेंद्र कुमार जी साहित्य सेवा में लगे रहे और 24 दिसंबर 1988 में इनका स्वर्गवास हो गया।

जैनेंद्र कुमार की शिक्षा

जैनेंद्र कुमार जी की प्रारभिक शिक्षा हस्तिनापुर के जैन गुरुकुल ऋषि ब्रह्माचार्य आश्रम में हुई थी। सन 1912 में इन्होंने गुरुकुल आश्रम छोड़ दिया था और सन 1919 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया परंतु 1921 के आंदोलन में भाग लेने के कारण इनकी शिक्षा का क्रम टट गया था।

फिर इन्होंने सन् 1927 से लेकर 1923 के बीच अपनी माता की सहायता से अपना व्यापार शुरू किया जिसमें उन्होंने सफलता प्राप्त की। उसके पश्चात् 1923 में व्यापार छोड़कर नागपुर चले गए और राजनीतिक पत्रों में संवाददाता के रूप में कार्य करने लगे उस समय ने गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया जहां. यह 3 महीने तक रहे इनमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति छात्र जीवन से ही था। दस महीनों तक इन्होंने स्वाध्याय के साथ साहित्य श्रजन का कार्य शरू किया इनकी पहली कहानी खेल विशाल भारत में प्रकाशित हुई थी। फिर यह निरंतर साहित्य सृजन में ही लगे रहे।

जैनेंद्र कुमार की भाषा शैली

जैनेंद्र कुमार जी के निबंधों की भाषा मूलतः चिंतन की भाषा है। जैनेंद्र कुमार जी ना तो सोच कर लिखते थे। और ना ही लिखकर सोचते थे। इसलिए उनके विचारों में कहीं – कहीं उलझाव सा आ जाता है। इनकी विचारात्मक शैली में प्रश्न, उत्तर, तर्क, युक्ति, दृष्टांत आदि तत्वों का समावेश उसे गुड़ता प्रदान करता है। जैनेंद्र कुमार जी का दृष्टिकोण शब्द चयन में उदार है। जैनेंद्र कुमार जी सही बात को सही ढ़ंग से उपयुक्त शब्दावाली में कहना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, तत्सम, शब्दों का प्रयोग किया है। चाहे भले ही अपनी लेखनी में इनको घरेलू जीवन के शब्दों का ही प्रयोग क्यों ना करना पड़े उन्होंने इसमें कोई संकोच नहीं किया। वस्तुतः जैनेंद्र जी की शैली इनके व्यक्तित्व का ही प्रतिरूप है। हिंदी साहित्य के विद्वानों के समक्ष जैनंद्र जी ऐसी उलझन है। जो पहले से भी अधिक गूढ़ है। जैनेंद्र कुमार जी का यह सुलझा हुआ उलझाव इनकी शैलियों में झलकता है। इन्होंने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए विचारात्मक, विवरणात्मक, रचनात्मक, भावात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, आदी शैलियों का प्रयोग किया है।

जैनेंद्र कुमार का साहित्य में स्थान

जैनेंद्र कुमार जी के साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। कथाकार के रूप में तो इनकी एक विशेष पहचान है साथ ही निबंधकार और विचारक के रूप में भी इन्होंने अपनी अदभुत प्रतिभा दिखाई है। इन्होंने साहित्य में साहित्य, कला, धर्म, दर्शन, मनोविज्ञान, समाज, राष्ट्र, आदी अनेक विषयों को लेकर निबंध की रचना की है। इनके निबंध चिंतन प्रधान विचारात्मक है। इनका विचार करने का अपना एक तरीका था। कभी विषय को सीधे उठा लेते थे। और कभी यह दूसरे विषयो की चर्चा करते हुए मूल विषयों पर आ जाते थे। कभी मूल विषयों के केंद्रीय विचार सूत्र की व्याख्या करते हुए कविषय विस्तार करते थे। कभी – कभी कथा संदर्भ को प्रस्तुत करके उसके भीतर के विचार सूत्र को निकाल कर आगे बढ़ते थे। कभी पाठकों को आमंत्रित करके उनके साथ बातचीत करते

हुए एक परिचर्चा के रूप में अपने साहित्य का प्रतिवाद प्रस्तुत करते थे। इनके साहित्य दर्शन, मनोविज्ञान और अध्यात्म के शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। इनका साहित्य मैं स्थान इनके निबंधों के व्यक्ति निष्ठा पर आधारित है।

जैनेंद्र कुमार के पुरस्कार

जैनेंद्र कुमार जी को सन 1971 में पद्मभूषण के सम्मान से सम्मानित किया गया था। जैनेंद्र कुमार जी को सन् 1979 में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया था।

14.3.2 साहित्यिक परिचय

जैनेन्द्र उच्च्य कोटि के साहित्यकार माने जाते हैं। मनोविश्लेषणवादी साहित्यकार हैं। जैनेन्द्र ने प्रेम, व्यक्तिगत– भावनाओं को अपने लेखन का विषय बनाया जिनमें कहानी व उपन्यास विशेष है। उनके साहित्य का स्वर व्यक्तिवाद – प्रधान है वे व्यक्ति और समाज से पृथक करके उसको व्यक्तिवादी रूप में देखते और चित्रित करते हैं।

'जैनेन्द्र' की साहित्य – दृष्टि व्यक्तिमुखी है, वे पात्रों के मनोभावों और मनःस्थिति को ज्यादा महत्व देते हैं। व्यक्ति को समाज से अलग करके उसकी मानसिक कुठाओं और ऊहा – पोह का सुक्ष्म विश्लेषण करने में जैनेन्द्र की आस्था रही है।

उनके एक परिचित ने 'ज्ञानोदय' पत्रिका में उनके आंतरिक व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए लिखा था– "जैनेन्द्र साहित्यकार और संत दोनों से पहले राजनीतिज्ञ और डिप्लोमेट है, वह साहित्य के प्रति प्रभावी और भटके हुए इंसान है। दुःख अधिक इस बात का है कि वह प्रतिभा के बेजोड़ भंडार वार्तिया, जीनियस है।''

जैनेन्द्र के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि "यहां से वह तीखापन और धार मिलती है जो उनकी सबसे बड़ी शक्ति है और जिसके कारण अपने क्षेत्र में आज भी उनका प्रतिद्वन्दी नहीं है।''

श्री रघुनाथशरण झालानी ने उनके व्यक्तित्व के संदर्भ में लिखा है ''तेजस्विता, प्रखरता तथा सीव्रता, गहनता, दृढता तथा व्यापकता – इन सभी दृष्टियों से जैनेन्द्र में तेजस्विता, प्रखरता, महनता, सूक्ष्मता इन चार गुणों की स्थिति संदिग्ध है। जैनेन्द्र की कलम में दृढ़ता की स्थिति इसलिए संदिग्ध है कि जैनेन्द्र की निरीहता और नियतिकार के संघर्ष में यह बात कुछ अधिक जयती नहीं है। यह काल नहीं कि जैनेन्द्र के विश्वास ढीले और कमजोर हैं, पर उनमें कट्टरता और दृढ़ता व शक्ति नहीं हैं क्योंकि कर्म और अहिंसा की बातों से कट्टरता मेल नहीं खाती और व्यापकता का तो जैनेन्द्र में सर्वथा अभाव है।''

शांतिप्रिय द्विवेदी जी ने अभिमत देते हए कहा है. "धर्मात्मा होते हुए भी जैनेन्द्र नैतिक शास्त्री अथवा ज्ञानोपदेशक नहीं है। उनकी संवेदना में प्राणियों की प्राकृतिक दुर्बलताओं के लिए सहानभूति और आत्मीयता है। वह अपनी ही तरह सबके प्रति ईमानदार हैं। एषणाओं और दुर्बलताओं से परिचित होते हुए भी उनमें निर्लोभ और त्याग है। वह उत्सर्गशील मनुष्य है। अभावग्रस्त के लिए वह निःस्वार्थ तथा दिगम्बर हो सकते हैं। मैं नहीं जानता कि साहित्यकारों में जैनेन्द्र जैसे आत्मत्यागी लोग कितने हैं?'"

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का मूल स्वर प्रेम का चित्रण करने का ही रहा है। प्रेम भावना में शारीरिक पक्ष के स्थान पर मानसिकता का प्राधान्य है। जैनेन्द्र प्रेम के क्षेत्र में संघर्ष को उतना महत्व नहीं देते जितना कि आत्म पीड़न को देते हैं। इस आत्म – पीड़न के द्वारा वे प्रेम के व्यापक और लोक कत्याणकारी रूप की प्रतिष्ठा करने की ओर सचेष्ट रहे हैं। उनका आदर्श व्यावहारिक नहीं हैं लेकिन अपनी तरफ आकर्षित अवश्य करता है। जैनेन्द्र के व्यक्तित्व के अहंकार और राग का उनकी रचनाओं में भी प्रस्फूटन है। जैनेन्द्र के व्यक्तित्व के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि जैनेन्द्र की अहिंसा, सर्वत्र और सदैव एक भीरू की, संघर्ष के सम्मुख पूर्ण समर्पण कर देने वाली अहिंसा रही है।

जैनेन्द्र अपने साहित्य के प्रति सचेत है, क्योंकि जीवन में आदि से सम्पूक्ति तक व्यापक अहंकार और प्रेम के भाव में अन्तर्द्वन्द ही इनके लिए सबसे बड़ी सच्चाई रही है और उसी को उन्होंने अपने साहित्य में विश्व को देना चाहा है।

जैनेन्द्र के व्यक्तित्व का विश्लेषण अगर करें तो उनके व्यक्तित्व में राग और अंहकार दो भावनाओं का बाहुल्य है। उनके सम्पूर्ण साहित्य में उनके व्यक्तित्व के यह तत्व उनके पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त हुए है। उनकी रागात्मक चेतना करुणा पैदा कर देती है पाठकों में।

'जैनेन्द्र' ने उपन्यास, कहानियां, निबन्ध तथा नाटकों की रचना करने के साथ–साथ अनुवादक एवं सम्पादक के रूप में भी, हिन्दी साहित्य को योगदान दिया है। उपन्यास में परख, त्यागपत्र, सुनीता, कल्याणी, विवर्त, सुखदा, व्यतीत, मुक्तिबोध अनन्तर, अनाम स्वामी आदि हैं। जिनमें अधिकांशतः नर–नारी, प्रेम सम्बन्धों को वस्तु–रूप में अपना कर सृजित किया है। जिसमें वे सफल उपन्यासकार सिद्ध हुए। जैनेन्द्र के कहानी –संग्रहों में फांसी, वातायन, नीलम देश की राजकन्या, एक रात, दो चिड़ियां, पांजेब, जय सन्धि आदि हैं।

जैनेन्द्र के निबन्ध संग्रहों में प्रस्तुत – प्रश्न, जड़ की बात, पूर्वोदय साहित्य का श्रेय और प्रेय, मंथन, सोच – विचार, कान, प्रेम और परिवार ये और वे परिप्रेक्ष। संस्मरण साहित्य के अन्तर्गत जैनेन्द्र ने गरे भटकाव, काश्मीर की वह यात्रा, इतस्ततः प्रकाशित है। बाल साहित्य के अन्तर्गत सचित्र कथाएं लिखी है – अपना–पराया, इमाम, जंगल की आवाज, खेल, किसका तरया, लाल – सरोवर, नारद का निवेदन, रात्रू की दादी, सुन्दरिया, वह बेचारा, प्रेम में भगवान, दो साथी, मूरखराज, धर्मपुत्र देर है, अंधेर नहीं, सीन जोगी, गांधी कुछ स्मृतियां आदि।

अनूदित रचनाओं के अन्तर्गत – मन्दाकिनीः (नाटक), प्रेम में भगवान (कहानी संग्रह), पाप और प्रकाश नाटक, मागा (उपन्यास)।

इन रचनाओं के अतिरिक्त संदर्भ ग्रंथ भी लिखे हैं जैसे साहित्य और संस्कृति, समय समस्या और सिद्धांत, समय और हम, प्रेम और विवाह, नारी, अकाल, पुरुष गांधी, प्रश्न और प्रश्न, राष्ट्र और राज्य, वृत विहार (तीन भागों में) शिक्षा और संस्कृति, क्या अभी भविष्य है ? तथा जैनेन्द्र के विचार।

सम्पूर्णतः अगर देखा जाए तो जैनेन्द्र के कथा – साहित्य में अपने विचार ही समाहित हैं। और हिन्दी साहित्येतिहास को पूर्ण योगदान दिया है।

जैनेंद्र कुमार की रचनाएं

जेनेंद्र कुमार की निम्नलिखित रचनाएं है। जिसमें उपन्यास, कहानी, निबंध, संस्करण, आदि अनेक गद्य विद्याओं का सृजन किया था।

निबंध संग्रह – प्रस्तुत प्रश्न, जड़ की बात, पूर्वोदय, साहित्य का श्रेय और प्रेय, मंथन, सोच विचार, काम, प्रेम और परिवार आदि।

उपन्यास – परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, विवत्र, सुखदा, व्यतीत, जयवर्धन, मुक्तिबोध आदि।

कहानियां – फांसी, जयसंधि, वातायन, नीलमदेश की राजकन्या, एक रात, दो चिड़िया, पाजेब आदि।

संस्मरण – ये और वे आदि।

अनुवाद – मंदालीनी (नाटक), पाप और प्रकाश (नाटक), प्रेम में भगवान (कहानी संग्रह) आदि।

जैनेन्द्र के व्यक्तित्व पर विचार करते हुए कतित्व पर भी चर्चा की गई है। अब हम उनकी कहानी एवं 'पत्नी' की समीक्षा करेंगें –

जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'पत्नी' की समीक्षा

जैनेन्द्र कुमार की पत्नी कहानी सफल एवं लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी में पति –पत्नी के सम्बन्धों की चर्चा है। सुनदा और कालिन्दीचरन पति –पत्नी हैं और कालिन्दीचरण का मित्रों के साथ भारत माता को स्वतंत्र करवाने की चर्चा, नीति – अनीति, हिंसा– अहिंसा की चर्चा करते हुए मीठी बातों से स्वतंत्र न होने की बहस और जुल्म को मिटाने की बार – बार चर्चा करते हैं और कुछ करने की ठानते हैं। मित्रों का चले जाना और सुनंदा का और कालिन्दीचरण का जाना और पत्नी का पति के जाने का कारण न समझ आना लेकिन उसे समझने का प्रयास करना और बैठे – बैठे पति से आपत्ति शून्य भाव से पूछना और सोच – विचार करना और पति के विपधा से विपधा उठती रही पत्नी का चरित्र उभर कर सामने आता है। इतने में कालिन्दी का सुनंदा से बेहद गुस्सा हो जाना और कालिन्दी का तैश में आकर पैर पटकते हुए लौट आना। कालिन्दी अपने दल में विवेक के निधि है। और उनाव और अंकुश का काम करने वाले हैं। देश की स्वतन्त्रता के प्रति भावना और कालिन्दी का यह मानना कि आतंक को छोड़ और बढ़ाना चाहिए क्योंकि उसका मानना है कि आतंक से विवके कुंठित होता है और मनुष्य उससे उत्तेजित या भय से दबा रहता है इन दोनों स्थितियों को वह श्रेष्ठ नहीं मानता। उसका कहना है कि हमारा तुहिं को चारों और जगाना है उसे आंतकित नहीं करना है। सरकार व्यक्ति के और राष्ट्र के विकास के ऊपर बैठकर उसे दबाना चाहती है। इसी विकास के अवरोध को हटाना चाहते हैं। उस भय की समसामयिक स्थिति को भली भांति उजागर करने वाली कहानी है जो कालिन्दी और उसकी पत्नी सुनंदा के चरित्र को गतिविधि देती है।

पति–पत्नी के परस्पर संवाद जो उस समय की स्थिति और परिवेश से प्रभावित है कहानी को संजीवता देते हैं। पत्नी छदम की बात मनोवैज्ञानिक ढंग से लेखक ने प्रस्तुत की हैं। वातावरण कथ्य के कथान्सार प्रस्तुत किया है। भाषा शैली एवं उद्देश्य भी उभर कर इस छोटी सी कहानी में दिखाई देता है। कहानी में पारिवारिक वातावरण और तत्कालीन समाज और देश की दशा का चित्रण है।

लघु कहानी लेकिन उसका व्यापक अर्थ पत्नी का स्वाभिमान, पति का अहम् व्यक्ति और देश सुधार की चर्चा, सरकार का वर्णन जिसे भोली भाली पत्नी नहीं समझती। पत्नी के मन में आने वाले प्रश्न उत्तरों का बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण करने वाली कहानी सफल एवं लोकप्रिय कहानी है।

कहानी के तत्वों के आधार पर कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र को 'पत्नी' कहानी उनके दृष्टिकोण को पति –पत्नी के सम्बन्ध को और उस समय की सामूहिक परिस्थितियों को स्पष्ट करने में सफल है। जैनेन्द्र साधारणतः दार्शनिकता के पक्षधर रहे हैं और मनुष्य के स्वभाव के मूलभूत तत्वों की ओर संकेत करते हैं। अन्ततः जैनेन्द्र, आधुनिक मनोवृतियों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में विशेष स्थान रखते हैं। व्यक्ति के अन्तर्मन और उसकी मानसिकता का चित्रण इनकी कहानियों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से उदेश्य रहा है जिसे इस चर्चित कहानी में देखा जा सकता है।

कथ्य, पान, चरित्र – चित्रण, परिवेश, भाषा एवं उद्देश्य की दृष्टि से कहानी बहुचर्चित, महत्वपूर्ण एवं गहरा ज्ञान देने की सामर्थ्य रखते हए आधुनिक समाज एवं व्यक्ति के मन का लेखा – जोखा सूक्ष्म ढग से प्रस्तुत करने में सफल एवं प्रभावशाली है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. हिन्दी उपन्यास में तमनोविश्लेषण परम्परा के प्रवर्तक कौन हैं?
2. 'सुनीता' किसका उपन्यास है?

14.4 पत्नी' कहानी का सार

'पत्नी' कहानी जैनेन्द्र जी की एक प्रसिद्ध कहानी है। इस कहानी में उन्होंने पति द्वारा उपेक्षित एक पत्नी की मानसिक दशा का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

बीस बाईस साल की सुनन्दा अपने पति कालिंदी चरण के साथ शहर के एक 'तिरस्कृत मकान के दूसरे तल्ले में रहती है। पति समाज – सेवी है, साथ ही, अत्यन्त विनम्र, शान्ति और अहिंसा में विश्वास करता हैं। पर वह अपनी व्यस्तता के कारण सुनन्दा का कुछ भी ध्यान नहीं रखता है। सुनन्दा अपने पति के इस उपेक्षा भाव से भीतर – ही – भीतर टूटती जा रही है। उसके मन में प्रतिक्षण प्रतिक्रिया उभरती है पर वह अपने विरोधी भावों को शान्त करती रहती है और पति के प्रति सहानुभूति का अनुभव करती है। उसका कार्य केवल पति के लिए भोजन बनाने की तैयारी और उसके आने की प्रतीक्षा करना रह गया हैं। कभी–कभी उसे खीझ भी आती है जबकि कालिंदी चरण को आने में काफी देर हो जाती है। वह सहती है कि पति के आने पर ही वह भोजन बनाए पर उसके नहीं आने पर वह मन ही सब बोल उठती है – 'नहीं अब वह रोटी बना ही देगी।' इसी बीच कालिंदीचरण अपने सहयोगियों के साथ घर में प्रवेश करता है और सुनन्दा से बिना अपने आगमन और मित्रों के लिए भजन की बात किए बहस में उलझ जाता है। कमरे में चल रहे वाद – विवाद की आवाज सुनन्दा के कान में पड़ती है, पर वह अपने काम में जुटी रहती है। अन्ततः वह रोटी बनाकर अंगीठी में पानी डालकर अन्यमनस्क भाव से बैठ जाती है।

जब कालिंदीचरण को अपने तथा मित्रों के भोजन की बात याद आती है तब वह अन्दर प्रवेश करता है। सनुन्दा जहाँ थी वहाँ है। वह रोटी बना चुकी है। अंगीठी के कोयले उलटे तबे से दबे है। माथे को उंगलियों पर टिकाकर वह बैठी है। बैठी–बैठी सूनी–सी देख रही है। स्पष्ट है कि कहानीकार ने अत्यन्त संक्षेप में और कलात्मक एवं सांकेतिक शैली द्वारा पाठकों को इस तथ्य से अवगत करा दिया है कि सुनन्दा की मानसिक स्थिति कैसी है? किन्त इतना कुछ होने पर भी उसके मन में पति के महान कार्यों के प्रति गौरव – भाव है। यद्यपि वह कुछ नहीं जानती कि भारतमाता अथवा स्वतंत्रता का क्या अर्थ होता है. पर वह इच्छा रखती है कि उसे यदि उसका पति इन बातों को समझाता तो वह थोड़ा–बहुत तो समझ ही लेती। पर उसे दुःख है कि उसका पति उसे तनिक भी महत्व नहीं देता। यह सोचती है कि उसका काम तो केवल पति–सेवा है और यही सोचकर उसके मन की सारी शिकायतें जैसे समाप्त हो जाती हैं। वह अपने पति की महानता तथा समाज में उसके स्थान को सोच, स्वयं भी गौरव का अनुभव करती है। साथ ही, उसके मन में पति के कार्यों के प्रति प्रश्नात्मक भाव भी जगता है। वह सोचती है कि उसका पति सरकार से क्यों लड़ना चाहता है? यद्यपि वह यह नहीं जानती कि सरकार क्या होती है? फिर भी वह फौज, सेना, सरकारी नौकर आदि को सरकार समझती है। वह डरती है कि उसका पति अपने मित्रों के साथ सरकार के विरुद्ध जोर – जोर से बातें क्यों करता है। इन बातों की सोचती हई सुनन्दा को पुनः समय की याद आती है और उसका मन पति की उपेक्षा के प्रति दुःखी हो उठता है। वह सोचने लगती है। कि दो बज गए, पर उन्हें न अपनी चिन्ता है और न मेरी ही चिन्ता। इसी आदत के कारण बच्चा भी काल का ग्रास बना। सुनन्दा अपने दिवंगत बालक के विषय में प्रायः सोचकर दुःखी होती है। सुनन्दा जीना चाहती है। उसे ज्ञात है कि एक दिन सभी मरेंगे, पर वह उस मृत्यु को याद करना नहीं चाहती। वह मृत्यु की याद को भूलना चाहती है। वास्तव में कथानक का यह बिन्दु जितना मार्मिक और सघन है, उतना ही महत्त्वपूर्ण है। समग्र विरोधी परिस्थितियों में भी व्यक्ति करना नहीं चाहता। इसी बीच कालिन्दी को भोजन की याद आती है और वह सुनन्दा के पास जाता है। कालिन्दी का मन भी अपराध – भाव का अनुभव करता है। अतः वह केवल इतना ही कहता है–"तीन आदमी और मेरे पास हैं। खाना बन सके तो कहो, नहीं तो इतने में काम चला लेंगे।' सुनन्दा को कालिन्दी की यह बात पसंद नहीं आई। वह सोचती है कि उसका पति हंस कर उससे ऐसा क्यों नहीं कहता कि

तीन आदमी का भोजन और बना दो। जैसे मैं कोई गैर हूँ? और पति के बार – बार पूछने पर वह कुछ उत्तर नहीं देती। कालिंदी अपने मित्रों के पास लौटकर सुनन्दा की तबीयत खराब होने की बात कहकर होटल चलने का प्रस्ताव करता है। पर उसके विचारों में मूलभूत परिवर्तन मित्रों ने देखा। भीतर जाने के पहले जो कालिन्दी आतंक के विरुद्ध था, वहीं लौटने पर मित्रों की बातों से सहमत हो गया कि आतंक भी जरूरी है। इसी बीच सुनन्दा एक बड़ी थाली में भोजन और चार गिलास पानी रख जाती है। कालिन्दी अपनी झेंप मिटाने के लिए मित्रों से कहता है कि उसका तात्पर्य यह था कि घर में परा भोजन नहीं है, किन्तु मित्र पति – पत्नी के बीच के तनाव का अनुमान लगा लेते हैं। कालिन्दी भीतर आकर पत्नी को क्रोध में आकर बहुत कुछ कहता है, पर वह उत्तर नहीं देती। अन्त में, पति को बहुत अप्रसन्न देखकर वह कहती है – "खाओगे नहीं ? एक तो बज गया। सुनन्दा ने अपना भी भोजन परोस दिया था, किन्तु उसे दुःख केवल इस बात का था कि पति ने उससे भोजन के लिए पूछा तक नहीं। वह अपने मन को समझाती है कि उसने अच्छा किया, पर उसका स्वाभिमान पुनः उन्हें सोचने को बाध्य कर देता है कि उसके पति ने उससे भोजन की बात पूछी क्यों नहीं ? सुनन्दा के मानसिक संघर्ष का यह स्थल अत्यन्त रोचक और मनोवैज्ञानिक है। भोजन के समय सुनन्दा बाहर द्वार के पास खड़ी हो जाती है ताकि कुछ माँगने पर तुरन्त दे सके।

14.4.1 'पत्नी' कहानी का प्रतिपाद्य

'पत्नी' कहानी मनोवैज्ञानिक कथाकार जैनेन्द्र कुमार की एक बहुचर्चित एवं महत्वपूर्ण कहानी हैं। प्रस्तुत कहानी नारी मन की भावनाओं को चित्रित करने में पूर्णतः सफल रही है। सुनन्दा के चरित्र के माध्यम से लेखक ने एक पत्नी के समर्पण, त्याग और कर्तव्य की तस्वीर अंकित की है। कहानी का मुख्य उद्देश्य भारतीय पत्नी के आदर्शों को स्थापित करना है।

सुनन्दा और कालिन्दी चरण दम्पत्ति हैं। सुनन्दा एक गृहिणी है तथा उसका पति एक राजद्रोही है, जो देश को अंग्रेज़ों के चंगुल से आजाद, करवाना चाहता है। शहर के कोने में एक निरस्कृत सा मकान है, जिसमें सुनन्दा चौके में अँगीठी के सामने बैठी है। शनैः – शनैः अँगीठी की आग राख में परिवर्तित हो रही है। उसकी देह दुबली – पतली और अवस्था कोई बीस – बाईस के लगभग होगी। उसके पति सवरे घर से पहले चले जाते और वह देर तक उसका इंतजार करती रहती है। एक बन चुका है, परन्तु कालिन्दी सभी नहीं लौटा है। वह उसके लिए रोटियाँ बनाना चाहती है, परन्तु यह सोचकर कि न जाने कब आएंगे कुछ खीझ – सी जाती है। आखिर वह रोटियाँ बेलने लगती हैं। उसका पति कालिन्दीचरण अपने तीन क्रान्तिकारी साथियों के साथ घर लौटता है। वे कमरे में बैठे–बैठे किसी विशेष विषय पर जोर – जोर से बहस कर रहै हैं। सुनन्दा उनकी अवाज तो सुन रही है, परन्तु वह उनकी बहस के विषय को नहीं समझ पा रही हैं। यह कम पढ़ी लिखी है। यह नहीं जानती की भारतमाता कौन है और स्वतंत्रता क्या होती है। वह अपने पति के साथ बैंठकर यह सब जानना चाहती है परन्तु उसके पति के पास न समय है न धीरज। वह जानती है उसका काम केवल अपने पति की सेवा करना है यही सोच कर वह सब जानने की कोशिश छोड़ देती है। बस, अपने पति के पीछे – पीछे चलना ही उसकी नियति है। अपने पति के दुख में दुःखी होना ही उसका ध्येय है। कई बार पति ने कहा भी कि वह उसक साथ रहकर क्यों दुःखी होती है परन्तु वह केवल चुप रहकर यह सोचने लगी कि देखो ये कैसी बातें करते है। सुनन्दा के लिए सरकार, हाकिम, फौज, पुलिस, मजिस्ट्रेट, मुंशी, चपरासी, थानेदार और वइसराय सभी के वो सरकार हैं। वह अपने पति को कहती भी है कि सरकार के विरुद्ध लड़ना ठीक बात नहीं है, पर ये तो उसी से लड़ने में अपना तन –मन भूल बैठे हैं। वह चौके में अंगीठी के सामने बैठी सोच रही है कि ये लोग इतनी ऊँची आवाज में क्यों बातें कर रहे हैं, शायद इन्हें पता नहीं है कि खुफिया पुलिस का एक आदमी हरपल उनके घर के सामने घूमता रहता है। यही सोचते – सोचते कि दो बज गए परन्त इन्हें न खाने की फ्रिक, न मेरी फ्रिक, मेरी तो क्या

फ्रिक। परन्तु अपने तन का ख्याल तो रखना चाहिए। वह सोचती है कि इनकी इसी बेफ्रिकी और बेपरवाही के कारण ही उनका बच्चा मृत्यु का ग्रास बन गया। सुनन्दा अपने बच्चे की अठखेलियों की स्मृति में खो सी गई। यह अपने मरने और अपने बच्चे के मरने के भय से चलते बेबस – सी हो गई।

वह चौके से उठकर बर्तनों के माँजने और घर की साफ – सफाई के बारे में सोचने लगी, तभी कालिन्दीचरण ने सुनन्दा से कहा– "खाने वाले हम चार हैं। खाना हो गया।'' सुनन्दा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह फिर कहता है – "सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और है, खाना बन सके तो कहीं नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे।' सुनन्दा का मन गुस्से से भर गया। वह सोचती है कि वे क्षमा प्राथी की तरह क्यों बाते कर रहे हैं। हँसकर क्यों नहीं कह देते कि खाना बना दो। मैं कोई गैर हूं। वह गुस्से में घुटकर रह गईं। कालिन्दी चरण ने अपने अविवाहित साथियों से कहा कि घर में कोई खाना नहीं खाएगा। वे फिर आतंक और सरकार पर बहस करने लगे। इतने में सुनन्दा एक बड़ी थाली में खाना परोस कर सबके बीच में रखकर, फिर चार गिलास पानी के रखकर चुपचाप बाहर चली गई। सुनन्दा घर में शेष आटे की की रोटियाँ बना चुकी थी। सुनन्दा ने अपने लिए कुछ बचाकर नहीं रखा था। उसे सूझा ही नहीं था कि उसे भी खाना है। कालिन्दी और उसके साथी सारा खाना खा चुके थे। वह अपने पर रूष्ट हो गई। क्योंकि उसने अपने लिए कुछ क्यों नहीं बचाया। उसका मन कठोर हो गया कि वह ऐसे क्यों सोचती है। क्या में यह कह सकती थी कि मुझे भी कुछ खाना है, क्या कालिन्दी का यह फर्ज नहीं बनता कि वह मुझसे पूछे कि तुम क्या खाओगी वह अपने आप से कहने लगी– "छिः छि सुनन्दा तुझे तो खुश होना चाहिए कि उनके (पति) लिए एक रोज भूखे रहने का तुझे पुण्य मिला है। मैं क्यों उन्हें नाराज करती हूं। अब से नाराज नहीं करूंगी। वह बर्तन मांजने लग गई वे लोग फिर बहस करने लगे। उसे तरन्त ध्यान आया कि बर्तन ते बाद में भी मांज लूंगी। अगर उन्हें कुछ जरूरत हुई तो। यही सोचकर वह दरवाजे की ओट में खड़ी हो गई– जिससे कालिन्दी कुछ मांगे, तो जल्दी से उन्हें लाकर दे दे।

उपर्युक्त विवरण से यही उद्देश्य स्पष्ट होता है कि लेखक सुनन्दा के चरित्र के माध्यम से भारतीय नारी के आदर्शों को चित्रित करना चाहता है कि लेखक सुनन्दा के चरित्र के माध्यम से भारतीय नारी के आदर्शों को चित्रित में भारतीय नारी के सम्पूर्ण गुण मौजूद है। वह अपने पति से पहले भोजन नहीं करती है। वह स्वयं भूखी रहकर अपने पति को खाना खिलाने में विश्वास रखती हैं।

दाम्पत्य सम्बन्धों को एक नई दृष्टि से रेखांकित करना भी लेखक का उद्देश्य रहा हैं। प्रस्तुत कहानी में पति – पत्नी एक – दूसरे को समझने में असमर्थ हैं। पति कालिन्दीचरण भारतमाता की स्वतंत्रता की प्राप्ति के बारे में अपने मित्रों से बहस करता रहता है। उनके साथ बैठकर खाना खाता है। बीच – बीम में हंसने भी लगता है, परन्तु अपनी पत्नी को यह भी नहीं पूछता कि तुम्हारे लिए भी खाना है या नहीं। सुनन्दा को समझने की उसने कभी कोशिश ही नहीं की। जब कालिन्दी उससे खाना बनाने के लिए कहा है कि– "खाना बन सके तो कहो नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे।" जब पत्नी (सुनन्दा) अन्तर्मन में जो क्रिया – प्रतिक्रिया चलती है, उसका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण लेखक ने इस प्रकार किया है – "सुनन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। वह उससे क्षमा – प्रार्थी से क्यों बात कर रहे हैं, हँसकर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूँ। अच्छी बात है, तो में भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम में लगी रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना – वाना और वह चुप रही।' इस प्रकार लेखक ने सुनन्दा की द्वन्द्वात्मक मनःस्थिति का आंकलन बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ किया है।

लेखक यह भी दर्शाना चाहता है कि माँ अपने बच्चे के लिए कैसे तड़पती है। अपने पति की उदासीनता और बेफ्रिकी के वजह से उसका बच्चा मौत के ग्रास में चला गया। बच्चे की छोटी–छोटी अँगुलियाँ और अन्य स्मृतियां सुनन्दा के मातृत्व को उद्वेलित कर देती है। वस्तुतः सुनन्दा के चरित्र के माध्यम से लेखक ने भारतीय

नारी की ममता और सन्तान की सहज भूख को चित्रित किया है। स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि सुनन्दा एक वाक्य यह भी कहती है – "पर वह अपने तन की सुध नहीं रखते। यह ठीक नहीं है।'' वस्तुतः पति की अन्तरंग सम्बन्धों के प्रति उदासीनता पत्नी में विरोध का स्वर पैदा करती है। इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य को लेखक सुनन्दा के उपर्युक्त वाक्य के माध्यम से प्रदर्शित करना चाहता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'पत्नी' कहानी के माध्यम से लेखक भारतीय नारी की मान–मर्यादा, स्वाभिमान, समर्पण, त्याग और कर्तव्य को रेखांकित करना चाहता है। यही भारतीय नारी का आदर्श रूप है। वस्तुतः 'पत्नी' एक सोद्देश्य कहानी है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'सुनन्दा' के पति का क्या नाम था?
2. 'पत्नी' में किस तरह का चित्रण किया गया है?

14.5 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र कुमार का हिन्दी साहित्य में काफी विशेष स्थान है। वे हिन्दी साहित्य के एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कथाकार उपन्यासकार तथा निबंधकार है। जैनेन्द्र की उच्च शिक्षा काशी विश्वविद्यालय में हुई। 1921 ई० में पढ़ाई छोड़कर ये असहयोग आन्दोलन में शामिल हो गए। 'फाँसी' इनका पहला संग्रह था, जिसने इनकों प्रसिद्ध कहानीकार बना दिया। प्रेमचंद के बाद हिंदी कहानी को नवीन आयाम देने वालों में जैनेन्द्र का नाम प्रमुख हैं।

14.6 कठिन शब्दावली

पुरातत्व – पुरालेखो, पुरातत्व विज्ञान

मानक – मापदंड, प्रामाणिक

14.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. जैनेन्द्र कुमार
2. जैनेन्द्र कुमार

अभ्यास प्रश्न–2

1. कालिन्दीचरन
2. मानसिक दशा का मनोवैज्ञानिक चित्रण

14.8 संदर्भित पुस्तकें

1. जैनेन्द्र, पत्नी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. डॉ० नरेन्द्र मोहन, समकालीन कहानी की पहचान, वाणी प्रकाशन।

14.9 सात्रिक प्रश्न

1. जैनेन्द्र के जीवन एवं साहित्यिक परिचय पर प्रकाश डालिए।
2. मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में जैनेन्द्र का स्थान निर्धारित कीजिए।

*****

इकाई–15
निर्मल वर्मा : जीवन और साहित्य

संरचना

15.1 भूमिका

15.2 उद्देश्य

15.3 निर्मल वर्मा का जीवन और साहित्य

15.3.1 जीवन परिचय

15.3.2 साहित्यिक परिचय

स्वयं आकलन प्रश्न–1

15.4 'लंदन की एक रात' कहानी का सार

15.4.1 निर्मल वर्मा की कहानियों की विशेषताएं

स्वयं आकलन प्रश्न–1

15.5 सारांश

15.6 कठिन शब्दावली

15.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

15.8 संदर्भित पुस्तकें

15.9 सात्रिक प्रश्न

15.1 भूमिका

इकाई चौदह में हमने जैनेन्द्र के जीवन परिचय एवं उनकी कहानी 'पत्नी' का अध्ययन किया। इकाई पन्द्रह में हम निर्मल वर्मा के जीवन एवं साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। न्मिल वर्मा द्वारा रचित 'लंदन की एक रात कहानी के सार एवं उद्देश्य का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य

पन्द्रह का अध्ययन करने के पश्चात हम् यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. निर्मल वर्मा का जीवन परिचय क्या है ?
2. निर्मल वर्मा का साहित्यिक परिचय क्या है?
3. 'लंदन की एक रात' कहानी का सार क्या है?
4. निर्मल वर्मा की कहानियों की क्या विशेषताएं है?

15.2 निर्मल वर्मा : जीवन और साहित्य

15.3' जीवन परिचय

पूरा नाम	निर्मल वर्मा
जन्म	3 अप्रैल, 1929
जन्म स्थान	शिमला
पहचान	हिन्दी लेखक

मृत्यु	25 अक्तूबर, 2005
यादगार कृतियाँ	'रात का रिपोर्टर', 'एक चिथड़ा स्ख', 'लाल टीन की छत', वे दिन'

निर्मल वर्मा का जीवन परिचय

निर्मल वर्मा का जन्म 3 अप्रैल 1929 को शिमला में हुआ, इनके पिताजी का नाम नंद कुमार वर्मा था, जो ब्रिटिश सरकार में डिफेन्स के बड़े अधिकारी थे, इनके परिवार में माता पिता के अतिरिक्त आठ भाई बहिन थे, जिनमें निर्मल जी पाँचवी सन्तान थे।

नई कहानी विधा का इन्हें प्रणेता माना जाता हैं. अज्ञेय की तरह इन्होंने भी पश्चिमी कहानी लेखन की विधा को हिंदी में प्रयुक्त किया, निर्मल वर्मा का साहित्य संसार संक्षिप्त ही हैं मगर इन्होने जितना भी लिखी उसकी खूब ख्याति मिली, पहाड़ी जीवन के प्रत्यक्ष अनुभुवों को वर्मा ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया हैं।

सेंट स्टीफेंस कॉलेज दिल्ली से इन्होंने इतिहास विषय में एम. ए. की डिग्री पाने के बाद कुछ वर्षों तक अध्यापन करवाया। एक लम्बे दौर (1959 से 1972) तक ये यूरोप में रहे, वर्ष 1973 में इनकी कहानी माया दर्पण पर हिंदी फिल्म बनाई गई जिन्हें फिल्म ऑफ दी ईयर का खिताब भी मिला।

'रात का रिपोर्टर', 'एक चिथड़ा सुख', 'लाल टीन की छत' और 'वे दिन' निर्मल वर्मा के मुख्य उपन्यास हैं इनका अतिम उपन्यास वर्ष 1990 में अरण्य नाम से प्रकाशित हुआ हैं। 1958 में इनकी चर्चित कहानी परिदें का प्रकाशन हुआ था। इसके पश्चात् लगभग सौ से अधिक कहानियों का प्रकाशन करवाया। 'धुंध से उठती धुन' और 'चीड़ों पर चाँदनी ये वर्मा रचित यात्रा संस्मरण भी हैं।

26 अक्टूबर, 2005 के दिन 73 वर्ष की आयु में हिंदी के इस आधुनिक साहित्यकार का दिल्ली में निधन हो गया था। ये लम्बे समय तक फेफड़े की बिमारी से जूझ रहे थे। भारत सरकार ने इनके निधन के समय निर्मल वर्मा का नाम नोबेल पुरस्कार के लिए नामित भी किया था।

15.3.2 साहित्यिक परिचय

निर्मल वर्मा जी की कहानियाँ हिंदी परम्परा से हटकर पाश्चात्य परम्परा से जुड़ी हुई हैं। फलस्वरूप डॉ. बाबूलाल गोस्वामी के अनुसार उनकी कहानियाँ अपनी भूमि, अपने देश की परम्परा, यहाँ की गरीबी और जहालत से कटकर रोमानी रुचि से ओत प्रेत हैं।

प्रमुख कहानी संग्रह परिदे की परिंदे, लवर्स ऐसी ही कहानियाँ हैं, अंधेरे में, डेढ़ इंच ऊपर, इतनी बड़ी आकांक्षा, शराबघरों की चुहलबाजियों और अवसाद में डूबे शराबियों की कहानी हैं।

किन्तु लन्दन की एक रात और कुत्ते की मौत जैसी कहानियों में जीवन की अनिश्चितता, घुटन, निरर्थकता, रंग भेद और बेगानगी को चित्रित किया गया हैं। जिससे उनका सामाजिक सरोकार एवं यथार्थ बोध कुछ गहराई के साथ व्यक्त हआ हैं।

कहानियां

कहानी	**वर्ष**
परिदें	1958
जलती झाड़ी	1965
पिछली गर्मियों में	1968
बीच बहस में	1973
कौवे और काला पानी	1983
सूखा तथा अन्य कहानियाँ	1995

उपन्यास

उपन्यास नाम	प्रकाशन वर्ष
वे दिन	1958
लाल टीन की छत	1974
एक चिथड़ा सुख	1979
रात का रिपोर्टर	1989
अंतिम अरण्य	2000

निबंध

नाम	प्रकाशन वर्ष
शब्द और स्मृति	1976
कला का जोखिम	1981
ढलान से उतरते हुए	1987
भारत और यूरोप : प्रतिश्रृति के क्षेत्र	1991
इतिहास, स्मृति, आकांक्षा	1991
आदि, अंत और आरंभ'	2001
सर्जना – पथ के सहयात्री	2005
साहित्य का आत्म –सत्य	2005

यात्रा वृतांत

चीड़ों पर चाँदनी (1962), हर बारिश में (1970), धुध से उठती धुन (1996)

नाटक

तीन एकांत (1976)

साक्षात्कार

दूसरे शब्दों में (1999), प्रिय राम (अवसानोपरांत 2006), संसार में निर्मल वर्मा (अवसानोपरांत 2006)

संचयन

दूसरी दुनिया (1978), प्रतिनिधि कहानियाँ (1988), शताब्दी के ढलते वर्षों से (1995), ग्यारह लंबी कहानियाँ (2000)

अनुवाद

रोमियो जूलियट और अंधेरा	बाहर और परे
कारेल चापेक की कहानियाँ	बचपन
कुप्रिन की कहानियाँ	इतने बड़े धब्बे
झोंपड़ीवाले	आर यू आर
एमेके : एक गाथा	––

कहानियों की मूल प्रवृत्ति

निर्मल वर्मा जी साठोतरी कहानी साहित्य के चर्चित हस्ताक्षर हैं। उनकी कहानियों में कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से नवीनता देखी जाती हैं। भाषा तकनीक एवं विषय के प्रस्तृतीकरण में भी नवीन प्रयोगशीलता के दर्शन होते हैं।

इनकी कहानियों का अंत निष्कर्ष रहित हैं। पात्रों के द्वंद्व व रिश्तों को चित्रित कर कहानी का अंत ऐसे बिंदु पर खत्म करते है कि लगता है कहानी अधूरी हैं। पर यही तो नई कहानी की विशेषता हैं कि उसके अंत का अनुमान पाठकों पर छोड़ दिया जाता हैं।

वर्मा जी की कहानियों का मूल स्वर रोमांटिक प्रेम के तन्तुओं से निर्मित हैं। उसमें अवसाद की गहन छाया विद्यमान हैं और अनुभूति की गहन मधुरता तथा विकलता हैं। निर्मल वर्मा की परिंदे एवं लवर्स कहानियाँ इसी श्रेणी में रखी जा सकती हैं।

निर्मल वर्मा की कहानी कला

आधुनिक कथाकार निर्मल वर्मा नई कहानी के पुरोधा हैं। प्रेमचंद और जैनेन्द्र के बाद की पीढ़ी के वर्मा जी की कहानियों में अंत द्वंद्व का चित्रण इस बारीकी से हुआ है कि पाठक एक रहस्यमय सोच में डूबकर कहानी के कथ्य में गोता लगाने लगता हैं।

वातावरण प्रधान कहानियों में उन्होंने घटनाक्रम पर कम ध्यान दिया हैं। मन स्थिति के भीतर गहराई से झांका हैं। तभी तो वस्तु के नाम पर वहां बहुत कम मिलता है और पात्रों की मानसिक द्वन्द्वात्मकता अधिक उजार होती हैं।

नई कहानी और निर्मल वर्मा

एक आलोचक के अनुसार नई कहानी की अपनी निजी विशेषताएं होती हैं, क्योंकि उसकी अनुभूति भी कहानीकार की निजी ही होती हैं। एक अर्थ में वह भोगी हई होती हैं।

भोगी हुई का तात्पर्य केवल यह नहीं होनी चाहिए कि कहानीकार केवल उन्ही अनुभूतियों को शब्द देता है जिसकी पीडा से होकर वह केवल वही गुजरता है, बल्कि हमें भी यह नहीं भूलना चाहिए कि आज का कहानीकार अपने निज के स्तर पर तो अनुभुतियों को भोगता ही हैं, साथ ही वह अन्य लोगों की भी अनुभूति में साझीदार होता हैं।

अन्य की भोगी हुई यातनाओं को भी वह महसूस करता हैं और उसके सृजन पर प्रभाव डालती हैं। अतः आज का कहानीकार किसी भी सीमा में आबद्ध न होकर, हर स्थान से सामग्री का ग्रहण करता चलता हैं। उक्त कथन निर्मल जी पर पूर्णतः घटित होता हैं।

उनकी कहानियों में आत्म बोध के साथ—साथ जगत बोध का भी सटीक उभर कर सामने आया हैं। पहाड़ कहानी घटना प्रधान हैं। जिसमें ऐसे दम्पति का चित्रण हुआ है, जिसमें परस्पर प्यार तो है पर एक अज्ञात सूनापन भी हैं। जिसका कहानीकार ने कोई स्पष्टरीकरण नहीं दिया हैं।

तभी तो वे कहानी के प्रारम्भ और अंत में लिखते है मुझे सुखी दम्पति देखने अच्छे लगते है और जब एक दूसरे को चाहते भी है तो एक रहस्यमय चमत्कार सा लगता हैं। निर्मल वर्मा किसी स्कूल से सम्बद्ध नहीं है, न ही वे मार्क्सवादी या मनोविश्लेषवादी होने का दंभ भरते है, बल्कि वे तो एक अलग ही धारा के लेखक हैं।

अक्सर उनकी कहानियाँ पहाड़ी जीवन को लेकर लिखी गई हैं। जिनके पात्र देशी विदेशी दोनों प्रकार के हैं। वर्मा की कहानियों में संवेदना की गहराई, चेतन अचेतन का द्वंद्व, फ्लेशबैक, प्रतीकात्मकता, दार्शनिकता तथा मानवीय सम्बन्धों की जोड़ तोड़ अधिक देखने को मिलती है और यही उनकी कहानीकला की विशेषताएं हैं।

मनोविशलेष्णात्मकता

निर्मल वर्मा की कहानियों में अवसाद की गहन छाया व्याप्त हैं। उसमें अनुभूति की गहन मधुरता एवं विकलता हैं। मेरी प्रिय कहानियाँ पुस्तक की भूमिका में वर्मा लिखते हैं। आज सोचता हूँ तो मुझे स्वयं अपनी कहानियों की परिस्थितियाँ ज्यादा स्पष्ट रूप में याद नहीं आती, केवल एक धुँधली सी स्मृति छाया की तरह हर कहानी के साथ जुड़ी रह गई हैं। ये कहानियाँ या इनमें से अधिकांश अलग अलग टुकड़ों में काफी लम्बे अंतरालों

के बीच लिखी गई थी। पहाड़ी मकानों की एक खास निर्जन किस्म की भुतैली आत्मा होती हैं। शायद इसे वही समझ सकते हैं। जिन्होंने अपने अकेले सांय सांय करते बचपन के वर्ष, बहुत से वर्ष एक साथ पहाड़ी स्टेशनों पर गुजारे हो। इस कथन से यही प्रतीत होता है कि निर्मल वर्मा ने पहाड़ी स्थलों में काफी अधिक समय व्यतीत किया हैं, तभी तो परिदें, अँधेरे में एवं डेढ इंच ऊपर ऐसी कहानियाँ हैं जिसमें पहाड़ी वातावरण अधिक चित्रित हुआ हैं।

निर्मल वर्मा को मिले सम्मान

मूर्तिदेवी पुरस्कार

साहित्य अकादेमी पुरस्कार

ज्ञानपीठ पुरस्कार

पद्मभूषण

राम मनोहर लोहिया अतिविशिष्ट सम्मान

साधना सम्मान

साहित्य अकादेमी की महत्तर सदस्यता

आधुनिक युग में भिन्न गद्य विधाओं के उद्भव और विकास के अन्तर्गत 'कहानी गद्य – विधा का' उद्भव एवं विकास हआ। 'कहानी' एक सशक्त एवं मनोरंजक गद्य विधा है।

निर्मल वर्मा 'नई कहानी' के सर्वाधिक चर्चित कहानीकार है इन्होंने कहानी को एक नया मोड़ दिया, भारतीय लेकिन विदेशी परिवेश से प्रभावित निर्मल वर्मा प्रगतिशील एवं महत्वपूर्ण कहानीकार माने जाते रहे है।

वास्तव में किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व का बोध उसकी रचनाधर्मिता से होता है। निर्मल वर्मा की रचनाओं में कला सम्बन्धी विविधता पाई जाती है। हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी पर भी समान अधिकार रहा है। लेखक का निर्मल वर्मा कलावादी लेखक हैं। लेकिन कला का जीवन से सम्बन्ध नहीं स्वीकारते। लेखक ने अपनी रचनाओं में यथार्थ की तस्वीरें खींचते – सत्रांत, पीढ़ी, कुठा, घुटन का अनुभव भी प्रस्तुत किया है।

वास्तव में इनकी कहानियां सामान्य जीवन के अनुभवों के उन पक्षों को सामने लाती है, जिनकी ओर पहले ध्यान नहीं दिया गया था, जो सवेदनात्मक शक्ति 'अज्ञेय' को उनके पूर्ववर्तियों से अलग करता है, वैसा ही सूक्ष्म भावबोध और संवेदनशील गद्य निर्मल वर्मा को अन्य कथाकारों से अलग करता है।

सौन्दर्य की दृष्टि से निर्मल वर्मा को शिमला वाल्यकाल से ही अधिक पसन्द आया। वे अध्ययनकाल से ही कहानियां लिखते रहे है। वे केवल कथाकार ही नहीं महत्वपूर्ण एवं अग्रणी बुद्विजीवियों में गिने जाते हैं। हिन्दी साहित्य को एक नई चेतना, नई चितंन भाषा दी है। निर्मल वर्मा प्रायः आधुनिक विचारधारा के लेखक हैं। इन्होंने संस्मरण, लेख, निबन्ध, कहानी, उपन्यास एवं अनुवाद के साथ स्वतंत्र लेखन को महत्वर्ण्ण योगदान दिया है।

निर्मल वर्मा की कहानियों में व्यैक्तियता और समग्र कथा – प्रवाह ऐन्द्रिक भाषा के माध्यम से जीवन के अन्तर्तह तक जोड़ने का प्रयास है।

मध्यम वर्ग से सम्बन्धित मार्मिक अभिव्यक्ति का यथार्थ चित्रण करने वाला लेखक स्वीकृत हैं। इनके साहित्य में एकाकीपन के दर्शन भी होते हैं।

निर्मल वर्मा अनुभवी एवं शीर्षस्थ कहानीकारों में अपना रखते हैं। मानवीय संवदेना उनकी कहानियों में चित्रित है। मानवीय मूल्य, यथार्थ का चित्रण करने वाले अनुभवी कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। निर्मल वर्मा को रचना क्षेत्र विस्तृत एवं व्यापक है।

उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत – वे दिन, लाल टीन की छत, एक चिथड़ा सुख, रात का रिर्पोटर।

कहानी साहित्य के अन्तर्गत – परिन्दे संग्रह, जलती झाड़ी, पिछली गर्मियों में, बीच बहसमें , कब्जे और काला पानी, दूसरी दुनियां, मेरी प्रिय कहानियां है।

अन्य साहित्य के अन्तर्गत – निबन्ध संग्रहः – शब्द और स्मृति, कला और जोखिम, शताब्दी के डलते वर्षों में।

नाटक – तीन एकान्त

यात्रा संस्मरण – चीड़ों पर चान्दनी और हर – बारिश।

अनुवाद साहित्य के अन्तर्गत 'इतने बड़े धब्बे कहानी संग्रह का अनुवाद किया। 'डेज आफ लागिंग' उपन्यास और 'हिल स्टेशन' कहानियों का भी अनुवाद किया। बहुत सी विदेशी कहानीकारों की कहानियों का अनुवाद भी किया।

निर्मल वर्मा के व्यक्तित्व की विशेषता है कि ये यूरोपीय पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियां लिखते हैं। जिसमें प्रेमानुभय और उससे जुड़ी आकांक्षाएं केन्द्रत हैं, अस्तित्ववादी प्रभाव के कारण निर्मल वर्मा ने पश्चिमी समाज की ऊब, हताशा और अकेलापन को चित्रित किया है।

निर्मल वर्मा की कहानियों के पात्र उदासीन, अंतरंग मूल्य निरपेक्ष जीवन जीने वाले हैं। पात्रों की मानसिकता, लेखक की मानसिकता है। पाश्चात्य एवं अस्तित्ववादी दृष्टिकोण एवं वामपंथी विचारधारा का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। लेखक के कथा – साहित्य पर।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. निर्मल वर्मा ने सेंट स्टीफेंस कॉलेज दिल्ली से कौन सी उपाधि प्राप्त की?
2. 'शब्द और स्मृति' किसका निबंध संग्रह है?

15.4 'लंदन की एक रात' कहानी का सार

हिन्दी के आधुनिक कथाकारों में निर्मल वर्मा का स्थान महत्वपूर्ण है। उनकी कहानियां, अभिव्यक्ति और शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ समझी जाती हैं। हिन्दी कहानी में आधुनिक बोध लाने वाले कहानीकारों में निर्मल जी का अग्रणी स्थान है। उन्होंने कम लिखा है परंतु जितना भी लिखा है उतने से ही वे बहत ख्याति पाने में सफल हुए हैं। उन्होंने कहानी की प्रचलित कला में तो संशोधन किया ही, प्रत्यक्ष यथार्थ को भेदकर उसके भीतर पहंचने का भी प्रयत्न किया है। अपनी गंभीर, भावपूर्ण तथा अवसाद से भरी कहानियों के लिए जाने वाले निर्मल जी को हिंदी कहानी के सभी प्रतिष्ठित नामों में गिना जाता रहा है। उनके लेखन की शैली सबसे अलग और पूरी तरह से निजी थी।

निर्मल वर्मा की कहानियां आधुनिक परिवेश में व्याप्त माहौल की देन है। उनकी कहानियाँ कोई विशेष चरित्र या उद्देश्य को लेकर नहीं चलती वरन् व्यक्ति के आंतरिक यथार्थ, संघर्ष और उनकी वेदना को लेकर आगे बढ़ती हैं। उन्होंने अनेक कहानी– संग्रह लिखे हैं जैसे– परिदे (1959 ई.) जलती झाड़ी (1965 ई.)। पिछली गर्मियों में (1968 ई.), बीच बहस में (1973 ई.) आदि। जलती झाड़ी कहानी संग्रह में 'लंदन की एक रात' कहानी संग्रहित है। यह कहानी जैसा कि नाम से स्पष्ट है, विदेशी परिवेश को लेकर बेकार घूमने वाले तीन युवकों की है। इनमें से एक लेखक स्वयं है। यहां लेखक ने बेरोजगारी तथा उससे मनःस्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों को कहानी में संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। इसके बाद 'लंदन की एक रात' में वर्मा जी ने गोरों द्वारा काले विदेशियों के प्रति किए जाने वाले नृशंस व्यवहार को भी यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में बिना किसी पूर्वग्रह के उठाया है। "इस कहानी में लंदन की ठिठुरती रात है, डर है, आतंक है, बेकारी है, इसके अजनबीपन की अनुभूति भी है, भूख है, तलब है– सिगरेट पीने की, दुख है लड़की को न पाने का और इन सबसे अलग रंगभेव का अहसास भी है।"

इस कहानी में निर्मल वर्मा जी ने असंख्य ऐसे नवयुवकों का वर्णन किया है जो रोजगार की तलाश में अपना देश छोड़कर यूरोपीय देशों की ओर पलायन करते हैं, लेकिन वहां भी उन्हें कोई रोजगार प्राप्त नहीं होता। कहानी में इस स्थिति को इस प्रकार दर्शाया गया हैं –

1. ''कल पन्द्रह मिनट पहले आ जाना। अगर कुछ लोग कल नहीं आए तो तम्हें ले लिया जाएगा।''

2. वहां पहले से ही बीस – पच्चीस बेरोजगार युवकों की भीड़ जमा थी।' इस प्रकार स्पष्ट है कि बेरोजगारी की स्थिति इतनी दयनीय स्तर पर है कि दूसरे देश में भी रोजगार मिल पाना असंभव है।

'लंदन की एक रात', जलती झाड़ी' संग्रह की बहुत ही महत्वपूर्ण कहानी है जिसमें कथानायक के अतिरिक्त विली तथा जार्ज जैसे युवक है जो तीन – तीन दिनों तक काम न मिल पाने पर लंदन के एक पब में आकार बैठ गए हैं। पब का मालिक इटेलियन है। विली एक गोरी लडकी के साथ नाचता हैं जिसे गोरे लोग बर्दाश्त नहीं करते। इस पर नीग्रो विली मारपीट करता है। प्रस्तत कहानी में अंग्रेज़ी समाज के बीच रंग – भेद की नीति तथा काले लोगों के प्रति गोरों की घृणा को बहुत ही गहराई से अंकित किया गया है।

"लंदन की एक रात' कहानी में युवक आर्थिक अभाव के कारण होटल में काम पूछने बार–बार जाते हैं, परंतु होटल का मालिक कहता है – "आज इतना ही उन्होंने सहानुभूतिपूर्ण भाव से हमारी ओर देखा, आप लोग कल आइए, शायद कुछ आदमियों की जरूरत पड़ेगी।' इस प्रकार आर्थिक अभाव बेकारी का निर्माण करता है और निराशा भी उत्पन्न करता है। इससे आदमी आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाता है।

15.4.1 निर्मल वर्मा की कहानियों की विशेषताएं

निर्मल वर्मा एक ऐसे कहानीकार है जो अपना परिवेश रचते हुए कभी भी तार्किकता और बौद्धिकता का साथ नहीं छोड़ते। कहानी उनके यहां समस्याओं के बीच जन्म लेती हैं। अधिकांश कहानियों के केन्द्र में हमें प्रतिक्षण अकेले हो रहे मनुष्य की अवधारणा मिलती है। अकेला मनुष्य केवल यूं ही नहीं उनकी कहानियों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराता चलता है बल्कि लेखक इसकी बारीकियों को अपने निबंधों में बतलाते हैं। हम जानते हैं कि लेखक अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा विदेशों में गुजारते हैं। विदेशी जीवन की क्षणभंगुरताएं उन्हें आकर्षित करती जरूर हैं परंतु बहुत कम समय के लिए। इसी प्रकार मार्क्सवाद से भी उनको जल्दी ही मोहभंग हो जाता है। वस्तुतः वर्मा जी भारतीय परंपरा के जबर्दस्त हिमायती थे। विदेशों में रहकर उनकी भारतीयता की जड़ें मजबूत हुई हैं। जिन वस्तुओं की और उनकी निगाहें पहले भारत से नहीं जाती थीं, उन्हीं वस्तुओं की ओर उनकी निगाहें विदेशी प्रभाव के बाद जाने लगीं।

निर्मल वर्मा के नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं –

1. परिन्दे (1959 ई.), 2. पिछली गर्मियों में (1959 ई.). 3. बींच बहस में (1973 ई.), 4. मेरी प्रिय कहानियां (1973), 5. जलती झाड़ी (1965 ई.). 6. एक चिथड़ा सुख (1979 ई.). 7. कच्चे और काला पानी (1983 ई.). 8. प्रतिनिधि कहानियां (1988 ई.) 9. सूखा तथा अन्य कहानियां (1995 ई.)।

इन नौ कहानी संग्रहों के अध्ययन विवेचन क उपरात कहानी – कला की दृष्टि से निर्मल वर्मा की कहानियों की निम्नलिखित विशेषताएं निर्दिष्ट की जा सकती हैं–

1. मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी – निर्मल वर्मा ने यथार्थ के बदलते परिवेश की आंतरितता को अनुभव के अनेक स्तरों पर रेखांकित किया है। कई स्थलों पर निर्मल वर्मा का यथार्थ फ्रायड के चिंतन पर आधारित कहा जा सकता है। आत्मपरकता का पुट उनकी कहानियों में अधिक दिखाई देता है। वैयक्तिक चेतना के चलते इनकी कहानियों में अनुभव का कम्पन–सा प्रतीत होता है। डा. नामवर सिंह ने निर्मल वर्मा की कहानियों को 'अतीत की स्मृति' कहा है। उनकी कहानियों के विभिन्न पात्र और उनकी मनःजीवन के अनुभव को आत्मिक सच्चाई को अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से चित्रित किया है। उनको कहानियों के कथानक भाव स्थितियों एवं संवेदना के विभिन्न रूपों

की धडकनों को प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियों में व्यक्ति के अंतर्मन की स्थितियां, यथार्थ के क्षणों एवं एकांत अनुभूतियों का चित्रण अधिक हुआ है। इस दृष्टि से वर्मा जी की कहानियों का अलग तेवर हैं जो नयी कहानी की व्यक्तिपरक चेतना को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। वस्तुतः जब तक उनकी कहानियों की आंतरिक जगत का विश्लेषण नहीं किया जाएगा तब तक उनकी कथा चेतना का भली प्रकार से आकलन नहीं किया जा सकता है।

2. अंतर्द्वन्द्व का चित्रण— आधुनिक कथाकार निर्मल वर्मा नई कहानी के पुरोधा हैं। प्रेमचंद तथा जैनेन्द्र कुमार के बाद की पीढ़ी के वर्मा जी की कहानियों में अंतर्द्वन्द्व का चित्रण इस बारीकी से हुआ है कि पाठक एक रहस्यमय सोच में डूबकर कहानी के कथ्य में गोता लगाने लगता है। वातावरण प्रधान कहानियों में उन्होंने घटनाक्रम पर कम ध्यान दिया है। मनःस्थिति के भीतर गहराई से झांका है, तभी तो वस्तु के नाम पर वहां बहुत कम मिलता है तथा पात्रों की मानसिक द्वंद्वात्मकता अधिक उजागर होती है।

3. अकेलापन— निर्मल वर्मा की कहानियां अकेलेपन में जी रहे व्यक्ति के अंतर्मन की अनुभूतियों को इंगित करती हैं। उनकी कहानियों के पूरे संग्रह में अकेलेपन, रोमाटिंकसिमको और काम के संवेदना भरी पड़ी है। कहानी संग्रहों में जीवन की उन अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी गई है जिन्हें एकान्तिक अनुभूतियां कहते हैं जो अंतर्मुखी और व्यक्तिपरक होती हैं। उनका प्रकाश बाहवं ही जातरिक होता है। समाज के स्थूल ओर बहुमुखी यथार्थ की खोज वास्तविकताओं को विश्रण को विपरीत वर्मा जी की अन्तः चेतना आधुनिक संदों में व्याप्त माहौल और उसको अनुभूतियों का सामने लाती है। उनकी कहानियों में पीड़ा, यातना, उदासी, अकेलापन, एकांत, त्रासदी, राजरिये शब्द बिखरे पड़े रहते हैं। उनके लिखने में एक लय है, उदासी भरी लय जिनको पढ़ने से एक अलग किस्म की गहराई और सुकन का एहसास होता है। उनकी कहानियां पढ़ने से ऐसा लगता है कि, हम खुद से ही बातें कर रहे हैं। उन्होंने अकेलेपन, अलगाव और उदासी की भावना को कहानी का अहम हिस्सा बना दिया। उनके किरदार अक्सर उदासी और अकेलेपन में डूबे रहते हैं। इसीलिए उन्हें अकेलेपन का कवि भी बताया जाता है — निर्मल वर्मा "अ पोएट ऑफ लॉनलीनेस।"

4. भारतीय एवं विदेशी परिवेश— निर्मल वर्मा के जीवन का एक हिस्सा विदेशों में व्यतीत हआ है। इसीलिए उनकी कहानियों में विदेशी प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है। उनकी कहानियों को पढ़ते समय पाठक एक अजीब किस्म के वातावरण में विचरण करता है। वातावरण में प्रकृति का एक अनूठा प्रयोग किया गया है। प्रकृति के बिम्ब पाठक को बहाए चलते हैं। यह वातावरण कहीं स्वदेशी और कहीं विदेशी से प्रतीत होने लगता है। 'परिन्दे', 'लंदन की एक रात', 'पराए शहर में', 'जलती झाड़ी और 'पिक्यर पोस्टकार्ड' आदि कहानियों में कुछ इसी प्रकार की आबोहवा है।

डॉ. गोरधन सिंह शेखावत के अनुसार, "कथा रचना की दृष्टि से निर्मल वर्मा की कहानियां वातावरण में लिपटी हई हैं, वहां न घटनाएं हैं और न कथावस्तु का अनावश्यक विस्तार। उनकी अधिकांश कहानियां भाव दशा का संकेत करने वाली हैं। यह भाव दशा यथार्थ के दबाव में उत्पन्न स्थतियों का सक्ष्म रूप है। निर्मल वर्मा की कहानियों में यह भाव दशा रूमानियत और भावुकता लिए हुए है। कहीं —कहीं अवश्य ही यह भावुकता अधिक मात्रा में दिखाई पड़ती है।

5. वैयक्तिक समस्याओं का चित्रण — डॉ. एकदरश मिश्र के अनुसार — "निर्मल वर्मा के कथा साहित्य का मुख्य स्वर क्या है जो नयी कहानी को एक नया आयाम और उपलब्धि देने का भ्रम पैदा करता है। वह स्वर है मन की संक्रांत, भावात्मक और वैचारिक जटिल पर्तों को मद्धिम — मद्धिम काव्यात्मक अदा से खोलते चलने का कौशल।'' निर्मल वर्मा ने अपनी कहानियों में मन की परतों को परत — दर — परत खोला है। आधुनिक परिवेश में सामाजिक समस्याएं व्यक्ति तक जाकर रुकती हैं। यही समस्याएँ व्यक्ति को बेचैन करती रहती हैं। टूटन, बिखराव, कुंठा, कामकुंठा, घुटन, संत्रास, भटकाव, भय अकेलापन और मारपीट आदि समस्याएं आधुनिक

मनुष्य के लिए अभिशाप है। वर्तमान समाज की संरचना में इस प्रकार की समस्याओं का पैदा होना स्वाभाविक ही है। निर्मल वर्मा ने इन्हीं समस्याओं को अपने साहित्य का विषय बनाया है। पात्र समस्याओं से अकेले जुझते नजर आते हैं। प्रेमी – प्रेमिका अपनी मंजिल तक नहीं पहंच पा रहे हैं और यही मंजिल तक न पहंच पाना ही उन्हें कुंठाग्रस्त बना देता है। निर्मल वर्मा की कहानियों का परिवेश विदेशी होने के कारण भी ये समस्याएं व्यापक स्तर पर अभिव्यक्त होती हैं। वर्मा जी की 'लवर्स ', 'अंतर', 'लंदन की एक रात', 'जलती झाड़ी' आदि कहानियों में वैयक्तिक समस्याओं को अलग अंदाज में चित्रित किया गया है।

6. कथ्य की नवीनता – निर्मल वर्मा एक प्रयोग धर्मी कथाकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में नए–नए प्रयोग किए हैं। रहस्यमयता का प्रयोग कहानी में नवीनता पैदा करता है। डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार, ''रहस्यमयता निर्मल वर्मा की कहानियों में सर्वत्र लक्षित होती है। यह रहस्यमयता ही है जो निर्मल वर्मा की कहानियों को आम आदमी की कहानी या आदमी की आम कहानी के खुलेपन के अभिशाप से वंचित कर एक जटिलता और गहराई का वरदान देती है। हाँ, यह तब तक वरदान ही हैं जब तक हिन्दी का पाठक और आलोचक इस रहस्यमयता के छल से अभिभूत रहता है। जिस दिन इन कहानियों में सामाजिक जीवन की गहरी किन्तु खुली हुई तस्वीर ढूँढेगा उस दिन वह छल के प्रति इस मुवा के प्रति उदासीनता का अनुभव करेगा।

निर्मल वर्मा की कहानियों के पात्र एक रहस्यमय थी जिंदगीं जीते हैं। वे अपनों से भी कछ रहस्य रखते हैं। 'डेढ इंच ऊपर' निर्मल वर्मा की एक रहस्यमयता परिपूर्ण प्रसिद्ध कहानी है। वस्तुतः निर्मल वर्मा अपनी कहानियों में नवीन प्रयोग करने में हिचक महसूस नहीं करते।

7. शिल्पगत विशेषताएं – कथ्य की नवीनता के साथ – साथ निर्मल वर्मा की कहानियों के शिल्प सें भी नवीनता है। उनकी कहानियों की कलात्मक बुनावट ऊपर से सहज एवं मोहक होते हुए भी दुरुह एवं जटिल है। बनावट की कलात्मकता के कारण उनकी कहानियों में परिवेश, परिस्थित्तियों और पात्र सब अपने आपमें इस प्रकार घुल – मिल जाते हैं कि पाठक केवल मधुर स्मृति का आभास महसूस करने लगता है। रचनात्मकता का समग्र प्रभाव वर्मा जी की कहानियों की अपनी एक विशेषता है। उनकी उस कहानियों में संगीत का प्रभाव भी देखने को मिलता है।

वर्मा जी की कहानियों में बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग कहानियों में कथात्मकता का पुट भर देता है। प्रतीक और बिम्बों में एक रोमानियत के साथ शिल्प की मिठास है। वे तत्सम और तद्‌भव शब्दों के बीच अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बहुतायत में करते हैं। उनकी लगभग सभी कहानियों में लगभग पांच – दस शब्द अंग्रेजी के मिल जाएंगे, परन्तु यह तथ्य स्मरणीय है कि ये अंग्रेजी के शब्द उनकी पात्र–योजना के अनुरूप हैं जो अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होते। वे बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग आअधिक करते हैं। इसी कारण : भाषा में काव्यात्मकता का गुण आ गया है। प्रतीकों का प्रयोग, शिल्प में नवीनता पैदा करता है। परिन्दें कहानी में 'परिन्दे' प्रतीक हैं। उन टूटे हुए प्रेमियों के जो अपनी – अपनी जगह से टूटकर उस पहाड़ी स्थान पर एकत्रित हो गए हैं। लतिका, डॉक्टर मुखर्जी, मिस्टर ह्यूबर्ट सभी परिंदे ही तो हैं। इन परिन्दों का मन परिन्दों की भांति कल्पना में उड़ तो सकता है परंतु ये परिंदे अलग – अलग होते हुए भी इसी पहाड़ी पर रहने के लिए अभिशप्त है। 'लंदन की एक रात' कहानी में अंग्रेजी के शब्दों की भरमार है जैसे – सूट, मिल, टयूब, स्टेशन, मैनेजर, वेस्ट इंड़ीज, टिकट, टुमारो, डबल डैकर, विलेन, वर्जिनिटी, सिविल वार, लाइक टिप, गिलास, रियल लाइफ, बाउंटर, टायलेट, इड़ियट, पाउडर, चिप्स, आर्डर आदि। उर्दू के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जैसे – बेडौल, बेतुके, दायरा, बौखलाहट, पैबंद, खुद – ब –खुद, मुद्दत, ब्यौरेवार आदि। निर्मल वर्मा की कहानियों को डॉ. नामवर सिंह ने 'शुद्ध गद्य' माना है। वे आगे कहते हैं – "ठेठ वाचक शब्द विशेषणहीन संज्ञाएं, उपमा रहित पद तथा स्वतंत्र वाक्य अलग – अलग देखने पर हर शब्द मामूली, हर वाक्य साधारण, लेकिन प्रभाव जबर्दस्त। गद्य की रुखाई में भी वे स्थितियों को अनुरोध से कवितापूर्ण प्रभाव उत्पन्न कर लेते हैं।'

निष्कर्षतः – निर्मल वर्मा का महत्व नयी कहानी में इस कारण से है कि उन्होंने नयी कहानी में एक नया सुर जोड़ा है और वह नया सुर है – कथ्य और शिल्प की नवीनता। वर्मा जी ने मानवीय संवेदनाओं को यथार्थवादी दृष्टिकोण के माध्यम से चित्रित किया है। कथ्य में नवीनता के साथ – साथ उनकी कहानियों के शिल्प में भी नवीन प्रयोग हुए हैं। वर्मा जी की यही विशेषताएं उन्हें दूसरों से अलग करती हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'लंदन की एक रात' में मूलरूप से कितने पात्र हैं?
2. 'निर्मल वर्मा का यथार्थ किसके चिंतन पर आधारित है?

15.5 सारांश

अतः कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा हिन्दी के आधुनिक कथाकारों में एक मुर्धन्य कथाकार और पत्रकार थे। शिमला में जन्में निर्मल वर्मा को मूर्तिदेवी पुरस्कार, साहित्य अकादमी प्रस्कार, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान पुरस्कार और ज्ञानपीठ प्रस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। निर्मल वर्मा को नयी कहानी विधा का प्रणेता माना जाता है।

15.6 कठिन शब्दावली

असाधारण – असामान्य

स्वर्गवास – मरण, जीवन का अंत

व्याति – प्रसिद्धि, यश

15.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. एम.ए. इतिहास
2. निर्मल वर्मा

अभ्यास प्रश्न–2

1. तीन
2. फ्रायड

15.8 संदर्भित पुस्तकें

1. डॉ० नरेन्द्र मोहन, समकालीन कहानी की पहचान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. निर्मल वर्मा, जलती झाडी (कहानी संग्रह), वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

15.9 सात्रिक प्रश्न

1. निर्मल वर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. निर्मल वर्मा की कहानियों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

*****

इकाई–16
मन्नू भंडारी : जीवन और साहित्य

संरचना

16.1 भूमिका
16.2 उद्देश्य
16.3 मन्नू भंडारी जीवन और साहित्य
16.3.1 जीवन परिचय
16.3.2 साहित्यिक परिचय
स्वयं आकलन प्रश्न–1
16.4 'अकेली' कहानी का सार
16.4.1 'अकेली' कहानी का प्रतिपाद्य
स्वयं आकलन प्रश्न–2
16.5 सारांश
16.6 कठिन शब्दावली
16.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
16.8 संदर्भित पुस्तकें
16.9 सात्रिक प्रश्न

16.3 भूमिका

इकाई पन्द्रह में हमने निर्मल वर्मा के जीवन परिचय और उनकी कहानी 'लंदन की एक रात' कहानी का अध्ययन किया। इकई सोलह में हम मन्नू भंडारी के जीवन एवं साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। मन्नु भंडारी द्वारा रचित कहानी 'अकेली' के सार एवं उद्देश्य का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

16.2 उद्देश्य

इकाई सोलह का अध्ययन करने के पश्चात हम् यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. मन्नू भंडारी का जीवन परिचय क्या है?
2. मन्नू भंडारी का साहित्यिक परिचय क्या है?
3. अकेली' कहानी का सार क्या है?
4. 'अकेली' कहानी का उद्देश्य क्या है?

16.3 मन्नू भंडारी : जीवन और साहित्य

16.3.1 जीवन परिचय

मन्नू भंडारी हिंदी की आधनिक कहानीकार और उपन्यासकार है। मध्य प्रदेश के भानपुरा नगर में 1931 में जन्मी मन्नू भंडारी को श्रेष्ठ लेखिका होने का गौरव हासिल है। मन्नू भंडारी ने कहानी और उपन्यास दोनों विधाओं में कलम चलाई है। राजेंद्र यादव के साथ लिखा गया उनका उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' पढ़े –लिखें और आधुनिकता पसंद लोगों की दुखभरी प्रेमगाथा है। विवाह टूटने की त्रासदी में घुट रहे एक बच्चे को केंद्रीय विषय बनाकर लिखे गए उनके उपन्यास आपका 'बंटी' को हिंदी के सफलतम उपन्यासों की कतार में रखा जाता

है। आम आदमी की पीड़ा और दर्द की गहराई को उकेरने वाले उनके उपन्यास 'महाभोज' पर आधारित नाटक खुब लोकप्रिय हुआ था। इनकी 'यही सच है' कृति पर आधारित 'रजनीगंधा फिल्म' ने बॉक्स ऑफिस पर खब धूम मचाई थी।

मन्नू भंडारी ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा अजमेर से पूरी की, कलकत्ता यूनिवर्सिटी से ग्रेजुएट हुए और फिर हिंदी भाषा और साहित्य में एम. ए. की डिग्री हासिल करने के लिए वे हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी गयी। भण्डारी हिन्दी लेखक राजेन्द्र यादव की पत्नी थी।

व्यावसायिक करियर (Mannu Bhandara Professional Career)

उन्होंने हिंदी प्रोफेसर के रूप में अपने करियर की शुरुआत की थी। 1952 –1961 तक उन्होंने कोलकाता बालीगंज शिक्षण सदन में, 1961–1965 तक कोलकाता रानी बिरला कॉलेज में 1964–1991 तक मिरांडा हाउस कॉलेज, दिल्ली यूनिवर्सिटी में पढ़ाती थी और फिर 1992–1994 तक वे विक्रम यूनिवर्सिटी उज्जैन प्रेमचंद सृजनपीठ में डायरेक्टर थी।

16.3.2 साहित्यिक परिचय (Mannu Bhandari Literary Career)

आजादी के बाद भारत की मुख्य लेखिकाओं में से एक थी। जो 1950 से 1960 के बीच अपने–अपने कार्यों के लिए जानी जाती थी। सबसे ज्यादा वह अपने दो उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध थी। पहला आपका बंटी ओर दूसरा महाभोज नयी। कहानी अभियान और हिंदी साहित्यिक अभियान के समय में लेखक निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, भीषम साहनी, कमलेश्वर इत्यादि ने उन्हें अभियान की सबसे प्रसिद्ध लेखिका बताया था।

1950 में भारत को आजादी मिले कुछ ही साल हुए थे, और उस समय भारत सामाजिक बदलाव जैसी समस्याओं से जुझ रहा था। इसीलिए इसी समय लोग नयी कहानी अभियान के चलते अपनी – अपनी राय देने लगे थे। जिनमे भंडारी भी शामिल थी। उनके लेख हमेशा लैगिक असमानता और वर्गीय असमानता और आर्थिक असमानता पर आधारित होते थे।

नाटक "बिना दीवारों का घर" (1966) विवाह विच्छेद की त्रासदी में पिस रहे एक बच्चे को केंद्र में रखकर लिखा गया उनका उपन्यास "आपका बंटी" (1971) हिन्दी के सफलतम उपन्यासों में गिना है। लेखक और पति राजेंद्र यादव के साथ लिखा गया उनका उपन्यास "एक इंच मुस्कान'' (1962) पड़े –लिखे आधुनिक लोगों की एक दुखांत प्रेमकथा है जिसका एक एक अंक लेखक – द्वय ने क्रमानुसार लिखा था।

मन्नू भंडारी हिन्दी की लोकप्रिय कथाकारों में से हैं। नौकरशाही में व्याप्त भ्ष्टाचार के बीच आम आदमी की पीड़ा और दर्द की गहराई को उद्घाटित करने वाले उनके उपन्यास "महाभोज" (1979) पर आधारित नाटक अत्यधिक लोकप्रिय हुआ था।

इसी प्रकार "यही सच है'' पर आधारित "रजनीगंधा'' नामक फिल्म अत्यंत लोकप्रिय हुई थी और उसको 1974 की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था इसके अतिरिक्त उन्हें हिन्दी अकादमी दिल्ली का शिखर सम्मान, बिहार सरकार, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, व्यास सम्मान और उत्तर–प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा पुरस्कृत किया गया।

मन्नू भंडारी के मुख्य रचनाएँ (Compositions of Mannu Bhandari)

कहानी–संग्रह

- एक प्लेट सैलाब
- मैं हार गई
- तीन निगाहों की एक तस्वीर
- यही सच है।

- त्रिशंकु
- श्रेष्ठ कहानियों
- आंखों देखा झूठ

उपन्यास

- आपका बंटी
- महाभोज़
- स्वाभी
- एक इंच मुस्कान
- कलवा

फिल्म पटकथाएँ

- रजनीगंधा
- निर्मला
- स्वामी
- दर्पण

नाटक

- बिना दीवारों का घर (1966)
- महाभोज का नाट्य रूपान्तरण (1983)

आत्मकथा

- एक कहानी यह भी (2007)
- प्रौढ़ शिक्षा के लिएः सवा सेर गेहूं (1993)

पुरस्कार

- महाभोज 1980–1981 के लिए उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान (उत्तर प्रद्ेश हिंदी) ।
- भारतीय भाषा परिषद् (भारतीय भाषा परिषद), कोलकाता, 1982 ।
- कला – कुंज सम्मान (पुरस्कार), नई दिल्ली, 1982।
- भारतीय संस्कृत संसद कथा समारोह (भारतीय संस्कृत कथा कथा), कोलकाता, 1983।
- बिहार राज्य भाषा परिषद (बिहार राज्य भाषा परिषद), 1991 ।
- राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, 2001–02 ।
- महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी (महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी), 2004 ।
- हिंदी अकादमी, दिल्ली श्लाका सम्मान, 2006–07 ।
- मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन (मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन), भवभूति अलंकरण, 2006–07।
- के.के. बिडला फ़ाउडेशन ने उन्हें अपने काम के लिए 18 वें व्यास सम्मान के साथ प्रस्तुत किया एह कहानी यहे भी, एक आत्मकथात्मक उपन्यास।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. मन्नू भण्डारी के पति कौन थे?
2. मन्नू भण्डारी ने एम.ए. की उपाधि कहां से प्राप्त की?

16.4 अकेली कहानी का सार

सोमा बुआ बुढ़िया परित्यक्ता और अकेली है। बुढ़िया सोमा बुआ पिछले बीस वर्षों से अकेली रहती हैं। उनका इकलौता जवान बेटा हरखु समय से पहले ही चल बसा। उनके पति पुत्र वियोग का सदमा सह न सके तथा घर छोड़ कर तीर्थवासी हो गये। सोमा बुआ के सन्यासी पति साल में एक महीना घर आते..... है। बुआ को अपना जीवन पड़ोस वालों के भरोसे ही काटना पड़ता है। दूसरों के घर के सुख – दुख के सभी कार्यक्रमों में वह दम टूटने तक यों काम करती हैं, मानो वह अपने ही घर में काम कर रही हो। जब बुआ के पति घर पर होते है। तब बुआ का अन्य घरों में सक्रिय बना रहना बंद हो जाता है। तब उनकी जीभ ही सक्रिय हो उठती है। पड़ोसन राधा के समक्ष बुआ मन का गुबार निकालती है राधा के यह पूछने पर कि सन्यासी महाराज क्यों बिगड़ पड़े ? बुआ बोल पडती है कि उनका औरों के घर आना जाना उनके पति को नहीं सुहाता। पति का स्नेहहीन व्यवहार तथा बुआ के पास पड़ोस से बिन बुलाये निभाए जाने वाले व्यवहारों पर पति द्वारा लगाया जाने वाला अंकुश उन्हें कष्ट देता है। पति से होने वाली कहा सुनी पर बुआ रोने लगती है। वे राधा से कहती हैं कि, 'ये तो हरिद्वार रहते है मुझे तो सबसे निभानी पड़ती है। मेरा अपना हरखू होता और उसके घर काम होता तो क्या मैं बलावे के भरोसे बैठी रहती। मेरे लिए जैसा हरखू वैसा किशोरीलाल। आज हरखू नहीं है इसी से दूसरे को देख देखकर मन भरमाती रहती हूँ।'' दरअसल सोमा बुआ अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए सबसे जुड़ना चाहती है इसलिए बिन बुलाये ही सबके घर जाकर काम में जुट जाती हैं। जैसे – "अमरक के बिखरे हुए कल रह –रहकर धूप में चमक जाते है ठीक वैसे ही जैसे किसी को भी गली में घुसता देख बुआ का चेहरा चमक उठता है। मन के बहलने प्रसंगों को वह तलाशती रहती है। कहीं थोड़ी देर क लिए बहल जाता है तो कहीं फिर से गहरी चोट मिल जाती है।''

जिन दिनों उनके पति आये हुए होते है उसी समय सोमा बुआ के दूर के रिश्ते में किसी का ब्याह पड़ जाता है। बुआ की आदत को जानते हुए उनके पति साफ निर्देश देते है कि जब तक उनके घर से न्यौता न आये सोमा बुआ वहां नहीं जाएँगी। उनकी विधवा नन्द उनके जख्मों पर नमक छिड़कते हुए झूठ ही कहती हैं कि निर्माण की लिस्ट में बुआ का भी नाम है बुआ न्यौते का इंतजार करती है साथ ही मन में न्यौते की प्रसन्नता लिए ब्याह में भेंट देने के जुगाड़ में भी लग जाती है। वे लोग पैसे वाले हैं साथ ही दूर के रिश्तेदार भी। यूं तो सामाजिक बन बनाना मर्दों का काम है, किन्तु सोमाबुआ मर्द वाली होकर भी बेमर्द की है इसलिए ब्याह में भेंट देने के लिए अपने मरे हए बेटे की एकमात्र निशानी 'सोने की अंगूठी' बेचवाकर पड़ोसन राधा से चांदी की सिंदूरदानी तथा साड़ी ब्लाउज का इंतजाम करवाती हैं। अपने हाथों में लाल – हरी चूड़ियां पहन कर जाने वाल साड़ी को पीले रंग मांड कर बुआ पांच बजे के मुहूर्त के निमंत्रण का इंतजार करने लगती है। सात बज जाते है किन्तु निमंत्रण न आने पर वह दुःखी हो जाती है। इतनी तैयारियों के साथ पल पल निमंत्रण के इंतजार के बाद बुआ को विश्वास ही नहीं होता कि सात कैसे बज सकते है जबकि मुहूर्त पांच बजे का था। सोम बुआ को व्याह का बुलावा नहीं आया था। ऐसे ही उन्हें किसी के घर से बुलावा नहीं आता फिर भी बुआ बिन बुलायें ही चली जाती।

इस कहानी में हुआ एक ऐसा चरित्र है जो सामाजिक संबंधों को निरंतर बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। आज भी उनके मन में परंपरागत अधिकार को बनाए रखने का मोह है। जिसके लिए वह अपने को गाँव वालों से जोड़ें रखती हैं। कहानी में मन्नू जी ने आधुनिक परिवेश में व्यक्तिवादिता और उपयोगितावादिता को प्रस्तुत किया है। आज पारस्परिक संबंधों में जैसे दरार सी पड़ गई है। विशेषतः दीन और दुःखी लोगों के साथ कोई अपना रिश्ता बनाए रखना नहीं चाहता। व्यक्ति का एकाकीपन आधुनिक समाज का शाप है।

16.4.1 'अकेली' कहानी का प्रतिपाद्य

वस्तुतः पति–पत्नी सुख –दुख के सहचर होते हैं पर बुआ की व्यथा यह है कि जिसके साथ वह निज दुःख बांट सके वहीं उन्हें दुखी कर देता है। बुआ के सन्यासी पति की उपस्थिति में उनकी जीवन गति का निषेध हो जाता है। उनका घूमना फिरना, मिलना जुलना बंद हो जाता है अर्थात् जिंदगी ठहर कर सन्यासी जी के इर्द–गिर्द केद्रित हो जाती है। सामाजिकता से कट जाना और पति का संग साथ भी न मिल पाना दुखी और अकेली सोमा बुआ के लिए बोझिल बन जाता है लेकिन सन्यासी जी को बुआ के दुःख से कोई सरोकार नहीं है, बल्कि किसी बात पर ताने मार कर वे उन्हें नियंत्रित करने का प्रयत्न भी करते रहते हैं। पति के जाते ही सोमा बुआ, की दिनचर्या का यह रुका बांध फूट जाता है और आस पड़ोस के सुख–दुःख में शामिल होकर अपना जीवन काटने की कोशिश में जुट जाती है। दुःसह पति संग और पुत्र – वियोग दोनों को भुलाने का उपाय भी बुआ के पास अपने श्रम के बल पर समाज में शामिल होने का प्रयत्न में छूपा है। इसलिए बुआ किसी के बलावे का इंतजार नहीं करती। बिन बुलावे के उनकी उनकी उपस्थिति बड़ी मर्मभेदक है। बुलावा ना भेजने पर वे पड़ोस को माफ कर देती हैं और उपाय कर देना एक तरह से स्वयं को दिलासा देना है। इस दिलासे में भी अपना होना भी खोजती चलती है। विचारे इतने हंगामे में बुलाना भूल गए तो मैं भी मान करके बैठ जाती? मैं तो अपनेपन की बात जानती हूँ...... आज हरखू नहीं...... इसी से दूसरों को देख – देखकर मन भरमाती रहती हं। लाख उपेक्षा के बावजूद यह पास – पडोस ही है, जो बुआ के जीने का सहारा है ना कि पति का संग साथ।

पति की दुनिया समानांतर संसार है जिसमें पत्नी की जगह नहीं है परंतु गृहणी धर्म में उनकी जरा भी लापरवाही सन्यासी जी को बर्दाश्त नहीं है। वे वैरागी जरूर है पर खासे दुनियादार भी है समाज को अच्छी तरह समझाते तो हैं पर मनुष्य के सुख–दुःख में शामिल नहीं होना चाहते बल्कि सन्यास लेकर पुत्र शोक से उत्पन्न पार्थ की समस्याओं से भागते ही हैं। अपने दुख को वे सन्यास में महिमामंडित करके जी रहे हैं और सोमा बुआ का दुःख इसके लिए उनके पास सांत्वना का कोई शब्द नहीं हैं। इस तरह घर और समाज दोनों तरफ से बुआ के हिस्से में अकेलापन हो आता है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'अकेली' कहानी की मूल पात्र कौन हैं?
2. 'सन्यासी जी' का सोमा बुआ से क्या संबंध था?

16.5 सारांश

अतः कहा जा सकता है कि मन्नू भंडारी हिन्दी की सुप्रसिद्ध कहानीकार थी। मध्यप्रदेश में मदसौर जिले के भानपुरा गांव में जन्मी मन्नू का बचपन का नाम महेन्द्र कुमारी था। लेखक के लिए उन्होंने मन्नू नाम का चुनाव किया। उन्होंने एम. ए. तक शिक्षा पाई और वर्षों तक दिल्ली के मिरांडा हाउस में अध्यापिका रही।

16.6 कठिन शब्दावली

अमंगल – अशुभ, कल्याण

पुरातत्व – पुरालेखो

मानक – मापदंड

स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. राजेन्द्र यादव
2. हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अभ्यास प्रश्न–2

1. सोमा बुआ
2. पति

16.8 संदर्भित पुस्तकें

1. मन्नू भंडारी, अकेली, रेमाधव पब्लिकेशन प्रा.लि., गाजियाबाद उत्तर प्रदेश।
2. डॉ. नरेन्द्र मोहन, समकालीन कहानी की पहचान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

16.9 सात्रिक प्रश्न

1. मन्नू भण्डारी के जीवन तथा साहित्यिक जीवन पर प्रकाश डालिए।
2. तत्वों के आधार पर 'अकेली' कहानी की समीक्षा कीजिए।
3. मन्नू भण्डारी की कहानियों की विशेषताएं बताइए।

*****

इकाई—17
उषा प्रियंवदा का जीवन और साहित्य

संरचना

17.1 भूमिका
17.2 उद्देश्य
17.3 उषा प्रियंवदा का जीवन और साहित्य
17.3.1 जीवन परिचय
17.3.2 साहित्यिक परिचय
स्वयं आकलन प्रश्न—1
17.4 'वापसी' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन
17.4.1 'वापसी' कहानी का सार
स्वयं आकलन प्रश्न—2
17.5 सारांश
17.6 कठिन शब्दावली
17.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
17.8 संदर्भित पुस्तकें
17.9 सात्रिक प्रश्न

17.1 भूमिका

इकाई सोलह में हमने मन्नू भण्डारी के जीवन परिचय और उनकी कहानी 'अकेली' का अध्ययन किया। इकाई सत्रह में हम उषा प्रियंवदा के जीवन एवं साहित्यियिक परिचय का अध्ययन करेंगे। उषा प्रियंवदा द्वारा रचित कहानी 'वापसी' के सार एवं उद्देश्य का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

17.2 उद्देश्य

इकाई सोलह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि —

1. उषा प्रियंवदा का जीवन परिचय क्या है?
2. उषा प्रियंवदा का साहित्यिक परिचय क्या है?
3. 'वापसी' कहानी का सार क्या है?
4 'वापसी' कहानी का उद्देश्य क्या है ?

17.3 उषा प्रियंवदा का जीवन और साहित्य

17.3.1 जीवन परिचय

पूरा नाम	उषा प्रियंवदा
जन्म	24 दिसंबर, 1930
जन्म स्थान	कानपुर
पहचान	उपन्यासकार, कहानीकार

सम्मान	2007 में केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा पद्मभूषण
यादगार कृतियाँ	जिंदगी और गुलाब के फूल', 'एक कोई दूसरा', 'पचपन खंभे', 'लाल दीवारें' आदि 'पहला पाठ', 'भटकती राख'

जीवन परिचय

24 दिसम्बर 1930 को कानपुर में इनका जन्म हुआ था। लम्बे समय तक अमेरिका में प्रवास बिताया, वर्तमान में स्वतंत्र लेखन कार्य कर रही हैं। उषा प्रियंवदा ने अंग्रेजी में शिक्षा प्राप्त करने के बाद श्रीराम कॉलेज दिल्ली, इलाहबाद विश्वविद्यालय विस्कां सिन विश्वविद्यालय, मैडिसन में दक्षिण एशियाई विभाग में भी अध्यापन के कार्य से जुड़ी रही।

17.3.2 साहित्यिक परिचय

उषा प्रियवंदा का आधुनिक कमला कथाकारों में सर्वोत्तम स्थान है। स्वातंत्रयोतर हिन्दी कथा साहित्य की वे एक सशक्त लेखिका है। उच्च प्रियवंदा का जन्म 24 दिसम्बर 1931 को उत्तर प्रदेश के कानपुर में संधात कायस्थ परिवार में हुआ। उषा प्रियवंदा के पिता शहर के जाने माने वकील थे। पिता की असमय मृत्यु के बाद अपने समय के प्रसिद्ध राजनीति कर्मी और सांसद शिव्वल लाल सक्सेना के संरक्षण में इनका पालन–पोषण हुआ।

उषा प्रियवदा की प्रारंभिक शिक्षा इलाहाबाद में हुई तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. की 1952 में परीक्षा पास की। अंग्रेजी साहित्य में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पश्चात 1945 में वही से प्रेमचन्द के उपन्यासों पर पी.एचडी. की उपाधि प्राप्त की। इसी दौरान रिसर्च फेलों की हैसियत से विश्वविद्यालय में अध्यापन किया। 1956 – 59 दिल्ली के लेडी श्रीराम कालेज में अंग्रेजी साहित्य का अध्यापन किया। 1959–61 में पारिवारिक स्थितियों के कारण, इलाहाबाद लोटकर वहीं विश्वविद्यालय में अध्यापन किया। 1961–62 में उषा प्रियंवदा फूलब्राइट स्कालरोशिप पर अमीरिका विश्वविद्यालय में पोस्ट डाक्ट्रल का अध्यापन किया। 1963–72 में विस्कासिन विश्वविद्यालय में एसिस्टेंट प्रोफेसर के रूप में साउथ एशियन स्टडीज विभाग में नियक्ति हुई और वहीं पर हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्यापन किया। 1972 में वही प्रोफेसर के रूप में पदोन्नति प्राप्त की।

उषा प्रियंवदा ने पांच कहानी –संग्रह जिन्द्गी और गुलाब के फूल, एक कोई दूसरा, फिर बसंत आया, कितना बड़ा झुठ, मेरी प्रिय कहानिया लिखे है। इनक मात्र तीन उपन्यास हैं – पचपन खंभे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका तथा शेष यात्रा हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य अकादमी की योजना के अन्तर्गत मीराबाई के पदों का अंग्रेजी में अनुवाद। देश – विदेश के विश्वविद्यालयों और संस्थाओं के निमन्त्रण पर संगोष्ठियों में भागीदारी। पचपन खम्भे लाल दीवारे पर सी.पी. सी. दूरर्शन द्वारा टेली सीरियल का निर्माण शून्य तथा में संकलित अनेक रचनाओं का बीबी.सी. से प्रसारण।

उषा प्रियंवदा ने हिन्दी साहित्य में उपन्यास और कहानियों का विशेष रूप से आरम्भ किया। उषा प्रियंवदा की कहानियों में अभिव्यक्त समकालीन समाज, विसंगतियां, आर्थिक विषमताएं अकेलापन पाश्चात्य प्रभाव, अन्तर्विरोध और कुण्ठाओं को स्थान मिला है। इसी सामाजिक परिवेश को उन्होंने अपनी कहानियों में भी संस्कृ ति का संजोया है। अधिकतर कहानियां नारी पुरुष सम्बन्ध, मानसिक स्थिति, भावी जीवन, रुढिवादी परम्पराएं, स्वार्थ, बिखराव और विघटन को बड़े सन्दर ढंग से कहानियों में प्रस्तुत किया है। जिसका सशक्त उदाहरण वापसी कहानी है जो आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित है। नारी चेतना की सशक्त कहानीकार अधिकता विदेशी परिवेश, कामकाजी महिलाओं, उनके उत्पीड़न, आधुनिक नारी की अहंवादी विचारधारा, सामाजिक परम्पराएं और आदि को विषम बनाया और अपने कथा साहित्य में चित्रित किया।

उषा प्रियंवदा की कहानियों का अगर तात्विक अध्ययन, किया जाए वो ज्ञात होगा कि प्रत्येक कहानी में समाज, सम्बन्ध, नर–नारी सम्बन्ध, मूल्य और नैतिक मूल्यों का विघटन और समस्याओं से प्रेरित कहानियां हैं जो लेखिका संक्षिप्तता, सुबोधता, प्रतीकात्मकता, मौलिकता एवं सौन्दर्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करती है। इसलिए कथा का विषय के आकार पर उनकी कहानियां भाव और चरित्र की प्रधानता को स्वीकार करती हैं।

नई कहानी के आंदोलन के साथ उभर कर आने वाली उषा प्रियंवदा महिला कथाकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। उषा जी इलाहबाद से सम्बद्ध रही हैं, वही से इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे वही कुछ समय के लिए अंग्रेजी की प्राध्यापिका रही, फिर अमेरिका चली गई। वहां इंडियाना विश्वविद्यालय में आधुनिक अमेरिकी साहित्य पर अनुसंधान किया। उषा प्रियंवदा लम्बे समय तक विस्कांसिन विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्यापन कार्य करती रही।

कहानी संग्रह

'जिंदगी और गुलाब के फूल

'एक कोई दूसरा'

'मेरी प्रिय कहानियां'

वनवास

कितना बड़ा झूठ

शून्य

संपूर्ण कहानियां

उपन्यास

'पचपन खंभे'

'लाल दीवारें'

'रुकोगी नहीं राधिका'

'शेष यात्रा'

'अंतर्वशी'

उषा प्रियंवदा की प्रमुख कहानियाँ व उपन्यास

उषा प्रियंवदा नई कथाकार में अग्रणी हैं। उन्होंने दर्जनों कहानियाँ लिखी हैं। इनके तीन कहानी संग्रहों में जिन्दगी और गुलाब के फूल एक कोई दूसरा तथा कितना बड़ा झूठ उपलब्ध हैं। ये संग्रह वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से श्रेष्ठ हैं, उनकी कहानियों में वापसी, मछलियाँ और प्रतिध्वनि उल्लेखनीय हैं।

उषा प्रियंवदा की कहानियों का मूल कथ्य और विशेषताएं

उषाजी की समस्त कहानियाँ मध्यमवगीय जीवन के सुख दुःख, आशा, निराशा एवं जीवन संघर्ष पर आधारित हैं। स्त्रियों की दशा को लेकर नई प्रानी पीढ़ी के टकराव का चित्रण किया हैं। होस्टल में पढ़ने वाली छात्रा, नौकरी पेशा अकेली रहने वाली औरत, विदेश जाने वाली स्त्री के संत्रास का चित्रण इन्होंने बखूबी किया हैं।

राजेन्द्र यादव के अनुसार वापसी कहानी हमारे समाज के टूटन की कहानी हैं। जिसमें युवा वर्ग अपने ही बुजुर्गों को अवमानना की जिन्दगी बिताने के लिए मजबूर करता हैं। आपकी कहानियों में मुख्यतः मध्यमवर्गीय व्यक्तिवादी चेतना व्यंजित हुई हैं।

उषाजी की कहानियाँ भारतीय नारी की असहायता एवं मजबूरियों को उजागर करती हैं। नारी होने के नाते वे नारी की पीड़ा को समझती भी है और उसे सशक्त कथानक व भाषा शैली में व्यक्त करने में भी सक्षम

हैं। इनकी कहानियाँ की तीन प्रमुख विशेषताएं हैं। भारतीय नारी के आदर्शस्वरूप की स्थापना, उसकी स्त्रियोचित ईष्या का वर्णन एवं नारी की दयनीय स्थति का चित्रण। नारी के स्वभावगत गुण विनम्रता, दया एवं समपेण की भावना को बड़ी तीव्रता के साथ अभिव्यंजित किया हैं। वह किसी का हो जाने में गर्वित अनुभव करती हैं। पश्चिमी नारी की भांति पुरुष बनाना और बदलना उसकी फिदरत में नहीं हैं। मछलियाँ एवं प्रतिध्वनि ऐसी ही कहानियाँ हैं।

उषा प्रियंवदा की कहानी कला

उषा प्रियंवदा नई कथाकारों की पंक्ति में अग्रगण्य हैं. स्त्री लेखन को समृद्ध और नई ऊँचाइयाँ प्रदान करने में इनका विशेष योगदान हैं। इनका सम्बन्ध इलाहबाद से रहा हैं। उच्च मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मी उषाजी ने इलाहबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम ए किया और वहीं अध्यापन कार्य भी किया। अमेरिका जाकर अनुसंधान कार्य किया एवं विस्कांसिन विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण का कार्य भी किया। वहां से लौटकर शेष समय दिल्ली में व्यतीत किया।

उषा प्रियंवदा का अधिकांश लेखन नारी विमर्श पर आधारित हैं। उन्होंने भारतीय नारी की असहाय स्थिति एवं मूक सहनशीलता का चित्रण बखूबी किया हैं। साथ ही मध्यमवर्गीय परिवार की समस्याओं, विघटनकारी स्थिति एवं बुजुर्गों की उपेक्षा का चित्रण भी सटीक भाषा में किया हैं। भारतीय परिवारों में नारी आदर्शरूपा रही हैं। वह अपने त्याग, प्रेम एवं समर्पण द्वारा परिवार के सदस्यों के लिए अपना सुख भूल जाती हैं। उसका पति के प्रति एकनिष्ठ प्रेम व समर्पण अतुलनीय हैं।

मछलियाँ कहानी की विजी कहती हैं। नटराजन मुनिष् कहा करता था कि प्यार चुक जाता है, भावनाएं मर जाती हैं, अक्सर में सोचती हूँ कि मुझमें ऐसा क्यों नहीं होता हैं मैं क्यों निर्मिम कठोर क्यों नहीं हो पाती। इस कथन में नारी की समर्पण भावना व्यक्त हुई हैं।

पुरुष प्रधान समाज में नारी सामाजिक उपेक्षा और तिरस्कार का कष्ट भोगती रही हैं। इसी कारण पुरुष वर्ग के शोषण का शिकार हुई हैं। वह पुरुष ही नहीं नारी के हाथों भी शोषित हो रही हैं। मछलियाँ कहानी में ही विजी कहती है कि बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती हैं। उसकी सहेली मुकी उसके प्रेम को छीन लेती हैं। इसी कारण उसमें स्त्रियोचित इर्ष्या का भाव उदित हुआ हैं। वह भारत लौट आती है।

उषा प्रियंवदा की कहानियों में पुरुष के लम्पट स्वभाव का चित्रण भी हो गया हैं पुरुष नारी के निश्छल स्वभाव को समझ नहीं पाता। मुकी नटराजन से अंत में इसलिए विवाह नहीं करती, क्योंकि उसका आकर्षण विजी की तरफ भी था। उषाजी की कहानियाँ भावमूलक हैं। कहानी का प्रत्येक पात्र भावुक हैं। यदपि इनकी कहानियों में आर्थिक विषमता का भी चित्रण हुआ हैं, किन्तु पात्र भावात्मक धरातल पर ही जीते हैं।

उषा प्रियंवदा की उपलब्धियाँ

विदेश में रहकर हिंदी भाषा तथा साहित्य में अहम योगदान देने वाले साहित्यकारों में उषा जी भी एक हैं। अपना जीवन साहित्य के प्रति पूर्ण समपर्ण कर देने वाली इन हिंदी सेविका को मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार से भी सम्मानित किया जा चूका हैं। इन्होंने कथा साहित्य में खोते हुए भारतीय मूल्यों को पुनः स्थापित कर पारिवारिक विघटन को रोकने के लिए आवाह्न किया हैं। इन्होंने आज के जीवन की मुख्य समस्याएं जैसे ऊब, छटपटाहट, संत्रास और अकेलेपन को पहचाना तथा सटीक चित्रण भी किया।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' किसका कहानी संग्रह है?
2. उषा प्रियंवदा ने किस विश्वविद्यालय से एम.ए. की उपाधि प्राप्त की?

17.4 'वापसी' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन

उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में आधुनिक जीवन की घुटन, उदासी और अकेलापन का भाव मिलता है। जिससे इनकी होमसिक्नेस का भाव उजागर होता है। 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' में इनकी 12 कहानियां संकलित है। जिसमें 'वापसी' इनकी बहुचर्चित कहानी रही है। यह कहानी बदलती परिस्थितियों में बदलते पारिवारिक सम्बन्धों पर आधारित है। इसमें व्यक्ति का अकेलापन और अजनबीयत है। इसमें ऐसी समस्या उठाई है जिसका सामना पुरानी पीढ़ी का प्रत्येक व्यक्ति कर रहा है। यह संकट सारे समाज के सामने है। और सारी पुरानी पीढ़ी उसे झेल रही है। यह प्रवृत्ति व्यक्ति के परस्पर सम्बन्धों में दरार उत्पन्न करती है। पुरानी और नयी पीढ़ी के संघर्ष पति और पत्नी, पिता और पुत्र, भाई और बहनों के सम्बन्धों की टूटन और शिथिलता परिलक्षित होती है। बौद्धिक विकास, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का क्रेज, दिनों – दिन जीवन संघर्ष की बढ़ोत्तरी के केन्द्रित चिंतन के कारण पुरानी मान्यताएं और लिहाज समाप्त हो रहे है। यह कहानी संयुक्त परिवार के विघटन की कहानी है। गजाधर बाबू का अकेलापन इस कहानी की संवेदना को गहरा बना देता है। इस कहानी में गजाधर बाबू का अकेलापन उस सारे वर्ग का है। जो अपने पुरातन संस्कारों के कारण बदले हुए समय में अपने को अकेला पाता है। गजाधर बाबू 35 वर्ष नौकरी करने के बाद रेलवे से रिटायर होकर अपने घर जाता है। चैन का जीवन बिताने ।35 वर्ष तो काम तथा तबादलों के धाकापेल में बीते थे। नौकरी के दौरान उन्होंने अनुभव किया था कि बच्चे और पत्नी बड़ा सम्मान और सेवा करते हैं। परन्तु रिटायर होकर घर जाने के बाद उनकी यह खुशी क्षणिक ही रहती है। उसकी पत्नी जिस व्यक्ति के अस्तत्व से मांग में सिन्दूर डालने की अधिकारिणी थी, समाज में उसकी प्रतिष्ठा थी। अब उसके सामने यह दो वक्त भोजन की पाली रख देने से सारी, कर्त्तव्यों से छुट्टी पा जाती थी। वह पत्नी घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रम गयी है कि अब वही उसकी सम्पूर्ण दुनियां बन गयी है। उसके पति को अपना जीवन एक खोई हुई निधि सा लगता है। घर में रहने से वह अकेले नौकरी पर प्रसन्न था। घर में उसे अंजनवियत का अनुभव होता है वे अनुभव करते है कि वे घर के लिए एक अनचाहे मेहमान है। पुत्र –पुत्री, पुत्र वधू सभी उनसे कटते है। पत्नी काम – धंधों में व्यस्त रहती है। इस असहाय स्थिति से ऊब कर वे नयी नौकरी खोजते हैं और पुनः अकेले घर छोड़कर चले जाते है। गजाधर बाबू के जीवन की विडम्बना उन आधुनिक मध्यवर्गीय समाज पर ऐसा व्यंग्य है कि यह हमारी आस्था को हिला देती है। उषा प्रियंवदा ने इस सत्य का सहज–स्वाभाविक भाषा के माध्यम से – हृदयस्पर्शी बना दिया है आज हमारे समाज में अनेक ऐसे उपेक्षित वद्ध हैं जो अंत समय तक ऐसे ही झाकते हुए अपना समय बिताते हैं।

कथावस्तु– कथानक कहानी का प्राण होता है। कोई भी कहानी कथानक के बिना अस्तित्वहीन है। कहानी बड़ी सफल मानी जाती है जिसमें कथानक सहज, स्वाभाविक और सुसम्बद्धता से होता है। लेकिन आज नई कहानी के दौर में कथानक का ह्रास हुआ हैं।

उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' एक रिटायर्ड अफसर गजाधर बाबू की है जो अपने ही परिवार में अपने को मिसफिट पाता है। गजाधर बाबू रेलवे में लम्बे समय तक छोटे – छोटे स्टेशनों पर रहे और परिवार को बड़े शहर में रखा ताकि बच्चों की शिक्षा – दीक्षा अच्छे ढंग से हो सके। रिटायर्ड होकर जब वे घर जाते हैं तो वे उपेक्षा के शिकार होते है। और तो और पत्नी भी उनकी उपेक्षा करती है। स्थिति यहां तक गम्भीर हो जाती है कि उन्हें अपने ही घर में कमरा तक नही मिलता। उनकी चारपाई एक स्टोर रूम में डाल दी जाती है। गजाधर बाबू की स्थिति उस चारपाई के समान है जिसे कहीं भी उठाकर रखा जा सकता है। वे सोचते है कि वे पत्नी और बच्चों के लिए सिर्फ धनोपार्जन के निमित्त रहे हैं। उन्हें रह –रहकर स्टेशन की गनेशी की याद आती हैं। हर दिन की उपेक्षा से परेशान होकर वे एक दिन वापस बाहर नौकरी पर चले जाते हैं। उनके वापस चले जाने से परिवारजन खुश हैं। कथानक तो छोटा है लेकिन इसमें मध्यमवर्ग की मानसिकता और नये मुल्यबोध की चिंता है। कहानी प्रारम्भ से लेकर अंत तक प्रभावपूर्ण है। इसमें आधुनिक मध्यवर्गीय परिवारों से रिटायर्ड व्यक्ति का यथार्थवादी चित्रण हआ है कि वह किस तरह अकेला और अजंनबीपन होता जा रहा है।

चरित्र योजना— कोई भी रचनाकार अपनी कथा सृष्टि को पात्रों के माध्यम से ही आगे बढ़ाता है। ये पात्र कई तरह के हो सकते है। आदर्शवादी यथार्थवादी, गतिशील एवं वर्गीय इस कहानी में भी पात्रों की परिकल्पना रिटायर्ड गजाधर बाबू की स्थिति आठ परिस्थिति और उनकी विडम्बना को सही ढंग से प्रस्तुत करने के लिए की गई इस परिवार में एक भी पात्र ऐसा नहीं है जिसमे सम्बन्धों को लेकर उष्मा हो। पति के लिए पत्नी का बहुत बड़ा सहारा होता है। वह भी इस परिवार में नहीं हैं। इस परिवार में गजाधर बाबू को सभी की उपेक्षा का होना पडता है। ऐसे व्यक्ति की घर में उपेक्षा बदलते भावबोध की अभिव्यक्त है। गजाधर बाबू का चरित्र आज़ के मध्यवर्ग का प्रतीक है। लेखिका भावुक न होकर सटप एवं निःसंग दृष्टि से अपने पात्रों के साथ व्यवहार करती है। उसकी चरित्र सृष्टि यथार्थवादी है।

संवाद योजना— कहानी में संवादों की एक निश्चित भूमिका रहती है। संवाद ही पात्रों के भीतरी मन की हलचलों का पता देकर उसके व्यक्तित्व की पहचान को उभारते हैं। संवादों के बिना कहानी गुंगी हो सकती है। 'वापसी' कहानी में संवाद बड़े सहज, सरल एवं पात्रानुकूल है। जो पात्रों की गहरी पहचान उभारने में समर्थ है। इस कहानी के संवाद मध्यवर्गीय पारिवारिक जिन्दगी में प्रायः बोले जाने वाले संवाद है। जो अपनी सादगी से यथार्थ जीवन की विसंगतियों को स्वर देती है। पत्नी की आये दिन नौकर की शिकायत और घर पर आर्थिक बोझ को देखते हुए गजाधर बाबू नौकर का हिसाब कर देते है। अमर जब आफिस से आता है तो वह नौकर को पुकारता है। इसके उत्तर में अमर की बहू बोली, "बाबू जी ने नौकर को छुड़ा दिया है।'

क्यों ?

कहते हैं खर्च बहुत है।

यह वार्तालाप बहुत सीधा था परन्तु जिस टोन में बहू बोली बाबू को खटक गया। उस दिन जी भारी होने के कारण बाबू टहलने भी नही गए इस बात पर नरेन्द्र मां से कहता है, "अम्मा तुम बाबू जी से कहती क्यों नहीं? बैठे बिठाये कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबू जी यह समझे कि में साइकिल पर गेहूं रख आटा पिसाने जाऊंगा तो मुझसे यह नहीं होगा।' हां अम्मा — बसंती का स्वर था में कालेज भी जाऊं और लौटकर घर में झाडू लगाऊ, यह मेरे बस की बात नहीं है।' इन संवादों में वस्तु स्थितियों के अंकन की गहरी क्षमता है।

देशकाल एंव वातावरण — देशकाल एवं वातावरण कहानी की प्रभाव क्षमता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 'वापसी' कहानी में देशकाल एवं वातावरण की बड़ी सफल अभिव्यक्ति हुई है। इस कहानी में शहर के मध्यवर्गीय परिवार में सम्बन्धों की टूटन के पीछे की पीडा को छोटे—छोटे विवरणों से रूपायित किया गया है। मध्यवर्गीय परिवार का सारा वातावरण कहानी में बड़ी जीवन्तता से 'यथार्थवादी शैली में अभिव्यक्त हुआ है।

प्रतिपाद्य— उषा प्रियंवदा अपनी कहानी 'वापसी' में समकालीन जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति देती है। ये पारिवारिक सम्बन्धों में आए ठंड़ेपन को ठंड़ेपन के साथ ही व्यक्त करती है। यह कहानी पारिवारिक जीवन के उन कोनों को उभारती है जो धीरे — धीरे गल रहे हैं। इसे उभारने से लेखिका की दृष्टि भावुक न होकर वस्तुन्भुखी है। वे सम्बन्धों की टूटन के पीछे की पीड़ा को छोटे —छोटे प्रसंग एवं वितरणों से व्यंजित करती है। यह कहानी अपनी रचनाशीलता में जहां एक और पारिवारिक विघटन टूटन की कहानी कहती है। यहां दूसरी पीढ़ियों के अन्तराल उभरते नये मूल्य बोध एवं व्यक्ति के निरंतर अकेले होते जाने की कहानी भी कहती है। अतः कह सकते हैं कि —इस कहानी में व्यक्त अकेलेपन की वापसी हम सबकी पुराने मूल्यों की वापसी है।

भाषा—शैली — उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी भाषा की दृष्टि से बहत ही सफल कहानी मानी गयी है। इसमें आधुनिक शिल्प विधान को अपनाया गया है। भाषा सहज सरल और भावानुकूल है जिसमें हर चीज को नपी— तुली और खूब दक्षता से तराशा गया है।

17.4.1 'वापसी' कहानी का सार

'वापसी' कहानी उषा प्रियंवदा की एक प्रसिद्ध कहानी है। प्रस्तुत कहानी बुजुर्ग पीढ़ी और युवा पीढ़ी के अन्तराल को चित्रित करती है। दोनों पीढ़ियों के बीच आयी दरार और तकरार को लेखिका नं मनोवैज्ञानिकता के माध्यम से चित्रित किया है। वस्तुतः 'वापसी' कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए कहानी के सार से परिचित होना आवश्यक है। कहानी का सार इस प्रकार है–

गजाधर बाबू रेलवे विभाग में पैंतीस साल नौकरी करने के पश्चात् घर लौटे हैं। घर आने से पूर्व वे घर के सदस्यों के साथ रहकर खुशी और उल्लास की कल्पनाएँ करते हैं। वे सोचते हैं कि परिवार के साथ रहकर उनकी जिन्दगी प्रसन्नता से बीतेगी। परन्तु जब वे घर लौटते हैं तो उन्हें अपना परिवार कुछ बदला – बदला सा प्रतीत होता है। उन्होंने अपने बेटे अमर और बेटी कान्ति की शादी नौकरी करते समय ही कर दी थी तथा शहर में एक मकान भी बनवा लिया था। अब घर में उनकी पत्नी के साथ अमर व छोटा बेटा नरेन्द्र अमर की बहु और छोटी बेटी बसन्ती रहती है। नरेन्द्र और बसन्ती दोनों कॉलेज में पड़ते है। वे दोनों आधुनिकता के रंग में रंग चुके हैं। उनकी पत्नी को चौके चुल्हे के सिवा और कोई दूसरा काम नजर नहीं आता। उसने अपनी सारी उम्र इसी के इर्द –गिर्द काट दी है। गजाधर बाबू के सुखी और दुःखी होने से उसे कोई सरोकार नहीं है। उसने कभी समय निकालकर गजाधर बाबू के साथ बैठकर सुख – दुख को बात भी नहीं को थी। उसे तो बस चल्हा चलाने को फ्रिक थी।

सेवानिवृत्त के पश्चात् बैठक में गजाधर बाबू के लिए एक चारपाई डाल दी जाती है। वे सारा दिन इसी चारपाई पर पड़े रहते हैं। घर के अन्दर पूरे परिवार की हंसी के ठहाके उनके कानों तक पहुंचते रहते हैं। गजाधर बाबू परिवार में रहकर भी स्वयं को अकेला महसूस करते हैं। एक प्रातः नाश्ते के समय नरेन्द्र, अमर और उसकी पत्नी तथा बेटी बसन्ती आपस में हँस रहे थे कि गजाधर बाबू भी वहाँ आ गए। उनके आते हो नरेन्द्र ने नृत्य करना बन्द कर दिया। अमर और उसकी पत्नी धीरे – से पर के भीतर चले गए। बसन्ती चाय बनाने के लिए रसोई में चली गई। उनकी पत्नी पूजा घर में थी। जूठे बर्तनों के देर को देखकर उसने काम की अधिकता को शिकायत चलते –चलते गजाधर बाबू से की।

गजाधर बाबू ने अनुभव किया कि परिवार बूढ़ा हो जाने के कारण अब उनकी पत्नी से घर का सारा काम और भोजन नहीं बनता। इस कारण उन्होंने बसन्ती को रात का और अमर की पत्नी को सुबह का भोजन बनाने को कहा। जानबूझ कर अमर की पत्नी घर का सारा काम ठीक से न करके रसोई का खर्च बढ़ा देती है तथा बसन्ती जानबूझ कर खाना खराब बना देती है। उन दोनों के साथ –साथ अमर और नरेन्द्र को भी नौकर को छुट्टी कर देना बुरा लगता है। ये गजाधर बाबू के द्वारा नौकर के हटा देने से असन्तुष्ट थे। गजाधर बाबू को बसन्ती का देर से घर आना पसन्द नहीं है। वे उसके घर लेट आने पर रोक लगा देते हैं तथा उसे घर जल्दी लौटने की सलाह देते हैं, तो बसन्ती भर के पिछले दरवाजे से घर में आती जाती रहती है। नरेन्द्र को भी घर का काम बुरा लगता है। वह घर का काम करने में अपनी बेइज्जती समझता है। गजाधर बाबू की बातें पूरे परिवार को बुरी लगती है। फलस्वरूप अमर अब अलग होने की सोचने लगा था। अमर तथा उसकी पत्नी को यह बात अखरती थी कि पिता जी बैठक में चारपाई डालकर पड़े रहते हैं और उनके मेहमानों और दोस्तों के घर आने पर उन्हें सही जगह नहीं मिलती।

एक शाम जब गजाधर बाबू टहलकर घर लौटे तो बैठक में उनकी चारपाई नहीं थी। उनकी चारपाई अब बैठक से निकाल कर आचार, मुरब्बों वाले छोटे कमरे में डाल दी गई थी। गजाधर बाबू को अनुभव हुआ कि उनका अपने ही घर में जरा भी आदर – सत्कार नहीं है। इतना ही नहीं से अपने ही घर में उपेक्षित समझे जाने लगे थे। परिवार को उनकी प्रत्येक बात कड़वी–सी लगती थी। वे सदैव उदास – भाव से चारपाई पर लेटे रहते थे। उनके परिवार के साथ खुश रहने के सभी सपने चकनाचूर हो गए थे। उन्होंने जैसे सुखी परिवार की कल्पना की थी पैसा उन्हें वहाँ कुछ भी नहीं मिला।

एक दिन गजाधर बाबू ने अपनी पत्नी को शुभ समाचार देते हुए कहा कि मुझे सेठ रामजीलाल की चीनी मिल में नौकरी मिल गई है तथा अब वह वहीं रहेंगे। उनकी रही –सही आशा उस समय निराशा में बदल गई जब परिवार के किसी एक सदस्य मे भी उन्हें रुकने का आग्रह नहीं किया और न किसी ने उन्हें बुढ़ापे में नौकरी न करने की सलाह दी।

परिवार में उनका अस्तित्व केवल पैसे कमाने की मशीन जैसा ही था। उनके प्रति परिवार के किसी सदस्य को बिल्कुल सहानुभूति न थी। गजाधर बाबू जब अपना बिस्तर लेकर नौकरी पर जाने के लिए रिक्शे पर बैठकर चले तो परिवार के सभी सदस्य खुश हो गए तथा अमर और उसकी पत्नी ने तो पिक्चर देखने का प्रोग्राम बना लिया। यहाँ तक कि उनकी पत्नी ने भी उनके साथ जाने से इंकार कर दिया क्योंकि घर में जवान बेटी जो थी। उनके चले जाने के बाद उनकी पत्नी ने उस चारपाई को बाहर निकालने का आदेश दिया जिसके कारण उस छोटे – कमरे में चलने –फिरने का भी स्थान नहीं बचा था।

लेखिका उषा प्रियंकदा ने 'वापसी' कहानी के माध्यम से यह संदेश देने का प्रयास किया है कि अवकाश प्राप्त बढ़ व्यक्ति के लिए उस घर में कोई बात नहीं है जिस घर को उसने अपने कमाई से बनाया है। परिवार की युवा पीढ़ी के अपने अलग–अलग रास्ते हैं। बुजुर्गों के साथ उनको कोई सहानुभूति नहीं है। बड़ों का हस्तक्षेप उनके लिए असहनीय है। इस प्रकार कहानी में दो पीढ़ियों के अन्तराल को स्पष्ट प्रदर्शित किया गया है।

आलोत्र्य कहानी में जीवन मूल्यों के मूल्यों के परम्परागत पहलुओं तथा पारिवारिक विसंगतियों का अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक चित्रण किया गया है। दरिद्रता एवं आर्थिक दोनों पारिवारिक जीवन में विविध समस्याओं को जन्म देती है। इनका चित्रण मार्मिक ढंग से किया गया है। गजाधर बाबू की पत्नी के कथन में उसकी आर्थिक बेबसी की सुन्दर अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है वह गजाधर बाबू से कहती है –

सभी खर्च तो वाजिब – वाजिब हैं, किसका पेट घटूँ ? जोड़ – गाँठ करते – करते बूढ़ी हो गई –न मन का पड़ना, न ओढ़ा।'

आधुनिक पीढ़ी को अपने घर के काम करने में कोई रूचि नहीं है। मध्यम वर्गीय परिवार के युवा घर के काम करने में अपनी बेइज्जती समझते हैं। पारिवारिक जीवन में ये छोटी–छोटी बातें बड़ी होकर अशान्ति को जन्म देती हैं। वापसी कहानी से एक उदाहरण प्रस्तुत है। नरेन्द्र अपनी माँ से कहता है –

अम्मा तुम बाबू जी से कहती क्यों नहीं ? बैठे – बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर वे समझे कि मैं साइकिल पर गेहूं रखकर आटा पिसाने जाऊँगा, तो यह मुझसे नहीं होगा।''

इस प्रकार 'वापसी' कहानी एक युवा पीढ़ी के मोह भंग को कहानी है। कहानी का प्रमुख उद्देश्य है कि पुरानी पीढ़ी के विश्वासों, आस्थाओं और सोच के प्रति, नई पीढ़ी के युवाओं में विल्कुल भी रूचि नहीं है। इस प्रकार दोनों पीढ़ियों के बीच अन्तर स्पष्ट परिलक्षित होता है। वस्तुतः स्थूल कथानक पर आधारित होने पर भी प्रस्तुत कहानी मानसिक स्तर पर पारिवारिक स्थितियों को उजागर करती है। यही कहानी का प्रमुख प्रतिपाद्य है, जिसमें लेखिका पूर्णतः सफल रही है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'वापसी' कहानी का मूल पात्र कौन है?
2. 'वापसी' कहानी में क्या चित्रित करने की कोशिश उषा प्रियंवदा ने की है?

17.5 सारांश

अतः कहा जाता है कि उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में छठे और सातवें दशक के शहरी परिवारों का संवेदनापूर्ण चित्रण मिलता है। उस समय शहरी जीवन में बढ़ती उदासी, अकेलेपन, ऊब आदि का अंकन करने में उन्होंने अत्यंत गहरे यथार्थबोध का परिचय दिया है।

17.6 कठिन शब्दावली

चिरस्मरणीय – जो जल्दी भुलाया ना जा सके

रोचक – मनोरंजन, प्रिय

अनखिला – जो खिला न हो

17.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. उषा प्रियंवदा
2. प्रयाग विश्वविद्यालय

अभ्यास प्रश्न–2

1. गजाधर बाबू
2. युवा एवं वृद्ध पीढ़ी में अंतराल

17.8 संदर्भत पुस्तकें

1. डॉ० नरेन्द्र मोहन, समकालीन कहानी की पहचान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. उषा प्रियंवदा, वापसी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

17.9 सात्रिक प्रश्न

1. उषा प्रियंवदा का जीवन एवं साहित्यिक परिचिय दीजिए।
2. गजाधर बाबू के चरित्र की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. वापसी कहानी की तात्विक समीक्षा कीजिए।

*****

इकाई–18
शेखर जोशी : जीवन और साहित्य

संरचना

18.1 भूमिका

18.2 उद्देश्य

18.3 शेखर जोशी जीवन और साहित्य

18.3.1 जीवन परिचय

18.3.2 साहित्यिक परिचिय

स्वयं आकलन प्रश्न–1

18.4 'कोसी की घटवार' कहानी का उद्देश्य

18.4.1 'कोसी की घटवार' कहानी का सार

स्वयं आकलन प्रश्न–2

18.5 सारांश

18.6 कठिन शब्दावली

18.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

18.8 संदर्भित पुस्तकें

18.9 सात्रिक प्रश्न

18.1 भूमिका

इकाई सत्रह में हमने उषा प्रियंवदा के जीवन परिचय एवं उनकी कहानी 'वापसी का अध्ययन किया। इकाई अठारह में हम शेखर जोशी के जीवन एवं साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। शेखर जोशी द्वारा रचित कहानी 'कोसी का घटवार' के सार एवं उद्देश्य का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

18.2 उद्देश्य

इकाई अठारह का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. शेखर जोशी का जीवन परिचय क्या है ?
2. शेखर जोशी का साहित्यिक परिचय क्या है?
3. कोसी का घटवार कहानी का सार क्या है?
4. 'कोसी का घटवार' कहानी का उद्देश्य क्या है?

18.3 शेखर जोशी : जीवन और साहित्य

18.3.1 जीवन परिचय

श्री शेखर जोशी हिंदी के प्रमुख कहानी लेखक हैं। इनका जन्म सन् 1932 में अल्मोड़ा (उत्तराखंड) हुआ। 20वी शताब्दी के छठे दशक में हिंदी साहित्य जगत में एक साथ कई युवा कहानीकारों का आगमन हुआ। उन्हें समाज में हो रहे बदलाव और उससे पड़ने वाले प्रभाव को समेटे हुए तरह–तरह की कहानियाँ लिखी।

इसी प्रकार की कहानियों लिखे जाने से हिंदी कहानी में एक नया मोड़ आया। आगे चलकर इस मोड को 'नई कहानी आंदोलन' का नाम दिया गया। श्री शेखर जोशी की कहानियाँ भी इस आंदोलन के प्रगतिशील पक्ष का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में मजदूर वर्ग व साधनहीन लोगों के जीवन की विभिन्न विषमताओं को उजागर किया। कहानी कला की दृष्टि से भी श्री शेखर जोशी को कहानियाँ नयापन लिए हुए हैं।

18.3.2 साहित्यिक परिचय

(क) कहानी–संग्रह – 'कोसी का घटवार', 'साथ के लोग', 'दाज्यू', 'हलवाहा', नौरंगी बीमार है आदि।

(ख) शब्द – चित्र–संग्रह – एक पेड़ की याद।

(ग) सम्मान– पहल सम्मान।'

श्री शेखर जोशी की कहानियों में तत्कालीन सामाजिक जीवन के परिवेश को यथार्थ एवं सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में जो विकास की प्रक्रिया आरंभ हुई है, उसमें जो कमियां आ गई है उनको उजागर करना श्री जोशी की कहानियों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। इसी प्रकार समाज में बदलते जीवन मूल्यों को भी इन्होंने अपनी कहानियों को विषय बनाया है। शेखर जोशी ने निम्न मध्य वर्ग को अपने आर्थिक दर्शनीय स्थिति से संघर्ष करते हुए दिखाया है। आर्थिक विवशता का समाज किस प्रकार लाभ उठाता है, यह भी कहानी में दर्शाया गया है। श्री जोशी की कहानियों ने बदलते युग में जातिगत भेदभाव के ढीले पड़ते बंधनों को दिखाते हुए यह सिद्ध किया है कि अब ऐसे बंधन केवल दिखावा मात्र ही बनकर रह गए हैं।

भाषा–शैली

श्री शेखर जोशी जी की कहानियों का भाव पक्ष जितना सक्षम है, कलापक्ष भी उत्तना ही विकसित एवं समृद्ध है। उन्होंने कहानी में पात्रों के चरित्र के विकास को घटनाओं के माध्यम से दिखाया है। विषय चयन युगानुकूल है। भाषा अत्यंत सहज एवं आडंबरहीन है। भाषा में चित्रात्मकता का गुण विद्यमान है।

श्री जोशी जी की कहानियों की शैली रोचक तथा वर्णन प्रधान है। कहीं–कहीं संवादात्मक शैली को भी सफल प्रयोग किया गया है। भाषा सरल, सहज़ एवं पात्रानुकूल है।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. शेखर जोशी का जन्म कहां हुआ?
2. 'साथ के लोग' किसका कहानी संग्रह है?

18.4 'कोसी का घटवार' का सार

परिवेश का अकेलापन व्यक्ति के अकेलेपन को और अधिक पीड़ादायक बना देता है। इसी परिपेरक्ष्य में हिंदी कहानी में 'कोसी का घटवार' बहुत चर्चित है। हैदराबाद से 'कल्पना' पत्रिका के जनवरी 1057 ई. के अंक में शेखर जोशी की कहानी 'कोसी का घटवार' प्रकाशित हुई। इसी से इन्हें विशेष ख्याति मिली। शेखर जोशी की कहानी 'कोसी का घटवार' एक एसी कहानी है जिसके अदर प्रेम की व्यथा से लेकर समाज को परिदृश्य के साथ – साथ जीवन के परिचायक को दिखाया गया है। शेखर जोशी की इस बेहद खूबसूरत कहानी में कहीं पर भी 'प्रेम' शब्द नहीं आया है, कहीं पर भी दोनों पात्रों ने कभी आंखें नहीं मिलाई हैं। दोनों ने एक दूसरे को छुआ भी नहीं है। न ही कोई वादा किया है और न किसी किस्म की कसमें ही खायी हैं। इसके बावजूद यह प्रेम की अद्‌भुत कहानी है। इस कहानी में प्रेम भी है और पीड़ा भी। लेखक स्वयं कहता है कि यह कहानी पहाड़ के कहानीकार की मनोवृत्ति का भी चित्रण करती है। शिल्प और संवेदना की दृष्टि से शेखर जोशी की कहानियां

पाठक को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट करती हैं और पाठक के मन में संवेदना जगाती हैं। शेखर जोशी ने निम्न मध्यवर्गीय जीवन की वास्तविकताएं, स्त्री – पुरूष के सामाजिक संबंध की दरार और मानसिक समस्याओं को नये परिवर्तित रूप में चित्रित किया है। इनकी कहानियों में पहाड़ी जीवन – शैली, नारी चरित्रों की लाचारी, बेबसी और मुक्ति की कामना, बदली हुई सामाजिक रूढ़ियों की जटिलता तथा नारी की नवीन मानसिकता को उजागर करती है। एक रोचक बात है कि शेखर जोशी की कहानी 'कोसी का घटवार' का अंत नहीं है। यह खुली और पाठकीय सहभागिता की कहानी है। पाठक जैसे चाहे उसे आगे बढ़ाए। यही खासियत शेखर जोशी को एक बेहतरीन कहानीकार बनाती है और इस कहानी को अमर प्रेम कहानी बना देती है। शेखर जोशी ने 'नयी कहानी' के दौर में ही लिखना आरम्भ किया था, किन्तु उस समय भी उन्होंने अपने को तथाकथित अस्तित्ववादी आधुनिकता के दायरे से मुक्त रखा था। शेखर जोशी के कथा साहित्य में उतराखंड के पर्वतीय अंचल में परिव्याप्त स्थानीय सामाजिक लोक – जीवन का कुशलतापूर्वक चित्रांकन हुआ है। उनकी कहानियों के शीर्षक भी स्थानीय नासों, स्थानों अथवा लोकग्राह्य संज्ञाओं की व्यंजना करते हैं। वस्तुतः शेखर जोशी की कहानियां सामाजिक जीवन की विसंगतियों को बड़ी सहजता एवं सरलता से पाठक को परिचित कराती है। इसके साथ ही भावनात्मक घनत्व, मध्यवर्गीय प्रदर्शनप्रियता और उससे उत्पन्न संकट, पीढ़ियों का संघर्ष, फरानी पीढ़ी की विवशता, अकेलापन, सात्विक प्रेम, दलितों की सामाजिक जागृति, लोक सूढ़ियों एवं लोक विश्वासों से उत्पन्न पीड़ा, श्रमिकों का शोषण, अफसरों की अमानवीयता एवं तानाशाही व्यवहार आदि के साफ – सुथरे चित्र इनकी कहानियों में शामिल हैं।

शेखर जोशी नयी कहानी आंदोलन से जुड़े हुए थे। नयी कहानी आंदोलन से शेखर जोशी को रचनात्मक माहौल मिला। नयी कहानी के दौर के कहानीकारों में शेखर जोशी का महत्वपूर्ण स्थान है। नयी कहानी से जुड़े लेखकों का बल कहानी में 'भोगे हुए यथार्थ के वर्णन पर था। रेणु, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह और शेखर जोशी जैसे कहानीकारों ने नयी कहानी के फलक को विस्तृत किया। रेणु और मार्कण्डेय ने जहां ग्रामीण जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाया वहीं शेखर जोशी ने पहाड़ी ग्रामीण जीवन को। इसका प्रमुख कारण शेखर जोशी का स्वयं पहाड़ी जीवन से सम्बद्ध होना था। 'कोसी का घटवार' कहानी का परिवेश पहाड़ का है। इस कहानी को विजयमोहन सिंह ने भी पहाड़ी आंचलिकता पर आधारित कहानी कहा है। अपने रचनात्मक परिवेश के बारे में, "हमारा मियों का परिवार था, पराये श्रम से समृद्ध और वर्ण दृष्टि के लिए पूरी तरह समर्पित, जीवन की परिस्थितियों ने छोटी उम्र में ही मुझे विभिन्न भौगोलिक और सामाजिक परिवेश में जीने के लिए विवश किया है। छोटी उम्र में ही मातृहीन हो जाने के बाद पर्वतीय जीवन के प्राकृतिक सौन्दर्य से अलग हटकर वनस्पति राजस्थान में स्थापित होकर जीना पड़ा और इस जीने का दुःखद अनुभव और अपने परिवेश से कटकर जीने की कृष्टप्रद अनुभुतियों ने मेरी संवेदना की धार तेज कर दी।" मनोविज्ञान की दृष्टि से 'कोसी का घटवार' के पात्र अत्यंत पारदर्शी हैं। जटिल से जटिल संवेदनात्मक उद्वेलन के क्षणों में भी पात्रों की मनः स्थिति और कार्यव्यापार पाठक के लिए सहज बोधगम्य है। दोनों पात्र अनुभव के धरातल पर गहरी संवेदना को दर्शाते हुए, हृदय पर चोट खाकर भी गहरे यथार्थवादी अर्थों में जीवन जीते हैं, चूकि यह एक यथार्थवादी कहानी है। पाठक वर्ग जब रस कहानी से परिचित होता है तो उसे यह आभास होता है कि अंतितः कहानी के दोनों प्रेमी युगल ही अकेलेपन का शिकार हैं। यह अकेलापन मनुष्य के हृदय को जरूरत पड़ने पर छलनी भी कर सकता है। गुसाई के फौज से सेवानिवृक्ति के बाद वह एकांत जीवन में प्रवेश कर जाता है। वैसे काफ्का की बात इस कहानी के परिप्रेक्ष्य में ठीक बैठती है कि "एकांत स्वयं को जानने का एक जरिया है। ? आगे इसी के समकक्ष वीरू सोनकर कहते हैं, एकांत भीड की चोट का एक मरहम है।" इस चोट का आशय क्या हम गुसाई का फौज से अलग हो जाने के संदर्भ में ले या लछ्मा से उसके अनाथ होने के चलते उससे शादी न हो पाने की स्थिति से लें ? जाहिर है पाठक समुदाय को कहानी पढ़ते वक्त ही मालूम होगा। गुसाई का अकेलापन, अकेले होने की एक खास पीड़ा भरी दशा

है। आधुनिक समाज में हर व्यक्ति अक्सर गहरा अकेलापन महसूस करता है। वैसे देखें तो आधुनिक ढंग का अकेलापन अब गांवों और पहाड़ों तक पहुंच गया है. जैसे शेखर जोशी के 'कोसी के घटवार' रास्ते पहुंचा है। वास्तव में बदलती चीजों के साथ चल न पाना मनुष्य को अकेला करता है। आशा के अनुरूप सामाजिक लक्ष्य हासिल न होने पर भी यह घटित होता है, ठीक वैसे ही जैसे गुसाई के आशा के फलस्वरूप जहां सांसारिक अर्थ में प्रेम परास्त हो जाता है। समाज के रुढ़िवादी सोच के कारण प्रेम हार जाता है और समाज की जीत होती है। दोनों का निश्छल प्रेम असफल रह जाता है। इसी संदर्भ में नामवर सिंह लिखते हैं, ''कहीं कोसी नदी की सूखी धार का घटवार के अकेलेपन का बिम्ब हैं, तो कठफोडवा की किट – किट, तथा पवनचक्की की मथानी की छच्छिटे सूने ह्रदय की निर्थक धड़कन का नादमय चित्र है।" गुसाई को उसका अकेलापन उसे जीने नहीं देता। किसी प्रतिछाया की भांति उसका पीछा करती रहती है। वह महसूस भी करता है कि अकेलापन दीर्धकाल तक उसका साथ देने के लिए उसके दरीचे पर मुंह उठाये बैठ गया हो। इस एकांत में उसके साथ कोई होता तो वह उसे अपनी कहानी, अपनी भोगी हुई जिंदगी की बात सुनता। पर ऐसा कुछ नहीं था वहा।

पूर्वदीप्ति शैली में लिखी 'कोसी का घटवार' दर्शन के उस उच्चतम शिखर को स्पर्श करती है, जहां मनुष्यता ही जीवन का सर्वोत्तम मूल्य है। फ्लैशबेक की सहायता से लेखक ने पुरानी स्मृतियों को ताजा कर अपनी कथावस्तु को गतिशीलता दी है। साधारणतया इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हम फिल्मों में देखते हैं जैसे– छिछोरे, बाहुबली, असुरन और मगधीरा। यह एक तरह की विशेष प्रेम कहानी है। आंचलिकता का हाथ थामे इस कहानी में आर्थिक समस्या एक बहुत बड़े खम्बे के रूप में लछ्मा के सिर पर पांव जमाये बैठा है। गोया, ''पेट का क्या, घर के खप्पर की तरह जितना डालो, कम हो जाए, अपने – पराये प्रेम से हंस – बोल दें, तो वह बहुत है, दिन काटने के लिए। "कहानी का नारी पात्र बाल विधवा लछ्मा पति की मृत्यु के पश्चात अत्यन्त गरीबी से जीवन यापन करती है। समाज उसकी मद्द के लिए हाथ नहीं बढ़ाता। आर्थिक कठिनाईयों के कारण वह अपने एकमात्र बेटे को भरपेट रोटी खिला पाने में असमर्थ नजर आती है। इस कहानी में गुसाई सिंह, लछ्मा और उसके पुत्र के परस्पर संवादों से लछ्मा की विवशता और आर्थिक कठिनाईयों का प्रकटीकरण होता हैं जिसमें उसका भूखा बेटा घर की विवशता के साफ–साफ दृश्य अंकित होते हुए दिखाई देते हैं, "मैं तो अपने टैम से ही खाऊंगा।'' यह तो बच्चे के लिए स्पष्ट कहने में उसे झिझक महसूस हो रही थी जैसे बच्चे के संबंध में चिंतित होने की चेष्टा अनाधिकार हो। "न–न, जी। वह तो अभी घर से खाकर ही आ रहा है। मैं रोटियां बनाकर रख आयी थी।'' "अरे, यों ही कहती है। कहा रखी थी रोटियां घर में बच्चे ने रूआंसी आवाज में वास्तविक स्थिति स्पष्ट कर दी। रोटियों को देखकर तो उसका संयम ढीला पड़ गया।' वैसे समाज में कोई किसी की मद्द करता भी है तो उसके पीछे उसका स्वार्थ छिपा रहता है।

शेखर जोशी की कहानी 'कोसी का घटवार में भारत की सीधा– साधा सभ्य समाज दर्शाया गया है। उस समाज की अलग दुनिया है जिसमें वह निश्छल प्रपंचहीन जीवन व्यतीत करता है। यह कहानी मूलतः भावबोध ा की यथार्थवादी कहानी है। हेमंत देवलेकर लिखते हैं, "प्रेम होना ही सबसे बड़ी सफलता है, कोई असफल कैसे हो सकता है।' जबकि गुसाईं और लछ्मा का प्रेम अकलेपन ओर संत्रास का प्रतीक बन गया है। दोनों ही एक जटिल मनौवैज्ञानिक तनावपूर्ण जीवन जी रहे हैं। उनके सामने समाज की मर्यादा निभाने की चुनौती भी है और आपसी प्रेम की असहनीय पीड़ा भी। उन्हें कसक पहुंचाती है यह पीड़ा। प्रेम तो वैसे भी बहुआयामी दृष्टिकोण स्वामी होता है। प्रेम जहां सघन हो जाता है, उसमें सहज ही एक प्रकार की आत्मीय सादगी आ जाती है। सादगी का यह औदार्य ही 'कोसी का घटवार' कहानी का मूल उत्स है। गुसाईं और लछ्मा किसी समय प्रेमी थे, प्रेमी अब भी हैं, लेकिन कहानी यहां यह दिखलाती है कि अब वे अपनी भावनाओं को चाहकर भी उस रुप में प्रकट नहीं कर सकते। दोनों एक–दूसरे के प्रारब्द्ध पर विस्मित हैं, मगर दोनों परंपरागत नैतिकता से बंधे हुए है,

जिसकी वे रक्षा भी करते हैं। शेखर जोशी ने इस कहानी में सामाजिक परिवेश को कहीं तोड़ा–मरोड़ा नहीं है। सामाजिक गरिमा के साथ, प्रेम की गरिमा का भी पूर्णतः निर्वाह किया है, परंतु जब ग्रामीण समाज के दायरे में रहकर प्रेमियों का प्रेम परवान नहीं चढ़ पाता और विवाह की कसौटी बुजुर्ग अपने हिसाब से जीवन – मृत्यु और भरण–पोषण के तराजू पर तौल कर तय करते हैं तो ऐसी स्थिति में स्त्री और पुरुष का भावी जीवन कितना सुखमय बनता है, इस पर सवाल तो अवश्य उठेगा? क्योंकि गांव में प्रेम को समझने की शक्ति कम होती है। लछ्मा और गुसाईं के प्रेम को सांसारिक रूप से समाप्त कर दिया जाता है। कभी – कभी प्यार, समर्पण का सम्पूर्ण भाव पुरुषों की तरफ से दिखाया गया है। 'उसने कहा था', 'गुंडा' और 'कोसी का घटवार' जैसे कहानियों के पारिप्रेक्ष्य में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देख सकते हैं। अंचलिकता का दामन थामे कहानी अपनी जमीन और भाषा भी गढ़ती है। बालकिशन पाण्डेय कहते हैं कि, "कछ शाश्वत समस्याओं को उठाते हुए आंचलिक मूल्य मान्यताओं की सीमा का भी ध्यान रखा गया है, अन्यथा 'कोसी का घटवार' में गहरे रोमानी स्तर पर लछ्मा व गुसाईं घटवार का पुर्नमिलन इतना नीरस और उद्देश्यहीन न होता।' गुसाईं और लछ्मा के माध्यम से प्रेम के सामाजिक यथार्थ को रेखांकित किया गया है, साथ ही स्वच्छंद प्रेम के वर्णन में समाज को बाधक रूप में भी दिखाया गया है। परंपरा और रुढ़ियों में द्वंद्ध एवं विद्रोह इस कहानी में किसी पात्र के जरिए नहीं बल्कि पाठक के माध्यम से दिखाई देता है।

कहानी के अंत में टीस बनी रहती है कि लछ्मा तो स्त्री है, वह लोक – लाज में व्याप्त आचार–व्यवहार और लोक–लाज से भयभीत है लेकिन गुसाईं तो एक पुरुष है, उसे आगे बढ़कर लछ्मा को अपनाना चाहिए। प्रश्न उसी आधारगत मौलिकता का बच जाता है जिसकी रक्षा प्रेमचंद ने 'कफन' में बुधिया के दारूण मौत से की थी। परन्तु शेखर जोशी की इस कहानी में उन्होंने उसकी रक्षा लछ्मा और गुसाईं के प्रेम की मौत से की है। यह हमारा सामाजिक यथार्थ है, इसकी कीमत कभी स्त्री के मौत से चुकायी जाती है तो कभी उसके प्रेम के मौत से, पर यही यथार्थ है।

निष्कर्ष रूप में देखें तो इस कहानी में कहानीकार पात्रों को नहीं, समाज को बदलने की गुहार लगाते दिखते हैं। यही कहानी की सार्थकता है। 'कोसी का घटवार' हिंदी की एक चर्चित और यादगार प्रेम कहानी है, लेकिन इसके अलावा और भी महत्वपूर्ण स्वर इसमें अनुस्यूत हैं। कहानी प्रेम के बहाने युद्ध और पहाड़ के ऐतिहासिक संबंध को स्पष्ट करती है। अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच में भाषा एक तीसरी सत्ता के रूप में स्वीकृत है। रचनाओं में भाषा मात्र सवाद, का माध्यम भर नहीं होती, इससे कुछ ज्यादा होती है। वह रचना–प्रक्रिया के साथ–साथ लेखक की जीवन–प्रकिया से भी जुड़ी होती है। आम लोगों की तरह लेखक भी भाषा से ही सीखता है। कहानी की भाषा में कोसी नदी की धार की तरह सहजता है। यह कहानी ग्रामीण परिवेश से ओत–प्रोत है। इस कहानी में शेखर जोशी ने ग्रामीण भाषा पर भी पूरा ध्यान दिया है। आडम्बरहीन कथ्य और शिल्प से सजी यह कहानी अर्थ सम्प्रेषणीयता में अचूक हैं। हिंदी कहानी में 'कोसी का घटवार' किस कदर चर्चित है, उसकी एक मिसाल यह है कि शेखर जोशी का नाम आने पर लोग पूछते है, कौन वह 'कोसी का घटवार' वाले।

18.4.1 'कोसी का घटवार' कहानी का उद्देश्य

'कोसी का घटवार' कहानी के लेखक शेखर जोशी हैं। इसका प्रकाशन सन् 1985 में हुआ था। यह कहानी उनकी सबसे अधिक लोकप्रिय कहानी है। इस पर फिल्म भी बनी है। 'कोसी का घटवार' कहानी में लेखक ने बताया कि वह इस कहानी के पात्र किसी गुसाईं और लछ्मा को नहीं जानते थे। यह फौज में जाने वाले ऐसे सिपाही के जीवन से जुड़ी कहानी है जो कभी विवाह नहीं करता। वह गाँव की लछ्मा से प्यार करता है। जब लछ्मा की शादी किसी दूसरे युवक रामसिंह से हो जाती है तो गुसाईं टूट जाता है। यह एक अधुरी

प्रेम कहानी है। इस कहानी को चन्द्रधर शर्मां गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' के समक्ष माना जाता है। 'कोसी का घटवार' कहानी पहाड़ी परिवेश की कहानी है। इसमें पहाड़ी जीवन की झलक दिखाई देती है। यह कहानी 'फ्लैशबैक' शैली पर आधारित आंचलिक कहानी है। यह निस्वार्थ प्रेम की भावना को दर्शाती है। यह कहानी भाग्य को विडम्बना और परिस्थितियों के दुश्चक्र में फंसे दो प्रेमियों की करुण कहानी है।

शेखर जोशी की कहानी 'कोसी का घटवार' एक ऐसी कहानी है जिसके अंदर प्रेम की व्यथा से लेकर समाज के परिदृश्य के साथ – साथ जीवन के परिचायक को दर्शाया गया है। शेखर जोशी की इस बेहद खूबसूरत कहानी में कहीं पर भी 'प्रेम' शब्द नहीं आया है और कहीं पर भी दोनों पात्रों ने कभी आँखें नहीं मिलाई हैं। इसके बावजूद यह प्रेम की अद्भुत कहानी है। इस कहानी में प्रेम भी है और थोड़ा भी। लेखक स्वयं कहता है कि यह कहानी पहाड़ के कहानीकार की मनोवृत्ति का ही चित्रण करती है। पूरी कहानी मानवीय प्रेम में गहरी निष्ठा दिखाने वाली कहानी है। पहाड़ी जीवन में व्याप्त संघर्ष और निरंतर हो रहे परिवर्तनों को लेखक ने स्वयं अनुभव किया हैं। पर्वतीय जीवन का वर्णन करते हुए लिखते हैं – "सामने पहाड़ी के बीच की पगड़ी से सरपट बोझा लिए एक नारी आकृति उसी ओर चली आ रही थी। गुसाईं ने सोचा वहीं से आवाज देकर उसे लौटा दे। कोसी ने चिकने, गई लगे पत्थरों पर कठिनाई से पलकर उसे वहाँ तक आकर केवल निराश लौट जाने को क्यों वह बाध्य करें।

प्रस्तुत कहानी की शुरुआत गुसाई के अकेलपन को पीड़ा से होती है। उसे इस बात का पता है कि उसका यह एकाकीपन उसके जीवन का एक हिस्सा है। इससे उसकी मुक्ति होने वाली नहीं है। इसलिए इस कहानी को हम प्रेम कहानी नहीं, अपितु प्रेम की पीड़ा की कहानी है। कहानी का आरंभ गुसाईं की मनोदशा की अभिव्यक्ति के साथ होता है। वह चिलम पीना चाहता है, परंतु उसका मन चिलम में नहीं लगता। इस कहानी का पहला ही वामथ हमें बताता है कि गुसाईं का मन पहले से ही उखड़ा हुआ तथा उद्विग्न है। वह अशांत चित है तथा उससे उभरने का जरिया चिलम में ढूंढना चाहता है, परंतु उससे राहत महसूस नहीं होती। वह अपने मन की परेशानी को दूर करने के लिए बेवजह घर में जाकर अनाज को उलटता–पुलटता है। गुसाईं की दृष्टि में कोई खलनायक नहीं है, फिर भी अत्यन्त दर्द मानवीय है। उसका यह दर्द कुछ उसके अपने भावों के कारण से है और कुछ उसकी प्रिया ने दिए हैं। यदि वह व्यावहारिक या समझदार होता तो अपने प्रिया के साथ शादी करके अपना घर बसा लेता। परंतु वह ऐसा न कर पाने के कारण आज एकाकीपन की पीड़ा का शिकार है। लेखक ने स्वयं लिखा है –'सुखी नवीं के किनारे बैठा गसाईं सोचने लगा, क्योकि उस व्यक्ति को लौटा दिया? लौट तो वह जाता ही, घट के अंदर टच्च पड़े निशान के थैलों को देखकर। दो–चार क्षण की बातचीत का आसरा ही होता। एक स्थान पर और लिखा है – "सखी नदी के किनारे का यह अकेलापन नहीं, जिंदगी भर साथ देने के लिए जो अकेलापन उसके द्वार पर धरना देकर बैठ गया, वही जिसे अपना कह सके ऐसे किसी प्राणी का स्वर उसके लिए नहीं।"

गसाईं अकेला है तथा उसका घट गाँव से बाहर है। वह लछ्मा से प्रेम करता था, लेकिन लछ्मा के पिता ने उसकी शादी पास के गांव के रामसिंह के साथ कर दी थी। यद्यपि लछ्मां ने गुसाईं से वादा किया था कि वह वही करेगी जो गुसाई चाहेगा, लेकिन लछ्मा अपने पिता की बात का प्रतिकार नहीं कर सकी। उसके बाप ने कहा थाा– ''जिसके आगे पीछे भाई – बहन नहीं, माई – बाप नहीं, परदेश के बंदूक रखने वाले की नोक पर जान रखने वाले को छोकरी कैसे दें ?

आज घट में काम करते हुए करीब 15– 16 साल पुरानी बातें यादें आ रही हैं। लछ्मा ने रामसिंह से शादी कर लेने के बाद उसने गांव आना ही छोड़ दिया। वह (गुसाई ने) चाहकर भी लछ्मा के विषय में कुछ नहीं पूछ पाया। छुट्टियों में स्टेशन–दर–स्टेशन नौकरी करता रहा, परन्तु गांव नहीं आया। लछ्मा के दूसरे लड़के से शादी कर लेने के पश्चात् भी उसके प्रति गुसाई के मन में कोई शिकायत नहीं है। लछ्मा अपने वादे से मुकर

गई थी, फिर भी गुसाई इस बात को लेकर तनिक भी चिंतित नहीं है। इतना सब कुछ होते हुए भी वह लछ्मा के प्रति चिंतित है। लछ्मा ने जब गुसाई से वादा किया था तो उसने 'गंगा नाथ न्यू' की कसम खाई थी। गंगानाथ उतराखंड के कुमाऊँ अंचल के देवता है। वहाँ के पहाड़ी लोक जीवन में इनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा का भाव है। गुसाई को लगता है कि हमें देवी– देवता की झूठी कसम नहीं खानी चाहिए। गुसाई की वर्षों से इच्छा है कि जब उसकी कभी लछ्मा से भेंट होगी तो वह अवश्य कहेगा कि वह 'गंगा नाथ का जागर' (जागरण) लगाकर प्रायश्चित कर ले। उसकी चिंता है कि लछ्मा ईश्वरीय कोप से बची रहे। जब घट पर उन दोनों की मुलाकात होती है तो वो इसकी शिकायत लछ्मा से कर देता है। गुसाई सोचता है कि देवी–देवताओं की झूठी कसमें खाकर उन्हें नाराज करने से क्या लाभ? जिस पर भी देवी – देवता का कोप होता है वह कभी फल – फूल नहीं पाता।

जब लछ्मा ने वादा तोड़ दिया था। तभी से उसने अकेला जीवन गुजारना कबूल कर लिया था। लछ्मा की वजह से अकेले रह जाने पर भी वह उसके प्रति हितचिंतन से भरा हुआ है। उसकी इच्छा है कि लछ्मा हमेशा सुखी रहे। उसके जीवन में परेशानियाँ न हो। लछ्मा के जीवन में उसकी वजह से कोई मुसीबत न आए। वह लछ्मा से अब भी प्रेम करता है, परंतु यह प्रेम जिम्मेदारी के साथ है। प्रेम तो सभी करते हैं, लेकिन प्रेम को बिना किसी अपेक्षा के बनाए रखना एक बड़ा मूल्य है। लछ्मा एक बार जब उसके घट में आती है तो बहत देर के पश्चात् गुसाई को याद आता है कि लछ्मा के गले में काला चरेऊ नहीं है। काला चरेऊ सुहाग का चिह्न होता है। यह मंगल सूत्र की तरह होता है। वह उसके असमय विधवा हो जाने पर बहुत की प्रविभूत हो जाता है, परंतु कुछ कह नहीं पाता। दोनों प्रेमी हैं, लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी है कि वे दोनों पुरानी बातें दोहरा नहीं सकते। लछ्मा विधवा और एक बच्चे की माँ है। जाते समय वह लछ्मा की आर्थिक सहायता करना चाहता है लेकिन लछ्मा अस्वीकार कर देती है। फिर गसाई छिपाकर अपने हिस्से का आटा लछ्मा के बोरे में डाल देता है। गुसाई उसके जीवन संघर्ष में थोडा सा ही सही हाथ बांटाने की हसरत है। दोनों एक दूसरे के प्रारम्भ पर विधिवत है, परन्तु दोनों परंपरागत नैतिकता से बंधे हुए है। जिसकी ये दोनों ही रक्षा करते है। वे मर्यादा भंग नहीं करते है। गुसाई को पता है कि उसके चाहने पर सामाजिक नजर है इसलिए उनका मिलना –जुलना ठीक नहीं है। ज्यादा मिलने पर लछ्मा की मार्यादा और प्रतिष्ठा पर आंच आ सकती है। गुसाई इस बात को अच्छी तरह से समझता है। गुसाई की समझदारी तथा जिम्मेदारी ही उसके प्रेम के पुर्नमिलन में क्या है। कहानी के अंत में दोनों के मिलन पर सहज अहसास और प्रेम के लिए कुछ कर पाने की याद ही सुखद है। कहानी में यही आंनद के पल है, बाकी सब अकेलापन, अंधकार और निराशा है। इन आंनद के पलों का भविष्य है –ये हमेशा बने रहेंगे, लेकिन मर्यादा की लक्ष्मण रेखा है। गुसाई चाहता है कि उसे लछ्मा की छवि खराब नहीं करती है, जहां तक संभव हो मद्द करती है। मद्द करते हुए भी प्रिया की प्रतिष्ठा तथा आत्मसम्मान का भी ध्यान रखना है।

पहाड़ी हमेशा ही फौज में भर्ती का एक बड़ा केन्द्र रहा है। पहले रजवाड़ों के यहाँ और फिर अंग्रेजों की फौज में। आज की हिन्दुस्तानी आर्मी में भी सबसे ज्यादा सैनिक उत्तराखंड से हैं। यह एक तथ्य है। इसका सीधा–सा कारण पहाड़ में जीविका का अभाव है। खाने – कमाने की मजबूरी में पहाड़ों से लाखों की संख्या में जवान फौज में गए। गुसाई भी फौज में धर्मसिंह की क्रीज वाली पैंट देखकर ही गया और वापस जीवन भर को अकेलेपन के साथ लौटा लछ्मा के पिता को फौज की नौकरी से शिकायत है। इस शिकायत में एक पिता की चिंता शामिल है और गुसाई को क्रीज वाली पेंट पहननी है। गुसाई फौज में चला जाता है और लछ्मा किसी और युवक से ब्याह दी जाती है। कुछ दिनों पश्चात् यह विधवा हो जाती है। अब लछ्मा को जीवन में क्या हासिल हुआ। प्रेमी भी हाथ से गया और पति की भी मृत्यु हो गई। इन दोनों के प्रेम के बीच में फौज हैं। इस प्रेम कहानी की पृष्ठभमि में पहाड़ का युद्ध से ऐतिहासिक सबंध हैं। चंद्रधर शर्मा, 'गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' 'सरस्वती पत्रिका में सन् 1915 में प्रकाशित हुई थी। उस कहानी में प्रथम विश्वयुद्ध का माहौल छाया हआ है।

इस प्रकार प्रथम विश्वयुद्ध ने हिंदी को 'उसने कहा था जैसी कहानी दी। उसी प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध ने हिंदी का 'कोसी का घटयार' कहानी दी। इस कहानी को सपूर्णता में युद्ध से अलग करके नहीं देखा जा सकता। युद्ध ने पहाड़ को कई जख्म दिए हैं। यह कहानी भी उनमें से एक है। कहानीकार ने इस कहानी में प्रेम के दो स्वरूप दिखाए हैं। एक प्रेम के शरुआती दिन हैं जिसमें दोनों साथ–साथ जीन–मरने की कसमें खाते हैं। एक उम्र होती है जिसमें जिंदगी की जटिलताओं तथा विडम्बनाओं की खबर कम हुआ करती हैं। यह यही उम्र है जिसमें वादे किए जाते हैं तथा कसमें खाई जाती है। लछ्मा और गुसाई की भी यही उम्र है। लेकिन उनकी कसमें पूरी नहीं हो पाती क्योंकि लछ्मा के पिता की सहमति नहीं है। ऐसा नहीं है कि बेटी का पिता बेटी से प्रेम नहीं करता है। पिता को बेटी की परवाह ज्यादा होती है। वह अपनी बेटी के हित के खातिर गुसाई से शादी न करके रामसिंह से शादी करता है, परंतु कभी – कभी हित करने की चाहत में कैसे अहित हो जाता है, पिता को इसका आभास भी नहीं होता। यही जिंदगी की पेचीदगी है। हमारे चाहने तथा उसके होने के बीच कई और चीजें काम करती हैं। इस प्रकार गुसाई एवं लछ्मा की शादी नहीं हो पाती। प्रेम के लिए गुसाई ने त्याग किया। यह उसके बस में था, परन्तु लछ्मा के बस में नहीं था। उसके ऊपर उसके पिता थे। इस घटना ने पन्द्रह साल बाद फिर एक दिन भाग्यवश दोनों की भेंट हो जाती है। इस प्रेम कहानी का सबसे रोमांचक मोड़ यही है जब दो पुराने और बिछड़े हुए प्रेमी हठात आमने – सामने पड़ जाएं। प्रेम आज भी उतना ही है, परंतु मात्र यह मुखर नहीं, गोपन है। वह परिपक्व है। अधिकार भाव से लछ्मा गुसाई के लिए रोटी व चाय बनाती है और गुसाई से उसके आटे के थैले में अपने हिस्से का आटा मिला देता है। युवा आलोचक पल्लव लिखते हैं –"कहानी मामूली लोगों के जीवन को आधार बनाती है और इसकी प्रेरणा अत्यन्त गैर मामूली है। प्रेम स्वयं ही पुरुषार्थ है, प्रेम के लिए, कोई उद्देश्य खोजना ना समझी है। शेखर जोशी इस प्रेम की शाश्वता को फिर आकार देते है। (पल्लव, कोसी का घटवार', पृ. सं. 206 अहद –4 जनवरी – 2014)

निष्फर्षतः कहा जा सकता है कि 'कोसी का घटवार हिन्दी की एक चचित और यादगार प्रेम कहानी है, परंतु इसके अतिरिक्त और भी महत्त्वपूर्ण स्वर इसमें अनुस्यूत है। प्रस्तुत कहानी प्रेम के बहाने युद्ध एवं पहाड़ के ऐतिहासिक संबंध को स्पष्ट करती है। हिन्दी काहानी में 'कोसी का घटवार' किस कदर चर्चित है, उसकी एक मिसाल यह है कि शेखर जोशी का नाम आने पर लोग पूछते हैं, कौन वह 'कोसी का घटवार' वाले।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'कोसी का घटवार' कहानी 1957 में किस पत्रिका में प्रकाशित हुई थी?
2. 'कोसी का घटवार' किस शैली में लिखी कहानी है?

18.5 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शेखर जोशी का जन्म 10 सितम्बर, 1932 को अल्मोडा (उतराखण्ड) जिले के सोमेश्वर ओलिया गांव में हुआ था। उन्होंने हिन्दी साहित्य को कोसी का घटवार, बदबू, दाज्यु जैसी अविस्मरणीय कहानियां दी। शेखर जोशी की कई कहानियों का अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

18.6 कठिन शब्दावली

परायण – अत्यासिक्त सार

यदा–कदा – जब कभी

अक्खड़ – स्पष्टवादी, कटुभाषी

18.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)
2. शेखर जोशी का

अभ्यास प्रश्न–2

1. कल्पना
2. पूर्वदीप्ति शैली

18.8 संदर्भित पुस्तकें

1. शेखर जोशी, प्रतिनिधि कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
2. डॉ० नरेन्द्र मोहन, समकालीन कहानी की पहचान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

18.9 सात्रिक प्रश्न

1. शेखर जोशी का साहित्यिक परिचय दीजिए।
2. गुसाई के चरित्र की विशेषताएं बताइए।
3. तत्वों के आधार पर 'कोसी का घटवार' की तात्विक समीक्षा कीजिए।

*****

इकाई–19
एस०आर० हरनोट जीवन और साहित्य

संरचना

19.1 भूमिका
19.2 उद्देश्य
19.3 एस०आर० हरनोट जीवन और साहित्य
19.3.1 जीवन परिचय
19.3.2 साहित्यिक परिचय
स्वयं आकलन प्रश्न–1
19.4 एस०आर० हरनोट की कहानियों की विशेषताएं
स्वयं आकलन प्रश्न–2
19.5 सारांश
19.6 कठिन शब्दावली
19.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
19.8 संदर्भित पुस्तकें
19.9 सात्रिक प्रश्न

19.1 भूमिका

इकाई अठारह में हमने शेखर जोशी के जीवन परिचय एवं उनकी कहानी 'कोसी का घटवार' का अध्ययन किया। पाठ उन्नीस में हम एस०आर० हरनोट के जीवन एवं साहित्यिक परिचय का अध्ययन करेंगे। एस०आर० हरनोट की कहानी 'जीन काठी' के सार एवं उद्देश्य का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

19.2 उद्देश्य

इकाई उन्नीस का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि–

1. एस०आर० हरनोट का जीवन परिचय क्या है?
2. एस०आर० हरनोट का साहित्यिक परिचय क्या है?
3. 'जीन काठी' कहानी का सार क्या है?
4. 'जीन काठी' कहानी का उद्देश्य क्या है?

19.3 एस०आर० हरनोट जीवन और साहित्य

19.3.1 जीवन परिचय

एस. आर, हरनोट का जन्म 22 जनवरी, 1955 को हिमाचल प्रदेश के जिला शिमला की तहसील सुन्नी में स्थित पिछड़ी पंचायत व गांव चनावग में हआ। वह हिंदी और पहाड़ी में अपनी कई कविताओं, लघु कथाओं और उपन्यासों के लिए जाने जाते हैं। उन्हें राज्य, राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर कई पुस्कार प्राप्त हए हैं। उनके काम ने काफी, विद्वता और अन्य लोगों द्वारा विभिन्न कलात्मक रूपों के कई अनुकलन को प्रेरित किया है। हरनोट ज्यादातर सामाजिक मुद्दों जैसे सामाजिक – सास्कृतिक परिवर्तन, जातिवाद, पर्यावरणीय गिरावट, कॉपोरेट लालच और समकालीन ग्रामीण पश्चिमी हिमालय के रोजमर्रा के जीवन में आधिकारिक भ्रष्टाचार के बारे में लिखते हैं।

शिक्षा : बी.ए. (आनर्स), एम. ए. (हिन्दी), पत्रकारिता, लोक – सम्पर्क, एवं प्रचार – प्रसार में उपाधि पत्र।

एस. आर. हरनोट का कार्यक्षेत्र

वर्ष 1973 से वर्ष 1977 तक प्रदेश सरकार के औद्योगिक विभाग की भूगर्भ शाखा में लिपिक के पद पर कार्य तथा उसके बाद हिमाचल प्रदेश पर्यटन विकास निगम में वर्ष 1997 में स्टेनोग्राफर के पद से नौकरी की शुरुआत वर्ष 2013 जनवरी में उप महाप्राबधक (प्रचार एवं सूचना) के पद से सेवा अवकाश, लेखन पर्यटन और फोटोग्राफी में समान रूप से सक्रिय।

19.3.2 साहित्यिक परिचय

कहानी संग्रह – पंजा, आकाशबेल, पीठ पर पहाड, दारोश, जीनकाठी, मिट्टी के लोग लिटन ब्लॉक गिर रहा है, कीलें, आधार चयन कहानियाँ, 10 प्रतिनिधि कहानियाँ, नदी गायब है (पर्यावरणीय चेतना की कहानियों –संपादन, डॉ. उषा रानी राव और माफिया (अंग्रेजी कहानी संग्रह – सोज वशिष्ठ द्वारा अनुवादित), केंब्रिज स्कॉर्ल्ज, यू. के. से अंग्रेजी अनुवाद की पुस्तक केट्स टाक (संपादन प्रो. मीनाक्षी ऍफ पॉल और खेमराज शर्मा)

उपन्यास– हिडिम्ब

एस. आर. हरनोट की अन्य कृतियाँ

यात्रा विवरण– यात्रा (किन्नौर, स्थिति, लाहुल और मणिमहेश पर सांस्कृतिक ऐतिहासिक यात्राएँ) हिमाचल से जान पहचान, हिमाचल एट ए ग्लास (संयुक्त कार्य) और हिमाचल प्रदेशः मंदिर और लोकश्रृतियाँ हिमाचल की संस्कृति और जनजीवन पर पांच पुस्तकें – हिमाचल के मंदिर लोक कथाएँ।

अनुवाद– 23 कहानियाँ अंग्रेजी, 2 मराठी, 7 गुजराती, 1 तेलगु। उड़िया और एक कहानी रूसी भाषा में अनुवादित और प्रकाशित हिडिम्ब उपन्यास का मराठी अनुवाद व प्रकाशन।

इसके अतिरिक्त देश व विदेश से प्रकाशित 30 से अधिक हिन्दी, अंग्रेजी गुजराती मराठी, पंजाबी और कई अन्य भाषाओं के संपादित संकलनों तथा अनेक वेब पत्रिकाओं में कहानियाँ संकलित कई कहानियों का नाट्य रूपान्तरण और मंचन कई विश्वविद्यालयों में एम.फिल/पी.एच.डी के लिए शोध और हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा के विविध पाठयक्रमों में कहानियाँ शामिल, कहानी 'दारोश पर दिल्ली दर्शन द्वारा 'इंडियन क्लासिक्स सीटीज के अंतर्गत' फिल्म का निर्माण व प्रसारण कहानी लाल 'कील' पर आर्यन हरनोट, मुट्ठी में गाँव पर अदाकार मुम्बई और कहानी लाल होता है। दरख्त पर फिल्म निर्माता डॉ. देवकन्या ठाकुर द्वारा लघु फिल्मों का निर्माण फोटोग्राफी में विशेष रुचि और कई छायाचित्र प्रदर्शनियों के आयोजन हिन्दी साहित्य की लघु पत्रिकाओं के प्रचार – प्रसार में सक्रिय सहयोग, हिडिम्ब उपन्यास लिटन ब्लॉक गिर रहा है कहानी संग्रह और हिमाचल प्रदेश मंदिर और लोक श्रुतियाँ पुस्तकों का आकाशवाणी शिमला और एफ.एम पर श्रृंखलाबद्ध प्रसारणः ।

एस. आर. हरनोट को सम्मान व पुरस्कार

अन्तरराष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा सम्मान, जे. सी जोशी शब्द साधक जनप्रिय लेखक, हिमाचल राज्य अकादमी पुरस्कार, हिमाचल प्रदेश पर्यटन विकास निगम द्वारा पर्यटन और साहित्य सम्मान, अखिल भारतीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड, हिमाचल गौरव सम्मान, प्राचीन कला केन्द्र चण्डीगढ़ द्वारा श्रेषठ साहित्य सम्मान, हिमाचल केसरी एवार्ड, दिव्य हिमाचल दैनिक समाचार पत्र द्वारा हिमाचल दिस वीक अंग्रेजी साप्ताहिक के माध्यम से टाइटर ऑफ द ईयर एवार्ड, हिमाचल प्रदेश के प्रतिष्ठित दैनिक समाचार पत्र हिमाचल' का एक्सेलेंस एवार्ड – 2019।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–1

1. एस. आर. हरनोट का जन्म कहां हुआ था?
2. 'यात्रा' किसका यात्रा विवरण है?

जीन काठी कहानी का सार

'जीन काठी' कहानी हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध कहानीकार एवं उपन्यासकार एस. आर. हरनोट की प्रसिद्ध कहानी है। यह कहानी वर्ग – व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन की मुख्य धारा में हाशिए की जिंदगी व्यतीत कर रहे दलितों की वास्तविक पीड़ा, जातीय, संस्कृति, संघर्ष तथा सामाजिक महत्त्व के कार्यों में अछूत होने के कारण वंचित किए जाने की स्थिति का मार्मिक चित्रण उपस्थित करते हुए सदियों से हो रहे शोषण एवं दमन के खिलाफ प्रतिरोध की एक संस्कृति विकसित करती है। यह कहानी '"बेड़ा' नामक दलित जाति के परिवार से संबंधित है। इस कहानी का सार इस प्रकार है –

'भुंडा पहाड़ी समाज का एक विचित्र, उत्कृष्ट और विशेष उत्सव है। इसमें 'बेड़ा' नामक दलित जाति के परिवार से एक व्यक्ति को चुनकर उसे यज्ञोपवीत धारण करवा कर ब्राह्मण बना दिया जाता है। इस कहानी का प्रमुख पात्र सहजू या सहज राम है। वह दलित जाति से संबंध रखता परे गाँव में चार – पाँच परिवार दलितों के थे। उन्हीं में एक परिवार 'बेड़ा' जाति का था जो भुंडा में मुख्य भूमिका निभाया करता था। लेकिन बरसों पहले उनके परिवार का एक सदस्य भुंडा का रस्सा टूटने से मृत्यु को प्राप्त हो गया था। उस गाँव में वह दिन बड़े अनिष्ट का माना गया था। उसके बाद गाँव में भयंकर महामारी फैल गई। आधा गाँव मौत के मुँह में चला गया। वह पूरा गाँव ब्राह्मणों का था। पाँच गौत्रों के ब्राह्मण वहाँ रहते थे। उन सभी ने मिलकर बेड़ा के परिवार के साथ दूसरे दलितों को भी गाँव से बाहर कर दिया और सारे अनिष्ट का ठीकरा उन्हीं के सिर पर मढ़ दिया।

गाँव में भगवान दत्त शर्मा नामक एक व्यक्ति था जो तहसीलदार के पद से सेवानिवृत्त हुआ था। सेवा निवृत्ति वाले दिन उन्होंने पूरे गाँव को एक दावत दी थी जिसमें विधायक के साथ–साथ प्रशासन के उच्च अधिकारी भी पधारे थे। वहाँ लोगों के बीच उन्होंने अपनी छवि को एक धार्मिक दृष्टि देने का भी प्रयास किया था। यह दावत देकर उन्होंने कई निशाने साधे थे, लेकिन इस बात की भनक किसी को भी नहीं लगने दी। नौकरी करते हुए उन्होंने कभी टाई और कोट पहनना नहीं छोड़ा, परंतु, अब उन्होंने अपना लिवास बदल लिया और कुर्ते पाजामे पर आ गए थे। सबसे पहले उन्होंने गाँव की देवता कमेटी में घुसने का किया। वे कई दिनों तक देवता के कार्यक्रमों में आते – जाते थे। उनके सार्वजनिक कार्यों को देखकर परे गाँव ने सर्वसम्मति से उन्हें अपना सरपंच चुन लिया। धीरे – धीरे आस – पास के इलाकों में भी उनके नाम का डंका बजने लगा तथा विधायक तक उनकी पहुँच बन गई।

गाँव में 'भुंडा' उत्सव हुआ करता था। लेकिन एक हादसे के कारण वह अब बंद हो गया था। हालांकि दूसरे गाँवों में कभी – कभार बीस – चौबीस बरसों के बाद यह आयोजन होता रहता था। अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए शर्मा जी को इससे बेहतर कोई दूसरा उपाय नजर नहीं आ रहा था। एक दिन उन्होंने देवता कमेटी के सदस्यों से इस बारे में बातचीत की। उन्होंने सदस्यों से कहा–"उनके गाँव पर अभी तक इस अनिष्ट का साया बरकरार है। वह तभी मिट सकता है जब गाँव में भुंडा का आयोजन किया जाए। इससे गाँव पहले जैसा सम्पन्न और खुशहाल भी हो जाएगा। इस आयोजन के लिए देवता कमेटी को रुपयों को सख्त जरूरत थी। इसलिए उन्होंने एक लाख रुपए दान देने का वादा कर दिया। ऐसा करने से सभी सदस्यों का मनोबल बढ़ गया और इस बात पर सभी की सहमति बन गई।

अब गाँव के लोगों के पास 'बेडा' जाति की बरसों खोज करने की थी। उन्हें मालूम नहीं था कि पहले गांव से निकाले जाने के बाद वे लोग कहाँ जाकर बस गए थे। शर्मा जी ने ही इसका समाधान निकाल लिया उन्होंने बेड़ा को ढूंढने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी तथा आयोजन की पूरी रूप–रेखा अपने मन मे तैयार कर ली थह। वे सोच रहे थे कि यदि यह काम सफल हो जाएगा तो दो लाभ होंगे। पहला पूर गांव को कलंक और शाप से छुटकारा मिलेगा तथा दूसरा भुंडा के सफल आयोजन से पुण्य ही पण्य। शर्मा जी गाँव के एक –दो लोगों को लेकर हल्के के विधायक के पास पहँचे। उन्होंने इस बारे में विधायक से बातचीत की। इधर विधायक ने भी उसकी आड़ में अपना हिसाब – किताब लगाया। उन्होंने सोचा कि गाँव से निष्कासित बेड़ा और दलित परिवार की पुनः इस बहाने सम्मान मिलेगा तथा आगामी चुनावों में वोट। इसलिए उन्होंने एक कागज पर बेडा परिवार का पता लिख दिया। जिस गाँव का नाम लिखा था उस गाँव का नाम शर्मा जी कभी नहीं सुना था। शर्मा जी कमेटी के दो सदस्यों को अपने साथ लेकर बेड़ा को आमंत्रित करने चल दिए। पहले तो वे दोनों गाड़ी से गए, लेकिन चढ़ाई वाला रास्ता होने के कारण उन्होंने सात मील पैदल की यात्रा की। जैसे –तैसे वे वहाँ तक पहुंच गए। तभी वहां उन्होंने एक बुजुर्ग को हुक्का पीते हुए देखा। जब शर्मा जी ने उसे अपने गाँव का परिचय दिया तो उसकी आंखों में खून उत्तर आया। गुस्से से पूरा शरीर काँपने लगा। उन तीनों को लग रहा था कि वह या तो हुक्का चिलम समेत उन पर फेंक देगा या दराती लेकर उनके पीछे दौड़ेगा। उसने जैसे ही दराती का वार शर्मा जी पर करना चाहा तो अंदर से एक आदमी ने उसका हाथ पकड लिया और वह उसे अंदर ले गया। भीतर कुछ देर उन लोगों में आपस में बातचीत होती रही। तभी शर्मा जी को भुंडा के आयोजन पर पानी फिरता नजर आने लगा। वह आदमी गुस्से में बाहर निकलते ही उन पर चिल्ला पड़ा और कहने लगा – "यहाँ से चले जाएँ आप लोगों ने क्या सोच रखा है। कैसे निकाला था हमारे बुजुर्गों को सब जानते हैं। हम वहाँ दोबारा जलील होने जाएँ आप लोगों ने यह सोचा कैसे। हम बेवकूफ नहीं हैं। आज की बात होती तो बताते, हाँ। ''

तभी शर्मा जी ने दोनों हाथ जोड़कर कहा कि – "देखो भाई। जो कुछ आपके साथ हुआ, उसमें हमारा क्या दोष? हम उसके लिए आप सभी से माफी ही माँग सकते हैं। इसी खातिर आए भी हैं। आप जो चाहे आप सजा दे सकते हैं। भला – बुरा बोल सकते हैं। सब कुछ सर माथे। हम ही नहीं सारा गाँव उसके लिए शर्मिदा भी है। हम चाहते हैं कि आप भुंडा निभाएँ। हमारे साथ – साथ पुण्य के भागीदार भी बनें।" शर्मा जी के इस प्रकार के विनम्र एवं स्नेह से भरे हुए वचनों को सुनकर वह अधेड़ उम्र का आदमी और बुजुर्ग दोनों पिघल गए। उन तीनों को वहाँ पानी पिलाया गया और बैठने के लिए कुर्सियों दी गईं। अब तक इधर –उधर से कुछ मर्द और औरतें भी इकटठे हो गए थे। पंडितों का इस प्रकार गिड़गिड़ाना उन्हें अच्छा लग रहा था। उसी समय उस आदमी में उनके पास आकर अपना नाम सहज राम उफ सहजू और उस बुजुर्ग को अपना पिता बताया। शर्मा जी व अन्य दो लोगों ने सहज से पहले की घटना पर अफसोस व्यक्त किया और गाँव व देवता की तरफ से माफी माँगी। काफी देर बाद उन लोगों ने भुंडा में आने के लिए अपनी स्वीकृति दे दी।

वे तीनों देर रात खुशी – खुशी गाँव पहुँच गए। यह समाचार सुनकर गाँव वालों की खुशी का ठिकाना न रहा। अगले ही दिन से उत्सव की प्रक्रियाएँ आरभ हो गई। सबसे पहले देवता के मंदिर के प्रांगण में एक सभा बुलाई गई और काफी विचार – विमर्श के बाद प्रोहितों ने मुहूर्त व तिथियों को अंतिम रूप दे दिया। सहज को सर्वसम्मति से 'बेड़ा' नियुक्त कर लिया गया। अब पूरा गाँव भुंडा की तैयारियों में जुट गया। गाँव के सभी लोगों के लिए अलग – अलग कार्य निश्चित कर दिए गए। इस आयोजन के दूल्हे शर्मा जी बने हुए थे। कार्यक्रम के अनुसार नियुक्त किए गए लोग सहजू को लाने के लिए उसके गाँव चले गए थे। जिस दिन सहज 'बेड़ा' को गाँव लाया गया। उस दिन से भुंडा का आयोजन छह मास बाद होना था। उसे परिवार सहित देवता के मंदिर में रखा गया यहा आकर उसने मूँज का एक लंबा रस्सा तैयार किया हवन कुंड तैयार किया गया और उस पर यज्ञेश्वरी देवी की प्रतिमा का निर्माण किया तथा उसमें अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी गई। देवता की मूर्ति को मंदिर की गुफा से निकाला गया। वहाँ सारा गाँँव खडा जय –जयकार कर रहा था।

उत्सव के पहले दिन लोग वाद्यों के साथ मुख्य देवता के मंदिर से निकले। सभी छोटे–बड़े मदिरों में जाकर एक–एक दिया जलाते रहे तथा देवी – देवताओं को उत्सव के लिए बुलाते चले गए। दूसरे दिन सभी देवता एक स्थान पर एकत्र किए गए। देव – कलशों को गोल दायरे में रख दिया गया। बीच में गाँव की प्रमुख देवी का कलश था। तीसरा दिन जल यात्रा का था। इस दिन वरुण देवता की पूजा होनी थी। उत्सव में शामिल सभी औरतें सुंदर पहनावे के साथ सिर पर लाल कलश लिए हुए थीं। जुलूस पूर्व दिशा की ओर एक बावड़ी की तरफ चल दिया। वहाँ पहुचकर कलशों में ताजा जल भर दिया गया। पूजन हुआ तथा उन्हें यथावत् कन्याओं के सिर पर रखकर वापस मंदिर वापस लाया गया। भुंडा के आखिरी दिन से पूर्व मूल मंदिर और पूरे गाँव को प्रेतात्माओं से सुरक्षित करना था। इसलिए हवन और मंत्रोच्चारण किया गया। असंख्य भेड़ों व बकरों की बलि दी गई।

सुबह हुई, आज भुंडा का अंतिम और मुख्य दिन था। मुहूर्त के अनुसार निश्चित समय पर रस्से की विधिवत् पूजा की और बाबड़ी के पास ले जाकर उसे खूब भिगोया मुंडा आयोजन के मूल स्थान पर ढॉक के सिरे पर एक खंभा गाड़ा गया, जिस पर रस्से का एक सिरे मजबूती से बाँध दिया गया। दूसरे सिरे को पहाड़ के नीचे खंभा गाड़कर उस पर बाँधा गया। फिर सहजू को 'बेड़ा' के देवता की तरफ से विशेष स्नान करवाकर यज्ञोपवीत धारण करवा दिया। उसे पगड़ी और एक सफेद लंबा कुर्ता पहनाया गया और विशेष पूजा करके अत्यन्त आदर के साथ मदिर का एक सेवक अपनी पीठ पर लादकर मंदिर से बाहर ले आया। उधर सहजु को पत्नी का विधवा का वेश बना दिया। वह चुपचाप डरी – सहमी रस्से के अंतिम छोर के पास बैठी देवताओं से अपने पति की जिंदगी माँग रही थी। तभी एक पालको आई, जिसमें एक बुजुर्ग बैठा हुक्का पी रहा था। वह सहजू का पिता था। उस गाँव के लोग भी बड़ी शान से उत्सव में पधारे थे।

सहजू ने ईश्वर को प्रणाम किया अपने इष्ट देवता को याद किया तथा अपने पिता को नमन किया। उसने जीन काठी पकड़ी और अच्छी तरह से टिकाकर रस्सी पर बाँध दो। इसे सहजू ने स्वयं बनाया था। उसके दोनों ओर रेत की बोरियाँ टिका दी गई थीं, ताकि बराबर भार रहे। वह सचमुच की घोड़ी थी जिस पर सवार होकर उसे मौत का एक लंबा व खतरनाक सफर तय करना था। मध्य में पहुँचकर वह थोड़ा घबरा गया, परंतु उसने अपने आपको को संभाल लिया। वह जैसे ही दूसरे खंभे के नजदीक पहुँचा तो चलती हुई जीन काठी रोक दी और मजबूती से रस्से पर बैठ गया। वह बिल्कुल सुरक्षित था। शर्मा जी ने उससे नीचे उतरने के लिए कहाँ सहजू ने उन्हें भला – बुरा कहाँ शर्मा जी सकपका गए और उन्होंने सहज से कहा–ऐसा मत करो सहजू। भगवान के लिए ऐसा मत करो। बोलो तुम्हें क्या चाहिए ? आज तो वह समय है कि जिस चीज में भी तुम हाथ लगाओगे वह तम्हारी हो जाएगी।" मजबूरन शर्मा जी को 'हां कहनी पड़ी। सहजू जानता था कि इस अवसर पर दिया धन और जमीन कोई दूसरा नहीं ले सकता। उसने जीन काठो को हल्का – सा खींचा और सरकता हुआ नीचे उतर आया। लोगों ने उसकी जय – जयकार करनी आरंभ कर दो। सहजू को लोगों ने कंधे पर उठा लिया था। वह उसकी पत्नी तथा परिवार के अन्य सदस्य खुशी –खुशी वहाँ उपस्थित लोगों से इनाम के पैसे और आभूषण इकटठे करने में लगे हुए थे।

19.4 एस. आर. हरनोट की कहानियों की विशेषताएं

एस. आर. हरनोट एक बहु आयाभी व्यक्तित्व के धनी है। इन्होंने अपनी ठेठ पर्वतान्चलिकता तथा स्थानीय होते हुए भी सार्वभौमिक मानवीय तत्त्व से परिपूर्ण गल्प रचनाओं के कारण साहित्य में एक अलग जगह बनाई है। इन्होंने कई कहानी संग्रह लिखे हैं जैसे– 'पंजा' आकाश बैल', 'पीठ पर पहाड़', 'यात्रा', मिट्टी के लोग, '10 प्रतिनिधि कहानियाँ' 'कोले' 'दारोश तथा अन्य कहानियाँ' जीन काठी तथा अन्य कहानियाँ आदि।

पहाड़ी जीवन के चितेरे हरनोट ने अपनी कहानियों में पहाड़ी जीवन का अभाव और उसमें व्याप्त समस्याएं पाठक वर्ग के सामने बहुत ही बेबाकी से रखने का प्रयास किया है जो आज और अधिक चिंता का विषय बनी हुई है। संसाधनों का अभाव, विद्यालय, महाविद्यालय, अस्पताल आदि की कमी पर्वतीय अंचल के लोगों के लिए कई बार जानलेवा भी सिद्ध होता है। पहाड़ों का दुर्गम गाँव के निवासियों के लिए मौत का कारण भी बन जाता है। विशेष रूप से तब, जब किसी गर्भिवती महिला को शहर के किसी बड़े अस्पताल में ले जाना हो। इसका उदाहरण हम इनकी मार्मिक कहानी 'चीखे।' में देख सकते हैं। यह एक ऐसी कहानी है जिसमें ग्रामीण परिवेश से लेकर शहरी परिवेश का संवेदनहीन चरित्र पेश किया गया है। इसमें न केवल पहाड़ी जीवन की समस्याओं पर फोकस किया गया है, बल्कि पूरी कहानी स्त्री अस्मिता से जुड़ी हुई है। एक स्त्री जो अपनी प्रसव पीड़ा से कराह रही हो तो ऐसे में उसके ससुराल और पति को इस बात की फिक्र अधिक है कि यह बेटा जनेगी या फिर बेटी को ही जन्म देगी। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–"माधीराम बेटा होने के लिए भगवान् और देवताओं को की गई मन्नतों की याद दिला रहा था। रामो की चीखें जितनी तेज निकलतीं वह उतना ही देवताओं को याद दिलाता। इतना ही नहीं, इस कहानी में क्रूरता की हद अस्पताल के दृश्य में भी देख सकते हैं, जहाँ शहर की चकाचौंध में गुम हो जाने वाले लोग अपना कर्त्तव्य भूलकर अमानवीयता की पराकाष्ठा तक पहुँच जाते है। इन सबके बावजूद भी चीखें कहानी में रामो जिस प्रकार पितृसत्तात्मक समाज से होड लेती है, उनका प्रतिरोध करती है, वह आज के भुमण्डलीकरण के दौर में आधुनिक समय की जागरूक महिला सशक्तिकरण का उदाहरण है। यही कारण है कि कहानी के अंत में जब रामो को बेटी पैदा होती है तो वह फूली नहीं समाती है। आलोच्य कहानी से रचनाकार ने यह दिखाया है कि यदि घरेलू कामकाजी औरतें काम करना बंद कर दें तो भारत देश की अर्थव्यवस्था चौपट हो जाएगी। इसका एक उदाहरण हम इस कहानी में देख सकते हैं – 'उसने घरवाली रामो खूब सुरमी थी। वह घर का सारा काम संभालती। उसके पास एक बैल जोड़ी, तीन गायें और सात – आठ भेंड, बकरियाँ थी जिन्हें उसने छूण पाया था।'

एस. आर. की चर्चित कहानी 'फ्लाई किलर' अपने समय के क्रूर यथार्थ और निरंकुश व्यवस्था का बहुत संवेदनशील अंतर्पाठ प्रस्तुत करती है तथा हिंसक व अधिनायकवादी वृत्तियों का एक सशक्त प्रतिरोध रचती है। इनका कहानी–संग्रह 'कीले। इक्कीसवीं सदी के उजास तथा अंधेरों की कहानियों का अनूठा संग्रह है। इन कहानियों में पहाड केवल पहाड़ रूप में नहीं, अपितु अपने पूरे परिवेश के साथ उपस्थित है। ये कहानियाँ अपने समय का विशेष रेखांकन है जिन्हें सामाजिक – आर्थिक परिवर्तनों के संदर्भ में देखने पर नए अर्थ खलते हैं।

हरनोट की कहानियाँ सामाजिक सांस्कृतिक विमर्श का आईना हैं। इनकी कहानियों को पढ़कर हम यह बात स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि इनकी कहानियाँ गहरे स्तर तक मानवीय संवेदना से लिप्त हैं। गहरी जनधर्मी चेतना तथा सहजता भी। इनकी सभी कहानियाँ सबसे अलग महत्व रखती हैं। इनकी कहानियों के पात्र भले ही शांत हो और अधिक शोर – शराबा नहीं करते, परंतु पाठकों के मन को गहरे अर्थों में छू लेते हैं। इनकी कहानियाँ सामाजिक समस्याओं को पेश करती हैं तथा मानवीयता का संदेश देती हैं। 'दीवारे' कहानी में कहानीकार ने आधुनिकता, युवापीढी के संवेदन रिक्तता, जिम्मेदारियों की त्रुटि भौतिकता की जगमगाहट में व्यक्तिगत प्रयोजन की परितृप्ति तक केन्द्रित रहने की स्थितियों को चित्रित किया गया है। नगरीय निरंकुशता तथा पहनावे की पश्चिमी रंगत गाँव की पीढ़ी को अत्यधिक प्रभावित करती है, इस और भी यह कहानी संकेत करती है। हरनोट की कहानियों में हिमाचल की विविध संस्कृति, समाज के अनेक रूप, राजनीति के नकारात्मक व सकारात्मक पहलू दबे और शोषित वर्ग को पीड़ाएं, गाँव के लोगों विशेषकर माओं तथा दादी, चाचियों का जुझारू और अकेलापन बड़े ही सुंदर ढंग से उकरे गए हैं। इनकी कहानियों में पर्यावरण को लेकर भी गहरी चिताएँ देखी जा सकती हैं। ये मूलतः पहाड़ तथा गाँव के कथाकार हैं। इस प्रकार इनकी कहानियाँ समाज के लिए बड़ी चुनौती है जिनमें जाति और वर्ग के सामंजस्य की चिंताएँ हैं। समय के विकास के साथ–2 पहाड़ी जीवन में आए बदलावों

टूटते रिश्तों, सांस्कृतिक परिवर्तनों तथा स्त्री–पुरुष संबंधों के साथ रूढ़ियों की टूटती जंजीरें जिस झनझनाहट के साथ हरनोट की कहानियों सें आती है ने विस्मय उत्पन्न न करक सोचने को मजबूर करती हैं कि हरनोट अपने परिवेश के प्रति कितने सजग है। कहानी संकलन 'मिट्टी के लोग', 'दारोश तथा अन्य कहानियाँ' , 'जीन काठी तथा अन्य कहानियाँ 'लिटन ब्लॉक गिर रहा है' आदि के अंतर्गत कई कहानियां शामिल हैं। इन कहानियों में विषयों की विविधता है। इनमें एक ऐसे समुदाय या वर्ग का चित्रण है जिन्हे जिनकी जड़ों से दखल कर देने की साजिश निरंतर चली आ रही है। उनकी समस्याओं के प्रति कहानीकार का छटपटाहट विवशता एवम् चिंता को इन कहानियों में देख सकते हैं। एक उदाहरण देखिए– "गरीबी में आटा उस समय गीला हो गया जब उस सड़क के काम पर भी कई किस्म की मशीनें पहुँच गई। धीरे – धीरे मजदूरों के लिए मशीने चुनौती बनकर खड़ी हो गई। जो काम बीस – तीस मजूदर करते थे, उन्हें अब लंबी – लंबी गर्दनों वाली मशीनें करने लगी थीं।

'जीन काठी' कहानी में हरनोट ने दलितों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। इसमें लेखक ने बताया है कि "रस्से से गिरकर एक दलित की अकाल मृत्यु हो जाती है तो गाँव वाले इसे अनिष्ट मानते हैं और गाँव से दलित परिवारों को भगा दिया जाता है। कहानीकार सहज नाम के एक दलित व्यक्ति के मुख से समस्त गाँव वालों, मुख्यमंत्री प्रशासनिक अधिकारों और गाँव के सरपंच शर्मा जी के सामने ही यह सच्चाई उगलवा देते हैं–"कैसा देवता ? कौन सा देवता। मैं तो एक अछूत हूँ। कठपुतली मात्र हूँ। सारे पुण्य तो तुम सभी के लिए हैं। अपने स्वार्थ के लिए तुम ऊँचे लोगों में क्या – क्या परपंच रचते हैं? जानते हो शर्मा जी, मैं इस घड़ी तो सबसे बड़ा पंडित हूँ। देवता हूँ और सभी का ईश्वर। लेकिन नीचे उतरते ही मैं सहजू अछूत और तुम सभी उच्च कुल के पंडित और ठाकुर। तुम्हारे जो ये देवता आज मेरी विजय पर नाच रहे हैं। मुझे भगवान मान रहे हैं। कल इन्हें मेरी परछाई से भी दोष लगने लगेगा। अपवित्र हो जाएँगे ये।' एक स्थान पर ने स्वयं दलित वर्ग के विषय में लिखा है –हमें लोगों, विशेषकर दलितों के सामने आने वाली कठिनाइयों से बहुत प्रभावित हुआ। सामाजिक बुराइयों, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, मैंने उनके दर्द और पीड़ा कलमबद्ध किया। इस प्रकार इस कहानी से यह प्रकट होता है कि दलितों में अपने आपको उच्च समझने वाले व्यक्तियों के प्रति आक्रोश और विदोह की भावना है, उनमें जातिवाद की पीड़ा है, उनमें उत्पीड़न की कसक है और भाग्यवाद को अस्वीकार करने की पुरजोर आवाज है। इस कहानी में लेखक ने हमारे समाज की दकियानूसी सोच पर भी प्रहार किया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि एक सजग रचनाकार होने का परिचय से अपनी कहानियों हमें देते हुए दिखाई परते हैं।

स्वयं आकलन प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–2

1. 'जीनकाठी' कहानी में किसका वर्णन है?
2. 'बेड़ा' किस जाति से संबधित होता है?

19.6 सारांश

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एस०आर० हरनाट का जन्म तहसील सुन्नी में स्थित पिछड़ी पंचायत व गांव चनावग में 22 जनवरी, 1955 को हुआ। अपने जीवन मे अनेक समस्याओं एवं चनौतियों को झेलते हुए आगे बढ़ने का साहस बहुत ही कम लोग कर पाते है लेकिन हरनोट ने इन विपरीत परिस्थितियों में अपने को आगे बढ़ाया और मुकाम हासिल किया है।

19.7 कठिन शब्दावली

स्फुरण – अंकुरण, कपन

बानगी – नमूना

शोधन – परीक्षण

19.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

1. सुन्नी, शिमला
2. एस. आर. हरनोट

अभ्यास प्रश्न–2

1. भुण्डा महायज्ञ
2. दलित

19.8 संदर्भित पुस्तकें

1. एस० आर० हरनोट, लिटन ब्लॉक गिर रहा है, आधार प्रकाशन, प्रा. लि., पचकूला।
2. डॉ० नरेन्द्र मोहन, समकालीन कहानी की पहचान, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

19.9 सात्रिक प्रश्न

1. एस०आर० हरनोट जीवन एवं साहित्यिक परिचय दीजिए।
2. 'जीनकाठी' कहानी की तात्विक समीक्षा कीजिए।

*****

इकाई–20
व्याख्या भाग

संरचना

20.1 भूमिका

20.2 उद्देश्य

20.3 व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

20.4 सारांश

20.5 कठिन शब्दावली

20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

20.7 संदर्भित पुस्तकें

20.8 सात्रिक प्रश्न

20.1 भूमिका

इकाई उन्नीस में हमने एस०आर० हरनोट द्वारा रचित 'जीनकाठी' कहानी का अध्ययन किया। इकाई बीस में हम अकेली, वापसी, कोसी का घटवार, तथा एस०आर० हरनोट्र की 'जीनकाठी' कहानी का गहन अध्ययन करेंगे।

20.2 उद्देश्य

इकाई बीस का अध्ययन करने के पश्चात् हम यह जानने में सक्षम होंगे कि –

1. मन्नू भंडारी की 'अकेली' कहानी का सार क्या है?
2. उषा प्रियंवदा की कहानी वापसी' का उद्देश्य क्या है ?
3. शेखर जोशी के कोसी का घटवार का प्रतिपाद्य क्या है?
4. 'जीन काठी' कहानी का सार एवं उद्देश्य क्या है?

20.3 व्याख्या भाग

'एक टोकरी भर मिट्टी': पंडित माधव राव स्प्रे

किसी श्रीमान जमींदार के महल के पास एक गरीब अनाथ विधवा की झोंपडी थी। जमींदार साहब को अपने महल का हाता उस झोपड़ी तक बढ़ाने की इच्छा हई, विधवा से बहुतेरा कहा कि अपनी झोंपड़ी हटा ले, पर वह तो कई जमाने से वहीं बसी थी; उसका प्रिय पति और इकलौता पुत्र भी उसी झोपड़ी में मर गया था। पतोहू भी एक पाँच बरस की कन्या को छोड़कर चल बसी थी। अब यही उसकी पोती इस वृद्धाकाल में एकमात्र आधार थी। जब उसे अपनी पूर्वस्थिति की याद आ जाती तो मारे दुःख के फूट–फूट रोने लगती थी। और जबसे उसने अपने श्रीमान् पड़ोसी की इच्छा का हाल सुना, तब से वह मृतप्राय हो गई थी। उस झोंपड़ी में उसका मन लग गया था कि बिना मरे वहाँ से वह निकलना नहीं चाहती थी। श्रीमान् के सब प्रयत्न निष्फल हुए, तब वे अपनी जमींदारी चाल चलने लगे। बाल की खाल निकालने वाले वीकलों की थैली गरम कर उन्होंन अदालत से झोंपड़ी पर अपना कब्जा करा लिया और विधवा को वहाँ से निकाल दिया। बिचारी अनाथ तो थी ही, पास – पड़ोस में कहीं जाकर रहने लगी।

शब्दार्थ – अनाथ = जिसका कोई नाथ न हो। हाता = वह स्थान जिसके चारों ओर दीवार खिंची हो (अरबी भाषा का शब्द)। बहुतेरा = प्रचुर, अनेक प्रकार से, बहुत बार। पतोहू = पुत्रवधू, पुत्र की स्त्री। आधार = सहारा वृद्वाकाल = वृद्धावस्था। मृतप्राय मरे हुए के समान। निष्फल = व्यर्थ, बेकार। चाल चलना = असली रास्ता छोड़कर चलना, धूर्तता (धोखा) करना। थैली गरम करना = रिश्वत या घूस देना। कब्जा करना = अधिकार जमाना।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियाँ तेजस्वी और जुझारू पत्रकार, समालोचक, कहानीकार, सुप्रसिद्ध अनुवादक एवं निबंधकार 'पंडित माधवराव स्प्रे' द्वारा रचित कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' से उद्धृत हैं। यह कहानी उनकी "छत्तीसगढ़ मित्र'' मासिक पत्र में सन् 1901 में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी की चर्चा हिंदी में सन् 1968 में छपे 'सारिका' पत्रिका (फरवरी अंक, पृष्ठ – 191 से शुरू होती है। इसके बाद बहुत सारे आधुनिक सभीक्षक इस कहानी को प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं। इस कहानी के माध्यम से लेखक श्री स्प्रे जी प्रेम और मानवता का संदेश देते हैं । एक गरीब असहाय महिला द्वारा एक दम्भी जमींदार को मानवता का पाठ पढ़ाना यह प्रकट करता है कि परेशानी में विवेक से काम लेना चाहिए।

व्याख्या– लेखक बताते हैं कि किसी जमींदार के आलीशान महल के पास एक बहत गरीब और अनाथ विधवा की झोंपड़ी थी। उस जमींदार साहब को अपने महल की दीवार को उस झोंपड़ी तक बढाने की इच्छा पैदा हुई। उसने विधवा से अनेक बार झोंपड़ी हटा लेने के लिए कहा, परंतु वह तो बहत समय से वहाँ बसी हुई थी। उसका प्रिय पति और एकमात्र पुत्र भी उस झोंपड़ी में रहते हुए मर गए थे। उसकी पुत्रवधू भी पाँच वर्ष की एक लड़की को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हो चुकी थी। अब केवल उसकी पोती ही इस वृद्धावस्था में उसका एकमात्र सहारा थी। उसे अपनी झोंपड़ी से बहुत प्यार था। वह झोंपड़ी उसकी फुश्तैनी झोंपड़ी थी। जब कभी भी उसे अपनी पहले की स्थिति याद हो आती थी तो वह दुख के मारे जोर – जोर से रोने लग जाती थी। जब उसने अपने पड़ोसी जमींदार की बात सुनी तो वह मरे हुए के समान हो गई थी। उस झोंपड़ी में रहते हुए उसका मन लगा हुआ था। वह वहाँ से निकलकर किसी दूसरी जगह पर नहीं जाना चाहती थी। जमींदार ने उसे झोंपड़ी से निकालने के लिए बहुत प्रयास किए, परंतु वे सब विफल हो गए। तब जमींदार ने उससे धूर्तता और धोखा करने की सोची। उसने अदालत का सहारा लिया और वकीलों को रिश्वत देकर अपनी ओर कर लिया तथा बढ़िया को झोंपड़ी से निकलवा दिया। बेचारी अनाथ बुढ़िया बहुत दुखी हुई। झोंपड़ी छूटने के बाद वह अपनी पोती के साथ पड़ोस में जाकर रहने लगी।

विशेष–

1. यहाँ कहानीकार ने जमींदार के अहंकार एवं स्वार्थ का चित्रण किया है।
2. यह कहानी आज के यथार्थ से जुड़ी हुई है।
3. वर्ग भेद पर आधारित इस कहानी में गरीब के शोषण का चित्रण हुआ है।
4. सरल एवं छोटे–छोटे शब्दों में लिखी गई छोटी और आदर्शवाद को स्थापित करने वाली कहानी है।
5. यहाँ लेखक ने बढ़िया का अपनी मिट्टी से जुड़े प्रेम का वर्णन किया है।
6. भाषा सहज, सरल एवं भावानुकूल है।
7. 'चल बसना', 'फूट – फूटकर रोना', 'चाल चलना', 'बाल की खाल निकालना थैली गरम करना' आदि मुहावरों का प्रयोग किया है।
8. तद्भव शब्दों की प्रधानता है।
9. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

'प्रेमचंद दुनिया का अनमोल रत्न–

दिलफिगार, बेशक तूने दुनिया की एक बेशकीमत चीज़ दूंढ़ निकाली, तेरी हिम्मत और तेरी सूझबूझ की दाद देती हूँ। मगर यह दुनिया की सबसे बेशकीमत चीज नहीं, इसलिए तू यहाँ से जा और फिर कोशिश कर, शायद अब की तेरे हाथ वह मोती लगे और तेरी किस्मत में मेरी गुलामी लिखी हो। जैसा कि मैंने पहले ही बतला दिया था मैं तुझे फांसी पर चढ़वा सकती हूँ मगर मैं तेरी जाँबख्शी करती हूँ इसलिए कि तुझमें वह गुण मौजूद हैं, जो में अपने प्रेमी में देखना चाहती हूँ और मझे यकीन है कि तू जरूर कभी–न–कभी कामयाब होगा।

शब्दार्थ– बेशक = बिना शक के। बेशकीमत बहमल्य। सझ – बझ = अक्ल, समझदारी। दाद देना प्रशंसा करना, शाबासी देना। जाँबख्शी = क्षमादान, प्राणदान। यकीन = विश्वास। कामयाब सफल।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश हिन्दी कथा साहित्य के चक्रवर्ती सम्राट मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' से लिया गया है। यह कहानी प्रेमचंद की पहली कहानी है। यह कानपुर की एक उर्दू पत्रिका 'जमाना' में वर्ष 197 में प्रकाशित हुई। तत्पश्चात् यह कहानी 'सोजे वतन' कहानी संग्रह में संकलित की गई। यह कहानी मूलतः प्रेम पर आधारित है। कहानी प्रेमी – प्रेमिका के बीच से गुजरती हुई देश – प्रेम का रूप लेती चली जाती है। इसमें नायक दिलफिगार अपनी प्रेमिका दिलफरेब को पाने के लिए परीक्षा देता है। नायक दिलफिगा जो अपनी प्रेमिका दिलफरेब से बेपनाह, बेहिसाब मोहब्बत करता है, किंतु दिलफरेब उसके सामने ऐसी शर्त रखती है जो उसके लिए बहुत बड़ी चुनौती बन जाती है। इस गद्यांश में लेखक ने स्पष्ट किया है कि दिलफिगार अपने प्रेम को पाने के लिए भटकते – भटकते एक मैदान में जा पहुँचता है जहाँ वह एक बेरहम काले चोर की आँसू की बूंद प्राप्त करता है जिसे वह अपनी प्रेमिका दिल – फरेब के पास लेकर जाता है।

व्याख्या– दिलफिगार एक कैदी की आँसू की बंद पाकर अपनी प्रेमिका के शहर 'मीनोसवाद' खुशी – खुशी पहुँच जाता है उस समय उसकी आशा और भय मिश्रित मनःस्थिति है। वह उस अनमोल वस्तु को उसकी हथेली पर रखकर पूरी कहानी सुनाता है। फिर काफी सोच–समझ के बाद दिलफरेब दिलफिगार से कहती है कि हे दिलफिगार! इसमें कोई शक नहीं है कि तूने दुनिया की एक बहुमूल्य वस्तु खोज निकाली है। मैं तुम्हारी हिम्मत और समझदारी की प्रशंसा करती हूँ। परंतु यह दुनिया की अनमोल वस्तु नहीं है और फिर मेहनत कर शायद अब की बार वह अनमोल मोती तुम्हारे हाथ लगे और तेरे भाग्य में मेरी गुलामी लिखी हो। मैंने तम्हें पहली बार ही कहा था कि यदि तू दुनिया की अनमोल वस्तु खोजने में असफल रहा तो तुझे सूली पर चढ़वा दूँगी, लेकिन में तुम्हें प्राणदान देती हूँ। तुम्हारे अंदर वे गुण उपस्थित है जो में अपने प्रेमी से देखना चाहती हूँ। मुझे पूरा –पूरा विश्वास है कि तू अपने एक दिन अपने प्रयास में अवश्य ही सफल होगा। कहने का आशय हैं कि दिलफरेब कैदी के आँसू को अनमोल रतन नहीं मानती और उसे जीवनदान देकर दोबारा खोजने के लिए भेजती है।

विशेष–

1. यहाँ लेखक ने एक सच्चे प्रेमी दिलफिगर की मनःस्थिति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।
2. यहाँ प्रेम –परीक्षा का भी चित्रण हुआ है।
3. प्रेम को पाने के लिए संघर्ष का वर्णन किया गया है।
4. भाषा सहज, सरल एवं पात्रानुकूल भावानुकूल है।
5. अरबी, उर्दू, फारसी के शब्दों की बहुतायत है।
6. मुहावरों का सफल प्रयोग हुआ है।
7. प्रसाद गुण सर्वेत्र व्याप्त है।
8. मनोवैज्ञानिक शैली का प्रयोग है।
9. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।

'पत्नी' : जेनेन्द्र

वह भारतमाता की स्वतंत्रता को समझना चाहती है; पर उसको न भारतमाता समझ में आती है, न स्वतंत्रता समझ में आती है। उसे इन लोगों की इन जोरों की बातचीत का मतलब ही समझ में नहीं आता। फिर भी उत्साह की उसमें बड़ी भूख है। जीवन की हौस उसमें बुझती–सी जा रही है, पर वह जीना चाहती है। बहत चाहा के पति उससे भी कुछ देश की बात करें। उसमें बद्धि तो जरा कम हैं, फिर धीरे – धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी? सोचती है, कम पढी हूँ, तो इसमें मेरा क्या कसूर है। अब तो पढ़ने को मैं तैयार हूँ। लेकिन पत्नी के साथ पति का धीरज खो जाता है। खैर, उसने सोचा है, उसका काम तो सेवा है। बस, यह मानकर उसने जैसे कुछ समझने की चाह ही छोड़ दी है।

शब्दार्थ– स्वतंत्रता = आजादी। मतलब = अर्थ। उत्साह = साहस, जोश। होस = साहस, उत्साह। कसूर = दोष। धीरज = धैर्य, संयम। चाह = इच्छा।

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कहानीकार जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कहानी 'पत्नी' से अवतरित है। कमरे में कालिन्दीचरण और उसके मित्रों में भारतमाता की स्वतंत्रता के लिए बहस चल रही है। बाहर सुनन्दा उनकी बात सुन रही है। वह रोटी बना चुकी है, बस उनके खाने का इंतजार कर रही है। चौके के पास बैठी वह अपने विषय में सोच रही है। इसी संदर्भ में लेखक कहता है।

व्याख्या– सुनन्दा विचार कर रही है कि भारतमाता की स्वतंत्रता क्या है, परन्तु न उसकी समझ में भारतमाता आ रही थी, न स्वतंत्रता। कमरे से कालिन्दीचरण और उसके मित्रों की बहस उसके कानों में संमा रही है, परन्तु वह इस बहस को समझने में असमर्थ है। फिर भी उसमें कुछ सीखने–समझने का बड़ा उत्साह तथा जिज्ञासा है। जीवन जीने की ललक सदैव उसमें जाग्रत रहती है। वह यह चाहती है कि उसका पति (कालिन्दीचरण) भारतमाता और स्वतंत्रता के बारे में उससे कुछ बातें करे। वह यह भी समझती है, उसमें बुद्धि थोड़ी कम है परन्तु धीरे – धीरे यदि उसे समझाया जाए तो वह समझ सकती है। उसे लगता है कि अपनी कम समझ के लिए वह ही तो जिम्मेवार नहीं है। इसकी जिम्मेदारी उसकी पढ़ाई न हो पाना है। वह अब भी पढ़ने के लिए तैयार है, परन्तु उसका पति इसके लिए तैयार नहीं है क्योंकि वह इन सब बातों में उसे भागीदार नहीं बनाना चाहता। फिर सुनन्दा ने सोचा कि बस! मेरा काम तो अपने पति की सेवा करना ही है। यही सोचकर उसने कुछ सीखने की इच्छा मन ही मन खत्म कर दी।

विशेष–

1. लेखक ने सुनन्दा की मनःस्थिति का वर्णन मनोवैज्ञानिक अधार पर किया है।
2. भाषा सरल, सहज व भावानुकूल खड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य –विन्यास सरल, सहज तथा रोचक है।
6. मनोविश्लेषणवादी शैली का प्रयोग हुआ है।

लंदन की एक रात': निर्मल वर्मा

किन्तु नार्थ एक्टन से जरा आगे चलकर मेरे पांव खुद –ब–खुद ठिठक गए। सोचा था, आज मैं जल्दी आ गया हूं और गेट पर मेरे अलावा कोई दूसरा नहीं होगा। किंतु मेरा अनुमान सही न था। वहां पहले से ही बीस – पच्चीस बरोजगार युवकों की भीड़ जमा थी। अंग्रेज लड़के, कुछ छात्र, जो देखने में बर्मी जान पड़ते थे, दक्षिणी अफ्रीका और वेस्ट इंडीज के नीग्रो सब अलग–अलग गुच्छों में खड़े थे। सबकी आखें गेट पर टिकी थी। कुछ के चेहरे जाने– पहचाने लगते थे। उन्हें शायद कल रात देखा था। उन सबकी आखें मुझ पर उठ आई, खामोश

और तनी हुई। मुझे लगा, जैसे उस खामोशी में एक अजीब–सा भय उभर आया है, मेरे प्रति उतना ही जितना उस अज्ञात नियति के प्रति, जिसका निर्णय अगले चंद लमहों में होने वाला था।

शब्दार्थ– खुद –ब –खुद = स्वयं। ठिठकना = संकोच वश सहमकर आगे बढ़ने से रुकना। अनुमान = अंदाजा। बर्मी = बर्मा देश के रहने वाले। निग्रो = हब्शी (काला)। गुच्छों = टोलियों में । खामोश = चुप। अज्ञात = अनजान। नियति = भाग्य। चंद लमहों = कुछ पलों।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां आधुनिकता के दौर के रचनाकार "निर्मल वर्मा'' द्वारा रचित कहानी 'लंदन की एक रात' से ली गई हैं। यह कहानी "जलती झाड़ी'' कहानी संग्रह की बहुत ही महत्वपूर्ण कहानी है जिसमें कथानायक के अतिरिक्त विली तथा जार्ज जैसे युवक हैं जो तीन–तीन दिनों तक काम न मिलने पर लंदन में एक पब में आकर बैठे गए हैं, पब का मालिक इटेलियन है। तीनों बेरोजगार हैं। लेकिन उन्हें वहां कोई भी रोजगार नहीं प्राप्त होता प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने बेरोजगारी तथा उससे मनःस्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों को संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

व्याख्या– जब लेखक को पहली रात लंदन के होटल में काम नहीं मिला तो वह दूसरी रात फिर वहां गया। जो सड़कें पहली रात उसके लिए अजनबी थी वे आज जानी – पहचानी लग रही थीं। चारों ओर चांदनी फैली हुई थी। जब वह नार्थ एक्टन से थोड़ा आगे बढ़ा तो उसके पांव संकोच वंश या सहमकर अगे बढ़ने से रुक गए। वह उस समय सोच रहा था कि आज वह जल्दी आ गया है और द्वार पर उसके अतिरिक्त और कोई दूसरा बेरोजगार व्यक्ति नहीं होगा क्योंकि वह समय से पहले आ गया था। परन्तु उसका अंदाजा सही नहीं निकला। वहां उसके पहुंचने से पहले ही बीस – पच्चीस बेरोजगार युवक आ चुके थे। उनमें से कुछ अंग्रेज लड़के के, कुछ वर्मा देश के छात्र और दक्षिण अफ्रीका तथा वेस्ट इंडीज के हब्शी पहुचे हुए थे। सब अलग–अलग टोलियों में खड़े होकर रोजगार प्राप्त करने की तलाश में थे। सभी की नज़रें द्वार पर लगी हई थीं। उनमें से कुछ से चेहरे जाने–पहचाने से लग रहे थे। शायद उन्हें पहले रात वहां देखा था। जब उन्होंने लेखक को देखा तो सब खामोश हो गए। उन्हें लगा कि जैसे उस चुष्पी में एक विचित्र – सा डर उभर आया है। यह डर लेखक के प्रति न होकर उस अनजान व्यक्ति के प्रति था जिसका फैसला अभी कुछ समय बाद होने वाला था अर्थात् सभी यह सोचकर डर रहे थे कि उन्हें नौकरी मिलेगी या नहीं। वे अपने – अपने भाग्य को अजमा रहे थे।

विशेष–

1. यहां बेरोजगारों की मनःस्थिति का चित्रण किया गया है।
2. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
3. भाषा सहज, सरल व भावानुकूल खड़ी बोली है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास सरल, सहज तथा रोचक है।
6. मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. 'ठिठक जाना' मुहावरा प्रयुक्त हुआ है।
8. चंद लमहों आदि उर्दू के शब्द हैं।

'अकेली' : मन्नू भंडारी

इस स्थित में बुआ को अपनी जिंदगी पास – पड़ोस वालों के भरोसे ही काटनी पड़ती थी। किसी के घर मुंडन हो, छठी हो, जनेऊ हो, शादी हो या गमी, बुआ पहुँच जाती और फिर छाती फाडकर करती; मानो वे दूसरे के घर में नहीं अपने ही घर में काम कर रही हों।

शब्दार्थ– मंडन = बच्चे के पहली बार मुंडे जाने का संस्कार। छठी = बालक के जन्म से छठे दिन होने वाला उत्सव। जनेऊ = हिन्दुओं में किया जाने वाला बालकों का यज्ञोपवीत संस्कार। गमी = मृत्यु के बाद उसका होने वाला दुख।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हिन्दी की सुप्रसिद्ध कहानीकार 'मन्नू भंडारी' द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कहानी 'अकेली' से अवतरित है। 'अकेली' कहानी एक बहुचर्चित एवं मनोवैज्ञानिक है। इस कहानी की नायिका सोमा बुआ परित्यक्ता, अकेली एवं बढ़ी है। बीस साल पहले उसके एकमात्र जवान बेटा की मृत्यु हो चुकी है तथा पुत्र वियोग से बेचैन हो उसका पति घर छोड़कर साल में ग्यारह महीने हरिद्वार रहता है और एक बार केवल एक महीने के लिए ही घर आता है। बुआ जीवन के अकेलेपन और एकरसता से निजात पाने के लिए निःस्वार्थ भाव से आस – पड़ोस को अपनापन देने और लेने लगती है। कोई आमंत्रित करे या न करे, सोमा बुआ अपने व्यवहार और कार्यकुशलता से आयोजनों का भट्टी भण्डारघर संभाल प्रशंसा, आभार तथा आत्मसंतुष्टि पा लिया करती है। इस अवतरण में सोमा बुआ की उस स्थिति का चित्रण किया गया है जब वह बेटे की मृत्यु तथा पति के सन्यासी हो जाने के बाद एकदम अकेली हो जाती है।

व्याख्या – हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी सोमा बुआ का सन्यासी बना हुआ पति एक महीने के लिए अपने घर आया हुआ है। अकेली होकर उतनी अकेली नहीं होती, जितनी पति के आने पर अकेली हो जाती है। वह सोमा बुआ पर अपना अधिकार जमाने लगता है तथा उसके आने–जाने व किसी से भी मिलने–जूलने पर पाबंदी लगा देता है। वह बात – बात पर उससे झगड़ने भी लगता है। पति का स्नेह हीन व्यवहार, रोक – टोक एवं अंकुश बुआ के जीवन की अबाध बहती धारा को कुंठित कर देता है। ऐसे में बुआ का जीवन पति की उपस्थिति में तनाव के बीच ही व्यतीत होता है। पति का हकुम है कि बिना। बुलावे के बुआ किसी के बच्चे के मुंडन, बालक के जन्म से छठे दिन होने वाले उत्सव, किसी की शादी या किसी के यहाँ मृत्यु के बाद होने वाले दुख के कार्यक्रम में नहीं जाएगी। पुत्र के खो दिए जाने के बाद और अन्य कोई रिश्तेदार न होने के कारण बुआ आस –पड़ोस के लोगों द्वारा ही अपने एकाकीपन को दूर करने का प्रयास किया करती थी। उसने 'आस – पड़ोस और समाज को अपना लिया था। वह उनके प्रत्येक गमी–खुशी में अनेक यहाँ जाती और अपने घर की तरह पूरी मेहनत व मन से सारे काम निपटाती थी, परंतु बड़े खेद की बात है कि ग्यारह महीने के बाद एक महीने के लिए आने वाला उसका पति उसे समाज से भी काटने के प्रयासों में लगा रहता है। इस प्रकार नीरसता के साथ उसके आज बीस वर्ष बीत चुके हैं।

विशेष–

1. प्रस्तुत गद्यांश में लेखिका ने बताया है कि जब बुआ नितांत अकेली होती है तो व आस – पड़ोस और दूर – दराज के नाते – रिश्ते में अपनापन बाँट – बाँटकर वह अकेलेपन से कोसों दूर रहती है, लेकिन जब संन्यासी जी (पति महोदय) उसके पास एक महीने के लिए आते हैं तो उसकी हर समय की दण्लंदाजी उसका (बुआ का) का जीना दूभर कर देती है।
2. यहाँ स्त्री–मन से जुड़ी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।
3. भाषा सहज, सरल एवं भावानुकूल।
4. भाषा में लोक प्रचलित हिन्दी, उर्दू तथा देशज शब्दों का अत्यधिक प्रयोग है।
5. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
6. वाक्य – विन्यास, सरल, सहज और रोचक है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

'कोसी का घटवार': शेखर जोशी

चक्की की बदलती आवाज को पहचानकर गुसाई घट के अंदर चला गया। खप्पर का अनाज समाप्त हो गया था। खप्पर में एक कम अन्न वाले थैले को उलटकर उसने अन्न का निकास रोकने के लिए काठ की चिड़ियों को उलटा कर दिया। किट किट का स्वर बंद हो गया। वह जल्दी– जल्दी आटे को थैले में भरने लगा। घट के अंदर मथानी की छिच्छट –छिच्छट की आवाज भी अपेक्षाकृत कम सुनाई वे रही थी। केवल चक्की ऊपर वाले पाट की घिसटती हुई घरघराहट का हल्का – पीमा संगीत चल रहा था। तभी गसाई ने सुना अपनी पीठ के पीछे, घट के द्वार पर, इस संगीत से भी मधुर एक नाटी का कंठस्थर, कब बारी आएगी जी? रात की रोटी के लिए भी आटा नहीं है।

शब्दार्थ – घट = पनचक्की। अन्न = अनाज। निकास = निकलना।

प्रसंग– प्रस्तृत पंक्तियाँ शेखर जोशी द्वारा रचित कहानी 'कोसी का घटवार' से अवतरित है। यह कहानी सन् 1958 में प्रकाशित उनके कहानी–संग्रह 'कोसी का घटवार' से ली गई है। इस कहानी संग्रह में कल 11 कहानियाँ हैं । उसी में एक कहानी 'कोसी का घटवार' भी है यह पहाड़ी परिवेश की कहानी है और इसमें पहाड़ी जीवन को झलक दिखाई देती है। यह एक "फ्लैशबैक' शैली पर आधारित आंचलिक कहानी है। गुसाई को अपने पुराने दिनों की बातें याद हो आती हैं। वह अपनी प्रेमिका लछमा के विषय में सोचता है फिर फ्लैश बैक यहीं तक समाप्त हो जाता है और कहानी अब वर्तमान में आगे की ओर बढ़ती है। गुसाई देखता है कि सामने पहाड़ी के बीच की पगडंडी से सिर पर बोझ लिए कोई नारी आकृति ओर चली आ रही है। वह सोचता है कि वह उसे भी मना कर दे, लेकिन अभी वह सोच ही रहा है तभी वह आकृति अब तक पगडंडी छोड़कर नदी के मार्ग में आ पहुँचती है।

व्याख्या– गुसाई अपनी चक्की की बदलती हुई आवाज को सुनकर वह घट के अंदर चला गया। और पात्र में एक कम अनाज वाले थैले को उलटकर उसने अनाज की निकासी को रोकने के लिए काठ की चिड़ियों को उलटा कर दिया अर्थात् उसने अनाज को निकलने से रोक दिया। 'किट –किट' की ध्वनि बंद हो गई। फिर वह शीघ्रता से आटे को थैले में भरने लगा। घट के अंदर चक्को की चलने की आवाज कम ही सुनाई दे रही थी। अर्थात् चक्की बहुत धीरे – धीरे चल रही थी। केवल चक्की के ऊपर वाले पाट की घिसटती हुई। घरघराहट की मंद – मंद आवाज आ रही थी। वह आवाज एक मधुर संगीत के समान लग रही थी। तभी उसे अपनी पीठ के पीछे से घट के दरवाजे पर इस संगीत से भी मधुर आवाज सुनाई दी। यह मधुर आवाज एक नारी की थी। वह नारी कह रही थी कि मेरी बारी कब आएगी अर्थात् मेरे गेहूँ की पिसाई करने में कितना समय लगेगा। मेरे पास रात के समय रोटियाँ बनाने के लिए भी आटा नहीं है।

विशेष–

1. लेखक ने यहाँ 15 – 16 साल बाद लछमा और गुसाईं के मिलन का वर्णन किया है।
2. चक्की के पाट का खिस्सर खिस्सर, मथानी की खिस्सर – खिस्सर की आवाज गुसाई के हृदय को निरर्थक धड़कन नादमय बिम्ब है।
3. भाषा सहज, सरल व भावानुकूल खड़ी बोली है।
4. भाषा में चित्रात्मकता का गुण विद्यमान है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज एवं रोचक है।
6. स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया गया है।
7. कहानी की शैली रोचक तथा वर्णन प्रधान है।

'वापसी' : ऊषा प्रियंवदा

"यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था? उनहें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचित है। गाढी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी –सा शरीर बहुत बडौल और कुरूप लग रहा था, चेहरा श्रीहीन और रूखा था।

शब्दार्थ –लावण्यमयी = सुन्दर रूप व भावों से युक्त। नितान्त = बिल्कुल। श्रीहीन कांतिहीन।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियाँ उषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'वापसी' नामक कहानी से अवतरित है। गजाधर बाबू पैतीस वर्ष नौकरी करने के पश्चात् यह सोचकर प्रसन्नचित घर अते हैं कि अब उनका शेष जीवन अपनी पत्नी व बच्चों के साथ सुखमय बीतेगा। परन्तु घर पहुँचने पर उन्हें लगता है कि उसके दोनो बेटे, पुत्रवधू व बेटी उनसे दूर रहने का प्रयास करते हैं। पत्नी भी घर के काम – काज में व्यस्त रहती है। एक दिन गजाधर बाबू पत्नी से कहते हैं कि अब उतना पैसा नहीं मिला करेगा। इसलिए घर के खर्च में कमी होनी चाहिए। उनकी पत्नी उन्हें सपाट स्वर में कह देती है वह किसी का पेट तो नहीं काट सकती। पैसे जोड़ते जोड़ते वह बूढ़ी हो गई है, परन्तु आज तक उसने न तो मन का पहना न ओढ़ा। अन्ततः वह यह कह कर कि उसे बहू से भी कुछ सुख नहीं मिला, सोने का प्रयास करती है। अवतरित पंक्तियों में पत्नी के इस रूखे व्यवहार से गजाधर बाबू पर जो प्रभाव पड़ा उसका चित्रण किया गया है।

व्याख्या – पत्नी के इस रूखे व उपेक्षित व्यवहार से आहत होकर गजाधर बाबू सोचने लगे कि क्या यही उनकी पत्नी है, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श और मधुर मुस्कान का स्मरण कर – करके उन्होंने पैंतीस वर्ष गुजार दिए थे अर्थात् गजाधर बाबू के मन – मस्तिष्क पर अपनी पत्नी के स्नेहिल व्यवहार की छवि अंकित थी और उन्होंने उसी छवि के आधार पर परिवार से दूर रहकर पैंतीस वर्ष गुजार दिए थे। उन्हें पत्नी की शुष्क बातों से ऐसा लगा कि जिस सुन्दर रूप व भावों से युक्त युवा पत्नी की छवि उनके हृदय पटल पर अंकित थी, वह युवती अब कहीं खो चुकी है और आज उस युवा पत्नी के रूप के बदले पत्नी जिस रूप में खड़ी है, उस रूप को उनका मन और उनकी आत्मा नहीं पहचानते। कहने का अभिप्राय यह है कि युवावस्था में जब गजाधर बाब परिवार से दूर हुए थे तब उनकी पत्नी के सुन्दर रूप व सुन्दर भावों की छवि उनके हृदय पर अंकित थी और उसी मनोरम छवि के सहारे उन्होंने पैंतीस वर्ष गुजार दिए थे। परन्तु आज पत्नी का जो रूप उन्होंने देखा था, उस रूप से वे सर्वथा अपरिचित थे। गहरी नींद में सोई हुई अपनी पत्नी को देखकर गजाधर बाबू को लगा कि उनकी पत्नी का भारी–भरकम शरीर बेडौल तथा भद्दा हो गया है तथा उसका मुख कातिहीन तथा रूखा हो गया।

विशेष–

1. लेखक ने दर्शाया है कि मनुष्य के गुण– अवगुण उसके बाह्य व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं, क्योंकि गजाधर बाबू को अपने स्नेहिल स्वभाव के कारण कभी लावण्यमयी दिखाई देने वाली पत्नी अब अपने रूखे व्यवहार के कारण कुरूप व भद्दी दिखाई दे रही थी।
2. भाषा सरल, सहज व भावानुकूल खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज व रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैलों का प्रयोग हुआ है।

'जीनकाठी': एस.आर हरनोट

शर्मा जी ने यह बात एक दिन देवता कमेटी के सदस्यों से की। सभी को उनकी बात खूब जँची थी। देवता के गुर का विचार था कि उनके गाँव पर अभी तक उस अनिष्ट का साया बरकरार है। वह तभी मिट सकता है जब गांव में का आयोजन किया जाए। इससे गाँव पहले जैसा सम्पन्न और खुशहाल भी हो जाएगा। लेकिन बात लाखें रुपए के व्यय की थी। आज की महँगाई में इतना बड़ा आयोजन करना नामुमकिन था। इसका समाधान भी शर्मा जी ने ही निकाल दिया था। उन्होंने तत्काल एक लाख रुपए देवता कमेटी को दान देने का वादा कर दिया। इससे सभी सदस्यों का मनोबल बढ़ गया। दूसरा विकल्प यह निकाला गया कि देवता के पास जो बरसों का सोना – चांदी पडा है उसे अच्छी कीमत पर बेच दिया जाए। देवता का धन यदि देवता के ही काम आए तो इसमें बुरा भी क्या? इस बात पर सभी को सहमति बन गई थी।

शब्दार्थ – गूर = प्रवक्ता, चेला अनिष्ट अमंगल बरकरार = कायम । नामुमकिन = असंभव। साया भूत–प्रेम का प्रभाव। समाधान = उपाय। सहमति = एक ही राय।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश हिमाचल प्रदेश के स्परिचित कहानीकार एवं उपन्यासकार एस. आर. हरनोट की महत्वपूर्ण कहानी 'जीनकाठी' से लिया गया है। यह कहानी इनके कहानी संग्रह 'जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ से उड्धत है जो 2008 में आधार प्रकाशन पंचकुला द्वारा प्रकाशित किया गया था। इस कहानी में कहानीकार में वर्ण व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन की मुख्य धारा में हाशिए की जिंदगी व्यतीत कर रह दलितों की वास्तविक पीडा, जातीय संस्कृति, संघर्ष तथा सामाजिक महत्त्व के कार्यों में अछूत होने के कारण वचित किए जाने को स्थिति का मार्मिक चित्रण उपस्थित करते हुए सदियों से हो रहे एवं दमन के खिलाफ प्रतिरोध व्यक्त किया है। इन पक्तियों में गाँव में बंद हुए "भुंडा'' महोत्सव को पुनः आरंभ कराने में शर्मा जी के योगदान का वर्णन किया गया है।

व्याख्या – लेखक कहते हैं कि एक दिन शर्मा जी ने देवता कमेटी के सामने रस्से पर बकरे के स्थान पर 'बेड़ा' जाति के ही किसी व्यक्ति को उतारे जाने का प्रस्ताव रख। उपस्थित सभी जनों को उनकी यह बात अच्छी लगी। देवता के गुर का कहना था कि जब से 'भुंडा' उत्सव में कोई बुर्जुग बेड़ा मरा है तब से आज तक पूरे गाँव में उस अनिष्ट (अमंगल अशुभ) का साया (भूत– प्रेत का प्रभाव) कायम है। यह अमंगल का प्रभाव तभी समाप्त हो सकता है जब गाँव में 'भुंडा' उत्सव का आयोजन फिर से चालू किया जाए। ऐसा करने से गाँव धन संपन्न और सुखी हो जाएगा। इस महोत्सव में बहत अधिक खर्चे की बात आ रही थी। लोगों के समक्ष यह समस्या आ गई कि इसके लिए रुपए कहाँ से लाए जाएँ क्योंकि इसमें लाखों रुपए खर्च होने की बात थी। इस महंगाई के जमाने में इतना बड़ा आयोजन करना कोई आसान काम नहीं था। उस समय शर्मा जी ने अपनी और से देवता कमेटी को एक लाख देने का वादा कर दिया। उनके ऐसा करते ही लोगों का मानसिक बल और आत्मविश्वास बढ़ गया। रुपए इकट्ठा करने का दसरा उपाय यह निकाला गया कि देवता के मंदिर में जो सोना चाँदी जमा है उसे अच्छे दामों में बेच दिया जाए। इस बात पर सभी की राय बन गई।

विशेष–

1. कहानीकार ने शर्मा जी के मुख से "भुंडा' उत्सव पुनः आरंभ करवाने की बात कहलवाई है।
2. भाषा सहज, सरल व भावानुकूल खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज और रोचक है।
6. "बरकरार'', "नामुमकिन', 'साया' आदि शब्द विदेशी भाषा के हैं।

लोग देवता के तमाम वाद्यों के साथ एक पहाड़ी पर सहजू को लेकर मूंज का घास काटने चले गए थे। पहले सहज ने ही दराती से घास काटने की परपरा का निर्वाह किया था। इसके बाद सभी गाँव वालों ने घास काटना शरू कर दिया। जब पर्याप्त मात्रा में घास काट लिया गया तो सभी ने घास की गड्डियों को मंदिर के प्रांगण में लाकर रख दिया। इसी घास से सहजू को मुंडा के लिए रस्सा बनाना था। उत्सव स्थल का मुआयना किया गया तो कुल लंबाई 500 मीटर की निकली। इतना ही लंबा रस्सा बनना था। मजबूती के लिए उसकी मोटाई लगभग 25 – 30 सेंटीमीटर रखनी जरूरी थी।

शब्दार्थ – तमाम = समस्त। वाद्यों = बाजों। निर्वाह करना = निभाना जारी रखना। प्रांगण = आँगन, बरामदा। मुआयना = जाँच–पड़ताल।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश हिमाचल प्रदेश के सुपरिचित कहानीकार एवं उपन्यासकार एस. आर. हरनोट की महत्वपूर्ण 'कहानी 'जीनकाठी' से लिया गया है। यह कहानी इनके कहानी संग्रह 'जीनकाठी तथा अन्य कहानियों' से उद्धत है जो 2008 में आधार प्रकाशन, पंचकुला द्वारा प्रकाशित किया गया था। इस कहानी में कहानीकार ने वर्ण – व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन की मुख्य धारा में हाशिए की जिंदगी व्यतीत कर रहे दलितों की वास्तविक पीड़ा, जातीय संस्कृति, संघर्ष तथा सामाजिक महत्व के कार्यों में अछूत होने के कारण वंचित किए जाने की स्थिति का मार्मिक चित्रण उपस्थित करते हुए सदियों से हो रहे शोषण एवं दमन के खिलाफ प्रतिरोध व्यक्त किया है। इन पंक्तियों में 'धुंडा' उत्सव की तैयारियों का वर्णन किया है।

व्याख्या– लेखक कहते हैं कि गाँव के सभी लोग ढोल – नगाड़े आदि मंत्रों को बजाते हुए एक पहाड़ी पर बेड़ा जाति के, सहज राम उफ सहजू को साथ लेकर रस्सा बनाने के लिए मूँज की घास काटने चल दिए। सबसे पहले सहजू ने दरांती से घास काटने की परंपरा को निभाया। फिर गाँव के सभी लोगों ने घास काटी सभी ने मिलकर काफी मात्रा में घास काट ली तथा बहुत –सी गड्डियाँ बना लीं। लोगों ने उन गड़िडयों को लेकर मंदिर के प्रांगण में रख दिया। अब इस घास से सहजू को एक लबा रस्सा बनाना था। उत्सव स्थल को जब मापा गया तो कुल लंबाई 500 मीटर की पाई गई। इस लंबाई के अनुसार ही रस्सा बनना था। रस्से को मजबूती प्रदान करने के लिए उसकी मोटाई लगभग 25 – 30 सेटीमीटर जरूरी थी क्योंकि लंबाई के मुताबिक ही चौड़ाई होनी चाहिए ताकि रस्सी न टूटे।

विशेष–

1. कहानीकार ने गाँव की प्राचीन परंपरा का चित्रण किया है।
2. भाषा सहज, सरल व भावानुकूल खड़ी बोली है।
3. तत्सम एव तद्भव शब्दों का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास सरल, सहज और रोचक है।

पहला काम शर्मा जी ने देवता कमेटी में घसने का किया था। कई दिनों तक देवता के कार्यक्रमों में आते – जाते रहे। लेकिन जब कमेटी में सरपंच के चुनाव हुए तो लोगों के पास उनसे बढ़िया विकल्प कोई नहीं था। सर्वसम्मति से सरपंच चुन लिए गए। यह उनके धार्मिक जीवन की शुरुआत थी। यहीं से ही ग्राम पंचायत की प्रधानी तक जाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अभी से जुगाड़ भिडाने शरू कर दिए थे। शर्मा जी अब कुछ ऐसा करना चाहते थे जिससे गाँव – परगने में ही नहीं बल्कि दर–दराज के इलाकों में भी उनकी साख का डका बजना शुरू हो जाए। उनकी खूब वाह – वाह भी हो जाए और विधायक तथा मुख्यमंत्री तक भी खूब पहुँच बन सके।

शब्दार्थ— विकल्प = उपाय। सर्वसम्मति = सबकी एक राय परगना = जिले का एक भाग। साख = इज्जत। डंका बजना = प्रसिद्ध करना, घोषित करना।

प्रसंग — प्रस्तुत गद्यांश हिमाचल प्रदेश के सुपरिचित कहानीकार एवं उपन्यासकार एस. आर. हरनोट की महत्वपूर्ण कहानी "जीनकाठी'' से लिया गया है। यह कहानी इनके कहानी संग्रह 'जीनकाठी' तथा अन्य कहानियाँ से उद्धृत है जो 2008 में आधार प्रकाशन, पंचकुला द्वारा प्रकाशित किया गया था। इस कहानी में कहानीकार ने वर्ण—व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन की मुख्य धारा में हाशिए की जिंदगी व्यतीत कर रहे दलितों की वास्तविक पीड़ा, जातीय संस्कृति, संघर्ष तथा सामाजिक महत्व के कार्यों में अछूत होने के कारण वंचित किए जाने की स्थिति का मार्मिक चित्रण उपस्थित करते हुए सदियों से हो रहे शोषण एवं दमन के खिलाफ प्रतिरोध व्यक्त किया है। इन पक्तियों में तहसीलदार के पद से सेवा निवृत्त हुए भगवान दत्त शर्मा की कुर्सी की चाहत का वर्णन किया है।

व्याख्या— लेखक कहते हैं कि रिटायर होने के पश्चात् शर्मा गांव में कुछ करना चाहते थे कि लोग उन्हें आवभगत दें और उनका नाम दूर — दूर तक फैले। इसलिए उन्होंने सबसे पहले गाँव की देवता कमेटी में प्रवेश करने का काम किया। वे कई दिनों तक देवेता के विभिन्न कार्यक्रमों में आते — जाते। वे एक अनुभवी व्यक्ति थे और एक उच्च पद से रिटायर हुए थे। जब कमेटी में सरपंच के चुनाव हुए तो लोगों ने उन्हें सर्वसम्मति से चुन लिया। यहीं से उनके जीवन की धार्मिक शुरूआत हुई थी। अब उनकी इच्छा ग्राम पंचायत की प्रधानी को प्राप्त करने की थी। यहां तक पहुंचने के लिए उन्होंने प्रयास करने आरंभ कर दिए। वे गांव और तहसील में ही नहीं, दूर — दराज के इलाकों में भी अच्छे कामों के लिए मशहूर होना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि चारों ओर उनकी खूब इज्जत हो तथा विधायक व मुख्यमंत्री तक उनकी पहुंच बने।

विशेष—

1. कहानीकार ने शर्मा जी के महात्त्वाकांक्षी व्यक्तित्व का चित्रण किया है।
2. भाषा सहज, सरल व भावानुकृल खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य — विन्यास सरल, सहज और रोचक है।
6. मुहावरों का प्रयोग किया गया है।

शर्मा जी ने यह बात एक दिन देवता कमेटी के सदस्यों से की। सभी को उनकी बात खूब जंची थी। देवता के गूर का विचार था कि उनके गाँव पर अभी तक उस अनिष्ट का साया बरकरार है। वह तभी मिट सकता है जब गाँव में भुड़ा का आयोजन किया जाए। इससे गाँव पहले जैसा सम्पन्न और खुशहाल भी हो जाएगा। लेकिन बात लाखों रुपए के व्यय की थी। आज की महँगाई में इतना बडा आयोजन करना नामुमकिन था। इसका समाधान भी शर्मा जी ने ही निकाल दिया था। उन्होंने तत्काल एक लाख रुपए देवता कमेटी को दान देने का वादा कर दिया। इससे सभी सदस्यों का मनोबल बढ़ गया। दूसरा विकल्प यह निकाला गया कि देवता के पास जो बरसों का सोना चाँदी पड़ा है उसे अच्छी कीमत पर बेच दिया जाए। देवता का धन यदि देवता के ही काम आए तो इसमें बुरा भी क्या? इस बात पर सभी की सहमति बन गई थी।

शब्दार्थ — गुर = प्रवक्ता, चेला। अनिष्ट = अशुभ अमंगल। बरकरार = कायम। नामुमकिन = असंभव। साया = भूत— प्रेम का प्रभाव। समाधान = उपाय। सहमति = एक ही राय।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश हिमाचल प्रदेश के सुपरिचित कहानीकार एवं उपन्यासकार एस. आर. हरनोट की महत्वपूर्ण कहानी 'जीनकाठी' से लिया गया है। यह कहानी इनके कहानी संग्रह 'जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ से उद्धृत है जो 2008 में आधार प्रकाशन, पंचकुला द्वारा प्रकाशित किया गया था। इस कहानी में कहानीकार ने वर्ण व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन को मुख्य धारा में हाशिए की जिंदगी व्यतीत कर रहे दलितों की वास्तविक पीड़ा जातीय संस्कृति, संघर्ष तथा सामाजिक महत्व के कार्यों में अछूत होने के कारण वचत किए जाने की स्थिति का मार्मिक चित्रण उपस्थित करते हुए सदियों से हो रहे शोषण एवं दमन के खिलाफ प्रतिरोध व्यक्त किया है। इन पक्तियों में गाँव में बंद हुए "भुंडा' महोत्सव को पुनः आरंभ कराने में शर्मा जी के योगदान का वर्णन किया गया है।

व्याख्या— लेखक कहते हैं कि एक दिन शर्मा जी ने देवता कमेटी के सामने रस्से पर बकरे के स्थान पर 'बेड़ा' जाति के ही किसी व्यक्ति को उतारे जाने का प्रस्ताव रखा। उपस्थित सभी जनों को उनकी यह बात अच्छी लगी। देवता के गूर का कहना था कि जब से "भुंडा उत्सव'' में कोई बेड़ा मरा है तब से आज तक पूरे गाँव में उस अनिष्ट (अमंगल अशुभ) का साया (भूत– प्रेत का प्रभाव) कायम है। यह अमंगल का प्रभाव तभी समाप्त हो सकता है जब गाँव में 'भुंडा' उत्सव का आयोजन फिर से चालू किया जाए। ऐसा करने से गाँव धन संपन्न और सुखी हो जाएगा। इस महोत्सव में बहुत अधिक खर्चे की बात आ रही थी। लोगों के समक्ष यह समस्या आ गई कि इसके लिए रुपए कहाँ से लाए जाएँ क्योंकि इसमें लाखों रुपए खर्च होने की बात थीं। उस महँगाई के जमाने में इतना बड़ा आयोजन करना कोई आसान काम नहीं था। उस समय शर्मा जी ने अपनी और से देवता कमेटी को एक लाख देने का वादा कर दिया। उनके ऐसा करते ही लोगों का मानसिक बल और आत्मविश्वास बढ़ गया। रुपए इकट्ठा करने का दूसरा उपाय यह निकाला गया कि देवता के मंदिर में जो सोना–चाँदी जमा है उसे अच्छे दामों में बेच दिया जाए। इस बात पर सभी की राय बन गई।

विशेष–

1. कहानीकार ने शर्मा जी के मुख से 'भुंडा' उत्सव पुनः आरंभ करवाने की बात कहलवाई है।
2. भाषा सहज, सरल व भावानुकूल खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य – विन्यास सरल, सहज और रोचक है।
6. 'बरकरार','नामुमकिन', 'साया' आदि शब्द विदेशी भाषा है।

विधायक जी की तत्काल कुछ नहीं सूझ रहा था। उन्होंने भी अपने बुजुर्गों से 'बेड़ा' के रस्से पर से गिरने से हुई मौत की बात सुन रखी थी से खुन भी दलित वर्ग से थे। उनका चुनाव क्षेत्र आरक्षित था। सिगरेट के कश लगाते हुए काफी देर मन ही मन में बैठकें करते रहे। उनका विचार बरसों पहले घटी घटना की तरफ चला गया। उसकी आड़ में अपने फायदे नुकसान का हिसाब–किताब लगाया। दलितों की वोटों की तरफ एक सरसरी नजर दौड़ाई जो उन्हें पिछले "चुनाव में बहुत कम मिले थे। दूसरी सबसे बड़ी बात इलैक्ट्रॉनिक युग में अपनी पुरानी परंपराओं के साथ अपने को जोड़ने की लगी। तीसरी जो मुख्य बात समझ में आई यह गाँव मे निष्कासित 'बेडा' और दलित परिवार का पुनः इस बहाने सम्मान दिलाने की थी। यह अवसर उन्हें 'ऑल इन वन' जैसा लगा।

शब्दार्थ— तत्काल फौरन, तुरन्त आड़ = सबके लिए एका– ओट दलित कुचला हुआ। ऑल इन वन = सबके लिए एक।

प्रसंग— प्रस्तुत गद्यांश हिमाचल प्रदेश के सुपरिचित कहानीकार एवं उपन्यासकार एस. आर. हरनोट की महत्वपूर्ण कहानी 'जीनकाठी' से लिया गया है। यह कहानी इनके कहानी संग्रह 'जीनकाठी' तथा अन्य कहानियाँ से उद्धृत है जो 2008 में आधार प्रकाशन, पंचकुला द्वारा प्रकाशित किया गया था। इस कहानी में कहानीकार ने वर्ण – व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन की मुख्य धारा में हाशिए की जिंदगी व्यतीत कर रहे दलितों की वास्तविक पीडा, जातीय संस्कृति, संघर्ष तथा सामाजिक महत्व के कार्यों में अछूत होने के कारण वंचित किए जाने की स्थिति का मार्मिक चित्रण उपस्थित करते हुए सदियों से हो रहे शोषण एवं दमन के खिलाफ प्रतिरोध व्यक्त किया है। देवता कमेटी ने काफी वर्षं से बंद पड़े 'भुंडा' उत्सव को पुनः चालू करवाने के लिए एक सभी की जिसमें शर्मा जी ने सारे काम का बेड़ा अपने ऊपर ले लिया क्योंकि वे भी एक तीर से दो निशाने साधने चाहते थे। 'बेड़ा' का पता लगाने के लिए वे एक – दो आदमियों के साथ क्षेत्र के विधायक के पास पहुँचे। शर्मा जी ने बड़ी विनम्रतापूर्वक विधायक के समक्ष यह प्रस्ताव रखा।

व्याख्या— शर्मा जी ने विधायक से कहा कि हमारे गाँव में 'भुंडा' उत्सव के बंद हुए करीब डेढ़ सौ साल हो गए। हम उसे दबारा से शुरू करवाना चाहते हैं तो आप हमारी 'बेडा' जाति का पता लगाने में हमारी मद्द करे। विधायक जी फौरन कुछ नहीं समझ रहा था कि उन्हें क्या करना चाहिए। उन्होंने कभी अपने बुजुर्गों से रस्से पर से 'बेड़ा' के गिरने से हई मौत के बारे में सुन रखा था। वे स्वयं भी दलित समुदाय से संबध रखते थे। जिस क्षेत्र से वे चुनाव लड़ते थे, वह आरक्षत था। वे सिगरेट पीते हुए काफी समय तक सोच –विचार करते रहे। उनका ध्यान भी बरसों पुरानी घटना की तरफ चला गया। वे पुरानी घटना के विषय में सोचने लगे और उसकी आड़ में उन्होंने भविष्य में होने वाले लाभ – हानि के विषय में हिसाब – किताब लगाया। उन्होने मन ही मन दलितों के वोटों की तरफ बड़ी शीघ्रता से एक नजर दौड़ाई जो उन्हें विगत चनावों में बहुत ही कम मिले थे। दूसरी सबसे बड़ी बात इस वैज्ञानिक युग में अपनी पुरानी परंपराओं और रीति – रिवाजों के साथ अपने को जोड़ने लगी। तीसरी बात उन्हें यह समझ में आई कि वह वर्षों पूर्व गाँव से निकाले हुए 'बेडा' और दलित परिवारों को पुनः इस बहाने आदर दिलाने की थी। विधायक को यह समय बहत अच्छा लगा। वे एक ही तीर से तीन निशाने साधने की सोचने लगे।

विशेष—

1. कहानीकार ने पहाड़ी समाज के एक विचित्र, उत्कृष्ट तथा विशेष उत्सव भुंडा का यथार्थ चित्रण किया है।
2. भाषा सहज, सरल व भावानुकूल खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज और रोचक है।
6. "इलैक्ट्रोनिक' तथा 'ऑल इन वन' जैसे अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया गया है।
7. यहाँ क्षेत्र के विधायक की बुद्धि का परिचय मिलता है।

(भुडा : पहाड़ी समाज का एक विचित्र, उत्कृष्ट और विशेष उत्सव माना जाता है जिसे पुराने समय में हर बारह वर्ष के बाद मनाए जाने की परंपरा थी। लेकिन पहाड़ों में आज इसके आयोजन का कई कारणों से कोई निश्चत समय तय नहीं है। इसमें 'बेडा' नामक दलित जाति के परिवार से एक व्यक्त का चुनाव करके उसे यज्ञोपवीत धारण करवा कर बाह्मण बना दिया जाता है। उत्सव में बेड़ा की देवता और ईश्वर की तरह पूजा होती है। पहाड़ों में इस जाति के अब गिने –चुने परिवार ही बचे हैं।)

शब्दार्थ– भुंडा– हिमाचल प्रदेश का एक विशेष आयोजन। यद्योपवीत = जनेऊ, उपनयन संस्कार जिसमें जनेऊ पहनाया जाता है। उत्सव = समारोह। गिने–चुने = कुछ ही।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश हिमाचल प्रदेश के सुपरिचित कहानीकार एवं उपन्यासकार एस. आर, हरनोट की महत्वपूर्ण कहानी 'जीनकाठी' से लिया गया है। यह कहानी इनके कहानी संग्रह 'जीनकाठी' तथा अन्य कहानियाँ' से उद्धृत है जो 2008 में आधार प्रकाशन, पंचकुला द्वारा प्रकाशित किया गया था। इस कहानी में वर्ण–व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन की मुख्य धारा में हाशिए की जिंदगी व्यतीत कर रहे दलितों की वास्तविक पीडा, जातीय संस्कृति, संघर्ष तथा सामाजिक महत्व के कार्यों में अछूत होने के कारण वंचित किए जाने की स्थिति का मार्मिक चित्रण उपस्थित करते हुए सदियों से हो रहे शोषण एवं दमन के खिलाफ प्रतिरोध व्यक्त किया है। इन पंक्तितयों में लेखक ने 'भुंडा' उत्सव का वर्णन किया है।

व्याख्या– लेखक कहते हैं कि हिमाचल प्रदेश की संस्कृति में 'भुडा' पहाड़ी समाज का एक अद्भुत तथा रोमांचकारी उत्सव है। प्राचीन काल में इस उत्सव को प्रत्येक बारह वर्षो के बाद मनाए जाने की परंपरा प्रचलित थी, लेकिन वर्तमान में इसके आयोजन का अनेक कारणों से कोई निश्चित समय नहीं है। गाँव में चार – पाँच परिवार दलित समुदाय के हैं। उन्हीं में एक परिवार 'बेड़ा' जाति का भी है जो 'भुंडा' में प्रमुख भूमिका निभाता है। 'भुंडा' उत्सव में इस जाति के किसी एक व्यक्त को चुना जाता है और उसे ठंडे पानी से नहला–धुलाकर सारे संस्कार बाह्मणों की तरह करवाए जाते हैं। उसे जनेऊ पहनाकर अस्थायी रूप से ब्राह्मण बना दिया जाता है। वह अब निम्न जाति का न रहकर ब्राह्मणों की तरह पवित्र हो जाता है। जिस दिन उत्सव का आयोजन किया जाता है, उस दिन 'बेड़ा' जाति के उस विशेष व्यक्ति को देवता व ईश्वर के समाज पूजा जाता है अर्थात उसे देवता का रूप मानने लगते हैं। आज पहाड़ी क्षेत्रों में इस जाति के कुछ ही परिवार बचे हुए है।

विशेष–

1. कहानीकार ने पहाड़ी समाज का एक विचित्र आकृष्ट और विशेष उत्सव 'भुंडा' का परिचय दिया है।
2. भाषा सहज, सरल व भावानुकुल खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज और रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

जब दलित परिवार उस गाँव से निकाले गए तो वे कई दिनों भूखे नंगे भटकते रहे। उन्होंने मांग–माँग कर गुजारा किया था। कई सदस्य मर भी गए। बड़ी मशक्रत के बाद एक परिवार ने उनकी मद्द की थी और उन्हें कुछ जमीन भी दे दी थी। मेहनत से उन्होंने अपना एक छोटा–सा गाँव बसा लिया था। शर्मा जी ने तो कभी उस गाँव का नाम तक नहीं सुना था।

शब्दार्थ– मशक्कत्त = कड़ी मेहनत, कठिन परिश्रम

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश हिमाचल प्रदेश के सुपरिचित कहानीकार एवं उपन्यासकार एस. आर. हरनोट की महत्वपूर्ण कहानी 'जीनकाठी' से लिया गया है। यह कहानी इनके कहानी संग्रह 'जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ' से उद्धृत है जो 2008 में आधार प्रकाशन, पंचकुला द्वारा प्रकाशित किया गया था। इस कहानी में कहानीकार ने वर्ण – व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन की मुख्य धारा में हाशिए की जिंदगी व्यतीत कर रहे दलितों की वास्तविक पीडा, जातीय संस्कृति, संघर्ष तथा सामाजिक महत्त्व के कार्यों में अछूत होने के कारण वंचित किए जाने की स्थिति का मार्मिक चित्रण उपस्थित करते हुए सदियों से हो रहे शोषण एवं दमन के खिलाफ प्रतिरोध

व्यक्त किया है। जब शर्मा जी और देवता कमेटी के दो लोग हल्के के विधायक के पास 'बेड़ा' जाति का पता लगाने के लिए गए तो इसमें विधायक ने अपना भला जानकर उनको 'बेड़ा जाति का पता लिख दिया। उस समय विधायक ने सोचा कि अगले चुनाव में उसे दलितों के वोट मिल जाएँगे। इन पक्तियों में लेखक ने गाँव से निष्कासित 'बेड़ा जाति' की कठिनाईयों का वर्णन किया है।

व्याख्या– लेखक कहते हैं कि वर्षों पहले 'बेड़ा' जाति का एक बुजुर्ग भुंड़ा निभाते हुए रस्सी से गिरकर मर गया था। गाँव वालों ने उस दिन को बड़ा अनिष्ट माना। इसके पश्चात गाँव में भयकर महामारी फैलने के कारण आधे से ज्यादा मौत के मुंह में चला गया। इसलिए गाँव के लोगों ने 'बेडा' के परिवार के साथ दूसरे दलितों को भी गाँव से निष्कासित कर दिया। वे कई दिनों तक अन्य गाँवों में नगे और भूखे भटकते रहे, लेकिन किसी भी गाँव ने उनको आश्रय नहीं दिया। वे घर घर माँगकर गुजारा करते। भूखमरी और स्थायी आवास न होने के कारण परिवार के कई सदस्य मौत के मुह में चले गए। काफी परिश्रम करने के बाद घाटी के ढलान की ओर रहने वाले एक परिवार की उनकी सहायता की और वहाँ से थोड़ी दूर कुछ जमीन दे दी। कड़ी मेहनत से बेड़ा जाति के लोगों ने अपना एक गाँव बना लिया था। शर्मा जी ने कभी भी उस गाँव के बारे मे नहीं सुना था।

विशेष –

1. कहानीकार ने यहाँ 'बेड़ा' जाति के लोगों के साथ होने वाले जातिगत भेदभाव का वर्णन किया है।
2. भाषा सहज, सरल व भावानुकुल खड़ी बोली है।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य विन्यास सरल, सहज और रोचक है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

1. गजाधर बाबू किस कहानी का पात्र है?
2. 'जीन काठी' भारत के किस राज्य से संबधित कहानी है।
3. 'में हार गई' कहानी की लेखिका कौन है?

20.4 सारांश

अतः कहा जा सकता है कि मन्नू भण्डारी की कहानी 'अकेली', ऊषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी', शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' तथा एस. आर. हरनोट की 'जीन काठी' कहानी का हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन कहानीकारों ने अपनी लेखनी के द्वारा कहानी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की है।

20.5 कठिन शब्दावली

मानक – मापदंड

रोचक – मनोरंजन, प्रिय

परायण – सार, अत्यासक्ति

20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. वापसी
2. हिमाचल प्रदेश
3. मन्नू भण्डारी

20.7 संदर्भित पुस्तकें

1. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. गोपाल, हिन्दी कहानी का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

20.8 सात्रिक प्रश्न

1. 'वापसी' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
2. 'कोसी का घटवार' कहानी का सार लिखिए।
3. 'लंदन की एक रात' कहानी का प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।

*****

एम.ए. हिन्दी
द्वितीय वर्ष

कोर्स कोड : MNIN-203
प्रश्न पत्र–7

आधुनिक गद्य साहित्य

इकाई 1 से 20

लेखकः ऊषा रानी

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, ज्ञान पथ समरहिल, शिमला–05

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
इकाई–1	हिंदी निबंध का आरंभ और विकास	3
इकाई–2	बालकृष्ण भट्ट जीवन और साहित्य	12
इकाई–3	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जीवन और साहित्य	22
इकाई–4	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जीवन और साहित्य	35
इकाई–5	प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य	48
इकाई–6	रामविलास शर्मा जीवन और साहित्य	60
इकाई–7	विद्यानिवास मिश्र जीवन और साहित्य	69
इकाई–8	कुबेरनाथ राय जीवन और साहित्य	79
इकाई–9	सरदार पूर्ण सिंह जीवन और साहित्य	93
इकाई–10	व्याख्या भाग	108
इकाई–11	हिन्दी कहानी का भौगोलिक विस्तार	127
इकाई–12	पं० माधव राव स्प्रे जीवन और साहित्य	134
इकाई–13	प्रेमचंद : जीवन और साहित्य	142
इकाई–14	जैनेन्द्र : जीवन और साहित्य	153
इकाई–15	निर्मल वर्मा : जीवन और साहित्य	162
इकाई–16	मन्नू भंडारी : जीवन और साहित्य	172
इकाई–18	शेखर जोशी : जीवन और साहित्य	187
इकाई–19	एस०आर० हरनोट जीवन और साहित्य	196
इकाई–20	व्याख्या भाग	204